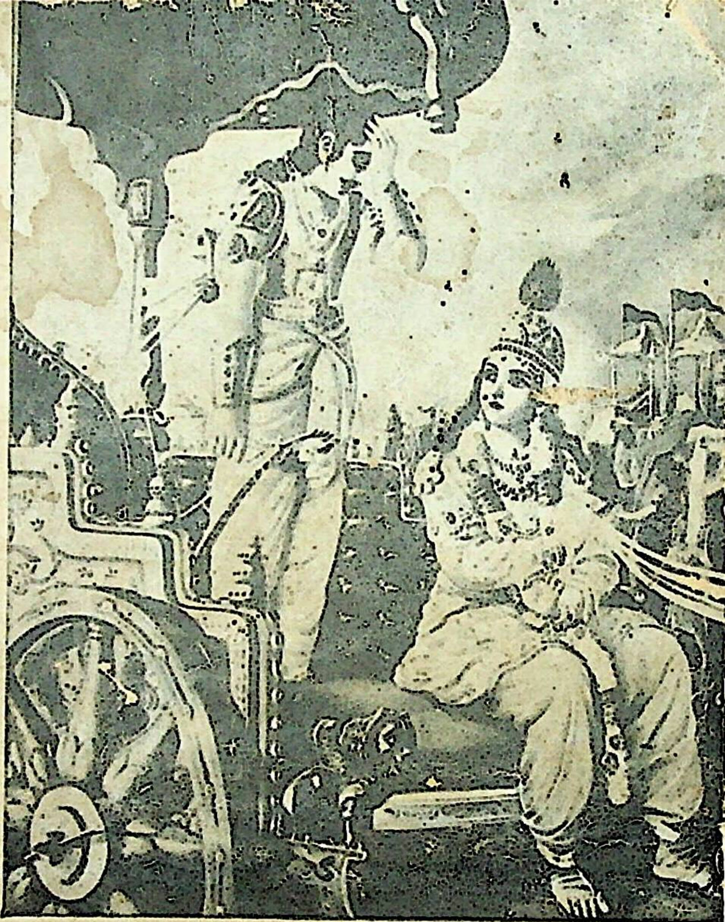


गीता जयन्ती और भौतिभोत्क्रान्ति

पूज्यपाद स्वामी श्रीहरिहरानन्द सरस्वती
श्रीकरपात्री जी महाराज

॥ श्रीहरिः ॥

गीताजयन्ती और भीष्मोत्क्रान्ति

रचयिता

धर्मसम्राट् अनन्तश्रीविभूषित यतिचक्रचूड़ामणि

पूज्यपाद स्वामी श्रीहरिहरानन्द सरस्वती

श्रीकरपात्री जी महाराज

प्रकाशक

राधाकृष्ण-धानुका प्रकाशन-संस्थान

सं २०४३, सन् १९८६

प्रकाशक—
राधाकृष्ण धानुका प्रकाशन संस्थान
कलकत्ता • वृन्दावन

प्रथम संस्करण
वि० सं० २०४३ विजया दशमी
अक्टूबर १९८६

मूल्य — बाईस रुपये

प्राप्तिस्थान—

१। राधाकृष्ण धानुका प्रकाशन संस्थान
C/o मैसूर पैट्रो कैमिकल्स लिमिटेड
११३, पार्कस्ट्रीट, सात तल्ला, कलकत्ता

२। राधाकृष्ण धानुका प्रकाशन संस्थान
ब्रह्मकुटीर, डी० २५/१८ नारद घाट
वाराणसी

३। राधाकृष्ण धानुका प्रकाशन संस्थान
धर्मसंघ विद्यालय रमणरेती, वृन्दावन

४। राधाकृष्ण धानुका प्रकाशन संस्थान
C/o मैसूर पैट्रो केमिकल लिमिटेड
४०१/४०४ राहेजा सेण्टर
२१४, नारीमन पाइन्ट, बम्बई ४०००२१

मुद्रक—
श्रीहरिनाम प्रेस
हरिनाम पथ, वृन्दावन—२८११२१
दूरभाष : ४१५

॥ श्रीहरिः ॥

गीताजयन्ती और भीष्मोत्क्रान्ति

विषयानुक्रमणिका

※ शुभाशंसा (भूमिका) अनन्त श्रीविभूषित

ज० शं० स्वामी निरञ्जनदेव तीर्थ जी (पुरी)

※ दिग्दर्शन (सम्पादकीय) स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वती

भूमिका

अनन्तश्रीविभूषित पुरीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्रीनिरञ्जनदेव तीर्थजी महाराज

शुभाशंसा

*

श्रीगणेशाय नमः

श्रीहरिः

"धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित् ॥"

(महाभारत स्वर्गा० ५. ५०)

श्रीमद्भगवद्-ज्ञानावतार श्रीकृष्णद्वैपायन की इस प्रतिज्ञाके अनुसार श्रीमन्महाभारत भारतीय सत्साहित्यका शिरोरत्नालङ्कार है, इसमें लेशमात्र भी शङ्का-कलङ्कावसर नहीं है। इसमें उपवर्णित घटना क्रम निःसन्देह तथ्य है। अतः इसकी किसी घटना को 'दन्तकथा' कहना सत्य का सर्वथा अपलाप होने के कारण प्रत्यक्ष पाप है।

महाभारत का समय महाभारत के ही अनुसार कौरव-पाण्डव युद्ध की समाप्ति के पश्चात् महाराज धृतराष्ट्र की शरीर पूर्ति हो जाने के बाद का है, जो लगभग ५ हजार वर्ष आज से पूर्व का है। जैसे बाइबल, कुरान आदि का समय उनमें निर्दिष्ट प्रमाण माना जाता है, ठीक वैसे ही रामायण, महाभारत आदि का समय भी उनमें निर्दिष्ट ही प्रमाण मानना चाहिए।

भीष्म-निर्वाण सम्बन्धी वचनों की संगति साधने में सबसे बड़ी आपत्ति श्रीभीष्म पितामह के निर्वाण काल तक उनके ५८ दिन शरशय्या-शयन में आती है। पर युद्धारम्भ के दिन से ही ९ दिन तक अप्रत्यक्ष शरशय्या और दशवें दिन से प्रत्यक्ष शरशय्या मान लेनें से सभी बातें ठीक बैठ जाती हैं। प्रथम दिन से ९ वें दिन तक भी उनकी पीठ में पीछे सैनिकों द्वारा उनको लक्ष्य न करके चलाये गये वाण भी उनके शरीर में अवश्य ही लगे होंगे। अन्यथा पीठ में वाण लगने का प्रश्न ही नहीं उठता। इस प्रकार मार्गशीर्ष शुक्ल ११ से माघ शुक्ल ८ तक ५८ दिन शरशय्या पर रहने की बात ठीक बैठ जाती है।

अत: अमावस्या से युद्धारम्भ मानकर बीच में अवकाश की कल्पना करना सर्वथा अनुचित है। क्योंकि प्रत्येक घटना की पूर्ति के साथ युद्ध वर्णन में 'अद्य', 'श्वः', 'पूर्वाह्ण-अपराह्ण' आदि शब्द निश्चित 'आज', 'कल', 'प्रातर्मध्याह्न' आदि समय के वाचक ही हैं। 'अपराह्ण', 'पूर्वाह्ण' आदि शब्दों का पहला दिन, दूसरा दिन अर्थ करना संस्कृत व्याकरण की हत्या करना ही है क्योंकि सभी व्याकरणों के अनुसार इन शब्दों के अर्थ दिन के पूर्व भाग, अपर भाग ही हो सकते हैं, न कि दूसरा दिन या पहला दिन। पाणिनीय व्याकरण के सुप्रसिद्ध महाविद्वान् भट्टोजि दीक्षित की सिद्धान्त कौमुदीके तत्पुरुष-समास-प्रकरणके 'तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः' ५।४।८६ (अष्टा०) सि० कौ० सू० सं० ११३२ से 'उत्तमैकाभ्यां च' ५।४।९० (अष्टा०) सि० कौ० सू० सं० ११४० तक देखने से स्पष्ट हो जाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के विद्वान् सम्पादक दण्डी स्वामी श्री निश्चलानन्द जी महाराज व्याकरण, धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र आदि के मर्मज्ञ सन्त हैं। धर्म सम्राट् अनन्त श्रीस्वामी करपात्री जी महाराज के शिष्यों में वे अन्यतम हैं। उन्होंने महाभारत के तथा युद्धारम्भ के सभी मतों का सम्यग् विश्लेषण श्रीस्वामी करपात्री जी महाराज के निर्देशों का निरन्तर चिन्तन तथा अनुसरण करते हुए प्रस्तुत ग्रन्थ में परिपूर्ण ऊहापोह के साथ प्रत्येक घटना के साथ सम्बद्ध मास पक्ष, तिथि और दिन-रात्रि के अवयवों की ठीक-ठीक सङ्गतियाँ बैठाकर युद्धारम्भ समय का प्रामाणिक विवेचन विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत किया है, जो सर्वथा मननीय तथा हृदयङ्गम करने योग्य है। अन्य मतावलम्बियों का गहरी सूक्ष्मेक्षिका निरीक्षण कर हेयोपादेयता का पूरा

ध्यान रखा है। मेरा विश्वास है कि इस ग्रन्थ के प्रचार-प्रसार से युद्धारम्भ दिवस के सम्बन्ध की सभी शङ्काओं का समाधान हो जायेगा।

आश्विन कृष्ण द्वादशी
सं० २०४१
पुरी (उड़ीसा)

श्रीनिरञ्जनदेव तीर्थं



॥ श्रीहरिः ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

दिग्दर्शन

स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वती जी

१—मतैक्य प्रतिपादन एवं विगान-विमर्श

'युद्धारम्भ का प्रथम दिन ही गीताजयन्ती है' ऐसा मानने में किसी को आपत्ति नहीं है। 'अठारह दिनों तक युद्ध और अठारह अक्षौहिणी सेना'* भी सर्व-मान्य है। ऐसा होने पर भी युद्धारम्भ और युद्धान्त के मास, पक्ष, तिथि, नक्षत्र को लेकर और महाभारत युद्ध के वर्ष तथा महाभारत-रचना काल को लेकर विचारक-विद्वानों में मतभेद है। वर्ष गणना सम्बन्धी पाश्चात्त्य-विद्वानों के असम्बद्ध विचार से महाभारत के अन्तःसाक्ष्य के अनुसार विचार करने वाले मनीषियों की असहमति स्वाभाविक है। युद्धारम्भ, युद्धान्त और भीष्म-निर्वाण के सम्बन्ध में पाश्चात्त्य और पौरस्त्य का विभाग भी न रहकर 'जितने विचारक उतने विचार' की कहावत ही चरितार्थ हो रही है।

इस मतभेद के पीछे महत्त्वपूर्ण तथ्य भी है, जिसके कारण एक मत होना कठिन माना जाता है। वह है परस्पर विगान युक्त से विभिन्न वचनों में एकरूपता (एकवाक्यता) प्राप्त करना। ऐसा असम्भव तो नहीं, किन्तु कठिन अवश्य है। आधुनिक ढंग के विचारकों में श्री ग० वा० कवीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा प्रयुक्त श्लोक (उद्योग० १४२. १८) में 'संग्रामो

---

* अष्टादश समाजग्मुरक्षौहिण्यो युयुत्सया।
तन्महादारुणं युद्धमहान्यष्टादशाभवत् ॥
(आदि० २. ३८१)

युज्यताम्' पदों को देखकर युद्धारम्भ का द्योतक वचन उसे मानते हैं। वे शुक्लान्तमासानुसार मार्गशीर्ष कृष्ण अमावास्या में युद्धारम्भ मानते हैं।

वे गदायुद्धके समय बलरामजी द्वारा प्रयुक्त वचन (शल्य० ३४. ६-६½) को प्रमाण मानकर ३५ वें दिन पौष शुक्ल ५ श्रवण में युद्धान्त मानते हैं। बीच में एक-एक दिन अवकाश की कल्पना कर लेते हैं।

श्रीकृष्ण-वचन

सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति।
सङ्ग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम्॥
(उद्योग० १४२. १८)

श्रीबलभद्र-वचन—

चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै।
पुष्येण सम्प्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः॥
शिष्ययोर्वै गदायुद्धं द्रष्टुकामोऽस्मि माधव॥
(शल्यपर्व ३४. ६-६½)

कुछ महानुभाव 'लोहाभिसारो निर्वृत्तः' (उद्योग० १६०।९३) इस उलूक वचन में प्रयुक्त 'लोहाभिसारः' का अर्थ आश्विन की नवरात्रि मानकर और वैशम्पायन प्रयुक्त 'कौमदे मासि' (उद्योग० १४२. १८) में कौमुदमास का अर्थ आश्विन मानकर तत्पश्चात् कार्तिककृष्ण में तथा 'मघा विषयगः' (भीष्म० १७. २) इस संजय-वचन के अनुसार मघा नक्षत्र में अर्थात् कार्तिक कृष्ण अष्टमी मघा में युद्धारम्भ मानते हैं।

उलूक-वचन

लोहाभिसारः निर्वृत्तः कुरुक्षेत्रमकर्दमम्।
पुष्टास्तेऽश्वा भृता योधाः श्वो युद्ध्यस्व सकेशवः॥
(उद्योग० १६०. ९३)

वैशम्पायन-वचन

कौमुदेमासि रेवत्यां शरदन्ते हिमागमे।
स्फीतसस्ययुते काले कल्पः कल्पवतां वरः॥
(उद्योग० १४२ १८)

संजय-वचन

> यथा स भगवान् व्यासः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ।
> तथैव सहिताः सर्वे समाजग्मुर्महीक्षितः ।।
> मघाविषयगः सोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत ।
> दीप्यमानाश्च सम्पेतुर्दिवि सप्त महाग्रहाः ।।
> (भीष्म० १७. २)

कुछ महानुभाव श्रीकृष्ण-वचन के अनुसार अमावास्या में युद्धारम्भ मान लेते हैं, उसके अठारहवें दिन युद्धान्त मान लेते हैं, श्रीबलभद्र जी के युद्धान्त-परक वचन की सर्वथा उपेक्षा कर देते हैं।

श्रीमहाभारत के प्रसिद्ध टीकाकार श्रीनीलकण्ठाचार्य श्रीबलभद्र जी के वचन को मुख्य मानकर पौष शुक्ल १ श्रवण में युद्धान्त मानते हैं और उससे १८ वें दिन मार्गशीर्ष शुक्ल १४ मृगशिरा में युद्धारम्भ मानते हैं।

श्री म० म० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी जी, श्री पं० दीनानाथ सारस्वत जी, पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी जी आदि मान्य विद्वान् माघ शुक्लाष्टमी में भीष्मनिर्वाण मानकर उससे ५८ दिन पूर्व मार्गशीर्ष शुक्ल ११ में युद्धारम्भ मानकर भीष्मनिर्वाण और गीताजयन्ती सम्बन्धी दोनों परम्परा-प्राप्त-प्रसिद्ध-तिथियों की सार्थकता सिद्ध करते हैं।

(२) ग्रन्थावतरण और ग्रन्थ सन्दर्भ

'श्रीमद्भगवद्गीताजयन्ती और भीष्मोत्क्रान्ति' नामक इस ग्रन्थ में पहले स्वपक्ष का प्रमाण सहित चित्रण है, पुनः विविध मतों का दिग्दर्शन, मण्डन और निराकरण है। सम्पूर्ण महाभारत में युद्धारम्भ, युद्धान्त और भीष्म निर्वाणादि-सम्बन्धी उपयोगी सभी वचनों को यथा स्थान स्थल-निर्देश सहित उद्धृत किया गया है। 'प्रामाणिक गणना के लिये ध्यान रखने योग्य आवश्यक सूत्र' नामक शीर्षक के व्याजसे जहाँ प्रामाणिक गणना में उपयोगी समस्त वचनों को संकलित किया गया है; वहाँ उन सभी स्थलों को सूचित किया गया है, जिनका ध्यान रखे विना प्रामाणिक गणना की उपलब्धि असम्भव है। पहले अभिधावृत्ति से उन वचनों की सार्थकता पर विचार किया गया है, फिर विरोध-परिहार के अभिप्राय से बलाबल को देखते हुए

उनकी सार्थकता पर विचार किया गया है। मौलिकता (ग्रन्थगत मूल सिद्धान्त) पर किसी प्रकार का आघात किये विना ही अन्य मतों को उद्धृत किया गया है। निष्पक्ष और सहृदय होकर उनकी समीक्षा की गयी है। अन्त में 'परिशिष्ट' के अन्तर्गत 'महाभारत रचनाकाल' और भगवद्गीता-भिव्यक्तिकाल' का श्रीमहाभारत के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर निरूपण किया गया है।

'रामायण काल–मीमांसा' में यह सिद्ध किया गया है कि 'महाभारत-युद्ध' और 'मौसल-युद्ध' के समान ही राम-रावण युद्ध' काल में भी कृष्ण–पक्ष त्रयोदश (१३) दिनों का था। माघ-शुक्ल द्वितीया से चैत्र कृष्ण-चतुर्दशी तक दो तिथि क्षय और एक तिथि-वृद्धि मानकर कुल ८७ दिनों में १५ अवहार (अवकाश) और ७२ युद्ध हुए। नागपाश-विमोचन, कुम्भकर्ण-प्रबोध कुम्भकर्णवध, मेघनादवध, शक्ति प्रयोग के उपलक्ष्य में अवहार का वर्णन स्कन्दपुराण–ब्रह्मखण्ड–पूर्वभाग तीसवें अध्याय में है। फाल्गुन शुक्ल १२ से चैत्रकृष्ण चतुर्दशी तक—कुल अठारह दिनों तक अन्त में श्रीराम और रावण के द्वैरथ-युद्ध का वर्णन है।

युद्ध सम्बन्धी आवश्यक जानकारी के लिये विविध मानचित्र प्रस्तुत किये गये हैं. समस्त ग्रन्थ को अठारह शीर्षकों और चौबीस उपशीर्षकों में विभक्त किया गया है। इससे पाठकों को विषय हृदयङ्गम करने में और विश्राम देकर पढ़ने में सुगमता रहेगी।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि महाभारत में युद्धकाल का संकेत नक्षत्र, देवता, (नक्षत्रपति) तथा मास, पक्ष एवं दिन संख्या के माध्यम से है। मास, पक्ष एवं तिथि के अनुगुण नक्षत्र निर्णय अत्यावश्यक है। नक्षत्र की उपेक्षा कर केवल मास, पक्ष और तिथि निर्णय के बल पर ही प्रामाणिक निर्णय की प्राप्ति असम्भव है। ऐसा इसलिये, क्योंकि युद्ध योजना और युद्धान्त आदि का निर्देश नक्षत्रोल्लेख पूर्वक ही है। युद्धान्त शुक्लान्त मासानुसार पौष शुक्ल १ से पूर्व असंगत है और पौष शुक्ल ३ के पश्चात् भी।

दैनिक अवहार युक्त; किन्तु अवकाश (विराम) रहित १८ दिनों तक लगातार युद्ध की दृष्टि से श्रीनीलकण्ठाचार्य की गणना सर्वोत्तम है। उनके अनुसार मार्गशीर्ष शुक्ल १४ मृगशिरा नक्षत्र में युद्धारम्भ और पौषशुक्ल १ श्रवण में युद्धान्त सिद्ध होता है। भीष्मोत्क्रमण (भीष्म निधन) के साथ

युद्धारम्भ का सामञ्जस्य बैठाते हुए तथा गीताजयन्ती एवं भीष्म-निर्वाण की प्रसिद्ध परम्परा को देखते हुए मार्गशीर्ष शुक्ल ११ में युद्धारम्भ (और पौष शुक्ल १ श्रवण में युद्धान्त) तथा माघ शुक्लाष्टमी भीष्मोत्क्रमण मान्य है।

ग्रन्थ में युद्धकाल सम्बन्धी समग्र सामग्री सुव्यवस्थित रीति से सन्निहित है। अनुसन्धानकर्ताओं को स्वस्थ मार्गदर्शन प्राप्त हो सके, इसका आद्योपान्त ध्यान रखा गया है।

(3) अभिनन्दन

पूज्यपाद श्रीसद्गुरुदेव धर्मसम्राट् सर्वभूतहृदय स्वामी श्रीहरिहरानन्द सरस्वती **'श्रीस्वामी करपात्री जी'** महाराज से प्राप्त इस निधि के प्रकाशन का चिरप्रतीक्षित-योग सध सका है, यह श्रीभगवान् की असीम अनुकम्पा ही है। पूज्यपाद अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु-शङ्कराचार्य स्वामी निरञ्जनदेवतीर्थ जी महाराज पुरी (उड़ीसा) ने अत्यन्त उत्साह पूर्वक ग्रन्थ का आद्योपान्त अवलोकन कर और कई स्थलों पर आवश्यक स्पष्टीकरण प्रस्तुत कर, हमें आह्लादित किया है। इसके लिये हम पूज्यपाद महाराज श्री के हृदय से आभारी हैं। श्री श्रद्धेय स्वामी १०८ चिन्मयानन्द सरस्वती जी महाराज का ग्रन्थ-प्रकाशन और सम्पादन में आद्योपान्त सहयोग सराहनीय है। श्रद्धेय पं० श्रीमार्कण्डेय ब्रह्मचारी जी (वाराणसी) से समय-समय पर प्राप्त विमर्श सर्वथा प्रशंसनीय है। परिशिष्ट में संलग्न 'रामायणकाल मीमांसा' का सोत्साह अवलोकन कर श्रीश्रद्धेय राजवंशी द्विवेदी जी प्रधानाचार्य धर्मसङ्घ महाविद्यालय वृन्दावन ने हमें आह्लादित किया है। चि० श्रीशिवनारायण शर्मा (पुजारी) जी ने और श्रीगिरिराज मुनीमजी ने प्रेस से सम्पर्क स्थापित रखने में और ग्रन्थ को यथा सम्भव शुद्ध रीति से प्रकाशित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान कर हमें प्रोत्साहित किया है। श्रद्धेय पण्डित प्रवर श्रीवैद्यनाथ जी झा और श्रीसच्चिदानन्द द्विवेदी महाशय ने जिस मनोयोग से 'प्रूफ-शोधन' का कार्य सम्पन्न किया है, उसके लिये उनका अभिनन्दन है। चि० श्री सोमप्रकाश मिश्र जी ने 'प्रेसकापी' तैयार करने में जो योग प्रदान किया है, वह सराहनीय है। श्रीराजीव कुमार मिश्र जी ने ग्रन्थ के सम्पादन में अपेक्षित ग्रन्थों को पुस्तकालयों से लाने और समय पर सुव्यवस्थित रीति से लौटाने में जो परिश्रम किया है, उसके लिये वे धन्य-

वाद के पात्र हैं। स्थल ढूँढ़ने में ब्रह्मचारी श्रीकरुणा शङ्कर त्रिपाठी जी, श्रीमोहन प्रसाद आर्यालि और श्रीज्ञानेश्वर पंथी जी से प्राप्त योग प्रशंसनीय है। प्रेस के संचालक श्रीगिरिराज जी ने धैर्य और उत्साह पूर्वक प्रकाशन कार्य सम्पन्न कर हमें प्रोत्साहित किया है। प्रकाशन-संस्थान के संचालक श्रीहनुमान् प्रसाद धानुका जी इसी उत्साह के साथ पूज्यपाद महाराजश्री के ग्रन्थ-रत्नों को प्रकाशित कर हमें आह्लादित करते रहें और स्वयं पुण्य के भागी बनें, यह भावना है।

आषाढ़ शुक्ल ७, सं० २०४३
आनन्दवेद विद्याकेन्द्र, वृन्दावन

प्रकाशकीय-वक्तव्य

गीताजयन्ती और भीष्मनिर्वाण सम्बन्धी विवादास्पद काल के निर्णय के लिये अनेक महानुभावों ने अनन्त श्रीविभूषित पूज्य श्रीस्वामी करपात्री जी महाराज के सम्मुख जिज्ञासा कर कृपा करने की प्रार्थना की थी। इस विषय पर बहुत विचार-विमर्श भी हुआ था।

अत्यन्त उपयोगी तथा सामयिक होने के कारण पूज्य श्री स्वामीजी महाराज ने अनेक अकाट्य प्रमाणों और युक्तियों के सहित इस पुस्तक को लिखने की कृपा की किन्तु बहुत दिनों से इसके प्रकाशन की प्रवल इच्छा होते हुए भी संस्थान अनेक कारणों से इसे प्रकाशित नहीं कर सका।

अव परम पिता परमेश्वर की अनुकम्पा और उन्हीं परम पूज्य ब्रह्म स्वरूप श्री स्वामीजी महाराज की दया से प्रकाशन का अनुकूल अवसर उपस्थित होने पर इसे प्रकाशित कर अपार हर्ष का अनुभव कर रहे हैं।

इस विषय के जिज्ञासुओं, विद्वानों एवं शोधकर्त्ताओं को इससे पूर्ण सन्तोष और सहयोग प्राप्त होगा ऐसा हमें विश्वास है विचारशील मनीषियों को भी इसके द्वारा यत्किञ्चित् भी लाभ होगा तो हम अपने तथा सहयोगियों के परिश्रम को सफल समझेंगे।

अनन्त श्री विभूषित पुरी पीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य स्वामी श्रीनिरञ्जन देवजी तीर्थ (गोवर्धनमठ) ने इसकी भूमिका लिखने की कृपा कर हमें कृतार्थ किया है एतदर्थ हम उनके आभारी हैं।

पूज्य श्रीस्वामी करपात्री जी महाराज के अनन्य कृपापात्र श्रीस्वामी निश्चलानन्द सरस्वती जी महाराज के अथक परिश्रम, अदम्य उत्साह के फलस्वरूप ही हम इस ग्रन्थ को प्रकाशित कर सके हैं और संस्थान के प्रकाशन का सारा कार्य इन्हीं की कृपा से सम्पन्न हो रहा है अतः इनके चरणों में भी वहुत प्रणाम और धन्यवाद है। आचार्य श्री सच्चिदानन्द जी द्विवेदी एम. ए. ने पुनरीक्षणादि कार्य को सुचारु रूप से सम्पादित करने की कृपा की है अतः वे भी धन्यवाद के पात्र हैं। श्रीहरिनाम प्रेस ने भी इस पुस्तक के मुद्रण कार्य को वड़े प्रेम और उत्साह से पूरा किया है अतः वहुत धन्यवाद है।

हनुमान प्रसाद धानुका—अध्यक्ष
श्रीराधाकृष्ण धानुका प्रकाशन संस्थान

॥ श्रीहरिः ॥

गीताजयन्ती और भीष्मोत्क्रान्ति

१. मङ्गलाचरण

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥
मङ्गल्यं मङ्गलं विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम् ।
नमस्कृत्य हृषीकेशं चराचरगुरुं हरिम् ॥२॥
महर्षेः पूजितस्येह सर्वलोकैर्महात्मनः ।
प्रवक्ष्यामि मतं पुण्यं व्यासस्याद्भुतकर्मणः ॥३॥
नमो भगवते वासुदेवाय । नमः पितामहाय ।
नमः प्रजापतिभ्यः । नमः कृष्णद्वैपायनाय ।
नमः सर्वविघ्नविनायकेभ्यः ॥४॥
वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि ।
यस्यास्ते हृदये संवित्तं नृसिंहमहं भजे ॥५॥
वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे ।
यं नत्वा कृतकृत्याः स्युस्तं नमामि गजाननम् ॥६॥
विश्वसर्गविसर्गादिनवलक्षणलक्षितम् ।
श्रीकृष्णाख्यं परं धाम जगद्धाम नमामि तत् ॥७॥
नमः परमहंसास्वादितचरणकमलचिन्मकरन्दाय ।
भक्तजनमानसनिवासाय श्रीमद्रामचन्द्राय ॥८॥

२. भारत-वैभव

श्रीमहर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास विरचित 'श्रीमहाभारत' वेदसार-सर्वस्व है[1]। यह काव्य, पुराण, दर्शन, स्मृति और परम पवित्र

१—'पुराण पूर्णचन्द्रेण श्रुतिज्योत्स्नाः प्रकाशिताः' (आदि० १.८६), 'वेद रहस्यं च' (आदि० १.६२)।

इतिहास है [२]। महत्त्वपूर्ण अर्थ गरिमाके कारण ही इसे 'महाभारत' कहते हैं [३]। इसकी महत्ता इस प्रकार है—'जो यहाँ है, वह अन्यत्र सम्भव है, जो यहाँ (इसमें) नहीं है, वह अन्यत्र असम्भव है—

"धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित्॥"
(महा० स्वर्गा० ५. ५०)

महाभारत में कौरव-पाण्डवों का चरित्र विस्तार पूर्वक सन्निहित है। पाण्डवों के जीवन में धर्मनिष्ठा और भगवद्भक्ति की अनुपम प्रतिष्ठा—वेदोक्त धर्म और ब्रह्म के महत्त्व को साकार करने वाली है।

३. उत्थानिका

महाभारत युद्ध कब प्रारम्भ हुआ और कब उसका अन्त हुआ? भीष्म पितामह कितने दिनों तक शरशय्या पर आसीन रहे, अभिप्राय यह कि उनका निर्वाण संग्राम की समाप्ति और शरशय्या की प्राप्ति के कितने दिन बाद हुआ, ये सब विचारणीय प्रश्न हैं।

महाभारत और उसके रचनाकाल के सम्बन्ध में आधुनिक विचारकों ने बड़े ही समारोह के साथ विचार प्रारम्भ किया है। उनकी प्रमाणिकता पर महाभारत के सर्वथा अनुरूप विचार अपेक्षित है।

महाभारत में समग्र सृष्टि का रस और रहस्य सन्निहित है। इसमें

२—'काव्यं परम पूजितम्' (आदि० १.६१), 'इतिहासपुराणानामुन्मेषं निर्मितं च यत्' (आदि० १.६३), जयो नामेतिहासोऽयम्' (आदि० ६२.२०),

"धर्मशास्त्रमिदं पुण्यमर्थशास्त्रमिदं परम्।
मोक्षशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना॥"
(आदि० ६२-२३)

'कामशास्त्रमिदं प्रोक्तं' (आदि० २.३८३)

३— "भरतानां महज्जन्म तस्माद् भारतमुच्यते।
महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते॥"
(स्वर्गारोहण ५. ४५)

अनेकों प्राचीनतम इतिहास भी सन्निहित हैं। साथ ही रचयिता महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासने निज बन्धु-बान्धवों और सगे-सम्बन्धियों का इतिहास भी इसमें ग्रथित किया है। महाभारत में वर्णित कौरव-पाण्डव का मार्मिक इतिहास भी एक दृष्टि से श्रीवेदव्यास के निज परिवार का ही समझना चाहिये। इस पारिवारिक इतिहास को इतिहास न समझकर आधुनिक उपन्यासों को तरह काल्पनिक मानना सर्वथा अनुचित है। ऐसा मानने पर तो लेखक के जन्म-कर्म और उससे संबद्ध चरित्र सभी मिथ्या सिद्ध होते हैं। इस प्रकार की अनर्गल कल्पना सर्वथा अशोभनीय है। महाभारत को प्रमाण मानकर ही महाभारत पर विचार-विमर्श कर्त्तव्य है।

जो महाभारत को प्रमाण मानकर ही इस पर विचार करने वाले हैं, उनके हृदय में भी यह प्रश्न उठता है कि युद्ध कब हुआ और महाभारत की रचना भी कब हुई ?

४. महाभारत युद्ध

यह स्मरण रखना आवश्यक है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने युद्धभूमि—कुरुक्षेत्र में युद्धारम्भ के पूर्व विषादग्रस्त अर्जुन को जो उपदेश दिया, वह श्रीमद्भगवद्गीता नाम से महाभारत में प्रसिद्ध है। अतः महाभारत युद्ध के आरम्भ की और 'गीता-जयन्ती' की तिथि एक ही होनी चाहिये।

यद्यपि युद्धकी तिथि आदि का गुप्त-प्रकट संकेत महाभारत में प्राप्त है, फिर भी उनकी निर्विरोध एकवाक्यता उपलब्ध न होने के कारण प्रायः इस सम्बन्ध में संशय हो बना रहता है। यह भी कहा जाता है कि 'गीता जयन्ती' ही युद्धारम्भ की तिथि है। श्रीभगवान् ने जिस दिन अर्जुन को गीता सुनाई, वही युद्ध का प्रथम दिन था। गीता सुनने के बाद ही पार्थकी युद्ध में प्रवृत्ति हुई, यह निर्विवाद सत्य है।

गीता-जयन्ती के रूप में मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी प्रसिद्ध है। प्रायः इसी दिन गीता-प्रेमी 'गीता-जयन्ती' मनाते हैं। इस तिथि का 'गीता-जयन्ती' से कोई तालमेल है भी अथवा नहीं, इस पर महाभारत के अनुसार प्रामाणिक विचार अपेक्षित है।

अब वर्ष, अयन, मास, पक्ष, तिथि, नक्षत्र, दिन संख्या और युद्धा-

रम्भ, युद्धान्त, भीष्मपतन एवं भीष्मनिर्वाण आदि का विचार किया जाता है।

१. वर्ष—श्रीमहाभारतकारने 'महाभारत युद्ध के पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर के राज्यकाल में' कलि का प्रवेश माना है—

"नाधर्म्यमभवत् तत्र सर्वो धर्मरुचिर्जनः।
बभूव नरशार्दूल यथा कृतयुगे तथा॥"
"कलिमासन्नमाविष्टं निर्वास्य नृपनन्दनः।
भ्रातृभिः सहितो धीमान् बभौ धर्मबलोद्धतः॥"
(आश्वमेधिक० १४।१९, २०)

"धर्मराज युधिष्ठिर के राज्य में कहीं कोई अधर्मयुक्त कार्य नहीं होता था। सब लोग धर्म विषयक रुचि रखते थे। पुरुष सिंह ? जैसे सत्ययुग में समस्त प्रजा धर्म परायण रहती थी, उसी प्रकार उस समय द्वापर में भी हो गयी थी।"

"कलियुग को समीप आया देख बुद्धिमान् नृपनन्दन युधिष्ठिर उसका निर्वासन कर भाइयों के साथ धर्मबल से अजेय होकर शोभा पाने लगे।"

भीमसेन द्वारा अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने के लिये गदायुद्ध में नियम विरुद्ध आघात से दुर्योधन के पराजित होने पर क्रुद्ध श्रीबलराम को समझाते हुए 'प्राप्तं कलियुगं विद्धि प्रतिज्ञां पाण्डवस्य च।' (शल्य पर्व ६०. २५) श्रीकृष्ण भगवान् के इस श्लोक से (वचन से) युद्धकाल में कलियुग के प्रवेश का प्रभाव विदित होता है। साथ ही—

"अन्तरे चैव सम्प्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत्।
समन्तपञ्चके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः॥"
(महाभारत आदिपर्व २. १३)

"द्वापर और कलि के मध्य में कौरव-पाण्डवों का युद्ध हुआ। समन्तपञ्चक नाम से विख्यात धर्मभूमि-कुरक्षेत्र युद्धक्षेत्र बना।"

इस तरह द्वापर के सन्ध्यंश और कलि की सन्धि महाभारत युद्धकाल समझना चाहिये। अर्थात् 'संवत् २०३६, ईसवीय सन् १९७९-८० से ५०८० वर्ष पूर्व महाभारत युद्ध हुआ।' ऐसा मानना चाहिये।

२. अयन-ऋतु—'शरदन्ते हिमागमे' (उद्योग० ८३।६, ७) 'निवृत्त-मात्रे त्वयन उत्तरे वै दिवाकरे' (शान्ति० ४७।३), 'विनिवृत्ते दिनकरे प्रवृत्ते चोत्तरायणे' (अनुशासन १६६. १४) इन स्थलों में युद्धकाल में हेमन्त-ऋतु और दक्षिणायन का उल्लेख है। उत्तरायण में भीष्म-निर्वाण का उल्लेख है।

३ मास—'कौमुदेमासि' (उद्योग० ८३. ६, ७), 'पौर्णमासीं च कार्तिकीम्' (भीष्म० २. २३), 'माघोऽयं समनुप्राप्तः' (अनुशासन० १६७. २२८) इन स्थलों में कार्तिक, माघ इन महीनों का स्पष्ट ही उल्लेख है।

४. पक्ष और तिथि—'पौर्णमासीं च कार्तिकीम्' (भीष्म० २. २३), 'कृष्ण चतुर्दशीम्' (भीष्म० ३. ३३), 'अमावास्यां त्रयोदशीम्' (भीष्म० ३ ३२), 'अमावास्या भविष्यति' (उद्योग० १४२. १८), 'त्रिभागशेषः पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति' (अनुशासन० १६७. २८) आदि स्थलों में कृष्ण और शुक्ल पक्ष का स्पष्ट उल्लेख पक्ष निर्णय में उपयोगी है। इन्हीं वचनों में चतुर्दशी, अमावास्या और पूर्णिमा का भी उल्लेख है।

५. नक्षत्र—'रेवत्यां' (उद्योग० ८६. ७), 'तामाहुः शक्रदेवताम्' (उद्योग० १४२।१८), 'ज्येष्ठामाक्रम्य तिष्ठति' (भीष्म० ३. १६), 'पुष्येण सम्प्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः' (शल्य० ३४।६-६३), 'पुष्येण' (शल्य० ३५. १५), 'मैत्रनक्षत्रयोगे' (शल्य० ३६. १५) आदि स्थलों में रेवती, ऐन्द्र, ज्येष्ठा, पुष्य, श्रवण, मैत्र (अनुराधा) नक्षत्र का उल्लेख है।

६. दिन-संख्या—'सप्तमाच्चापि दिवसात्' (उद्योग० १४२. १८) 'मासमात्रं बहिः पुरात्' (शान्ति० १।२), 'पञ्चाशतं षट् च' (शान्ति० ५१. १४), 'पञ्चाशन्नगरोत्तमे' (अनुशा० १६७. ५), 'अष्ट पञ्चाशतं रात्र्यः' (अनुशासन० १६७. २७), 'चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च' (शल्य० ३४ ६), 'अष्टादशाऽभवत्' (आदि० २।३८१) आदि वचन क्रमशः सात, तीस, पचास+छह=छप्पन, पचास, अठावन, बयालीस और अठारह दिन के द्योतक हैं।

७. दिन—युद्धारम्भ और युद्धान्त के सन्दर्भ में सप्ताह के सात दिनों में किसीका उल्लेख उपलब्ध नहीं हो पाया, अतः सोम, मङ्गल, बुध आदि दिनों की दृष्टि से विचार नहीं किया जा सकता।

"रविवारेण संयुक्ता यदा स्यात्पौषज्येष्ठयोः ।
अमावास्या तदा पृथ्वी रुंड मुंडा च जायते ।।"
(शीघ्रबोध ४. ५८)

"ज्येष्ठ और पौष को अमावस्या रविवारी हो तो पृथ्वी रुंड-मुंड युक्त हो ।।"

महाभारत युद्ध में पृथ्वी रुंड-मुंड से युक्त हुई, अतः फलबल कल्प्य है कि युद्धकाल की पौष अमावास्या रविवारसे युक्त थी ।

इस तरह, महाभारत युद्धकाल का निर्णय करते समय वर्ष, अयन, मास, पक्ष, तिथि, नक्षत्र और दिन संख्याकी दृष्टि से विचार कर्त्तव्य है ।

५. पृष्ठभूमि

भगवान् श्रीकृष्ण ने पाण्डवों के दूत और नायक होकर हेमन्त ऋतु के शुभागमन पर कौमुदमास (कार्तिक), रेवती नक्षत्र में उपप्लव्य नगर से हस्तिनापुर के लिये प्रस्थान किया ।

"ततोव्यपेततमसि सूर्ये विमलवद्गते ।
मैत्रे मुहूर्ते सम्प्राप्ते मृद्वर्चिषि दिवाकरे ।।"
"कौमुदे मासि रेवत्यां शरदन्ते हिमागमे ।
स्फीतसस्य सुखे काले कल्पः सत्त्ववतां वरः ।।"
(महा० उद्योग० ८३।६, ७)

"उसके बाद जब रात्रिका अन्धकार दूर हुआ और निर्मल आकाश में सूर्यदेव का उदय होने पर उनकी कोमल किरणें सब ओर फैल गयीं, कार्तिक मास के रेवती नक्षत्र में मैत्र नामक मुहूर्त उपस्थित होने पर सत्त्व-गुणी पुरुषों में श्रेष्ठ एवं समर्थ श्रीकृष्ण ने यात्रा प्रारम्भ की । उन दिनों शरद् ऋतु का अन्त और हेमन्त का आरम्भ हो रहा था । सब ओर पर्याप्त उपजी हुई खेती लहलहा रही थी ।।"

उपप्लव्य से चलकर रात्रि-विश्राम वृकस्थल में वर्णित है (उद्योग पर्व ८४।१५-२३)। वृकस्थल उन पाँच गावों में एक था, जिसके मिल जाने पर पाण्डव बिना युद्ध के भी सन्तुष्ट हो सकते थे—

"अविस्थलं वृकस्थलं माकन्दीं वारणावतम् ।
अवसानं भवत्वत्र कञ्चिदेकं च पञ्चमम् ॥"
(उद्योग० ३१।१९)

पुन: रात्रि बीतने पर हस्तिनापुर पहुँचने का उल्लेख है (उद्योग० ८५।१६-१८ ; ८६।१)। तत्पश्चात् विदुरजी के घर में रात्रि-विश्राम का वर्णन है (उद्यो० ९१।४१)। पुन: प्रात: से सायं तक कौरव सभा में असफल शान्ति-वार्ता का निरूपण है। उसी दिन कुन्तीदेवी से पाण्डवों के लिए युद्ध की आज्ञा प्राप्त कर तथा कर्ण को एकान्त में कौन्तेय बताकर उनसे पाण्डव पक्ष में सम्मिलित होनेके अनुरोध का वर्णन है। अन्त में कर्ण के अस्वीकार करने पर भीष्म, द्रोण, शल्य एवं दुर्योधन के प्रति युद्धारम्भ सम्बन्धी सन्देश की घोषणा का वर्णन (उद्योग० १४२।१८) है। तत्पश्चात् उपप्लव्य आकर पाण्डवों और समुपस्थित राजाओं को सन्देश सुनाकर रात्रि-विश्राम का वर्णन है। उपप्लव्य से चलकर पुनः उपप्लव्य लौट आने तक तीन दिनों का ही विवरण प्राप्त होने पर भी पाण्डवों से भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा कथित 'प्रयाध्वं वै कुरुक्षेत्रं पुष्योऽद्येति पुन: पुन:' (उद्योग० १५०।३) इस दुर्योधन-वाक्य से यह सिद्ध होता है कि रेवती से पुष्य नक्षत्र तक के दिन शान्तिवार्ता के सन्दर्भ में भगवान् श्रीकृष्ण के व्यतीत हुए।

इस तरह उपप्लव्य नगर से पाण्डवों के नायक और दूत बनकर श्रीकृष्ण भगवान् शरद् के अन्त और हिम के आगमन पर हस्तिनापुर गये। दुर्योधन ने उनकी अवज्ञा की। असफल शान्तिवार्ता के बाद भगवान् ने कुन्ती देवी से मिलकर पाण्डवों के लिए युद्ध की आज्ञा प्राप्त की। कर्ण को भी एकान्त में कौन्तेय बताकर उन्हें पाण्डव नायक युधिष्ठिराग्रज के रूप में महिमान्वित करना चाहा, परन्तु कर्ण ने कई दृष्टियों से जब असमर्थता व्यक्त की तब युद्ध-सन्देश की घोषणा करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा—

"ब्रूया: कर्ण इतो गत्वा द्रोणं शान्तनवं कृपम् ।
सौम्योऽयं वर्तते मास: सुप्रापयवसेन्धव: ॥"
"सर्वौषधिवनस्फीत: फलवानल्पमक्षिक: ।
निष्पङ्को रसवत्तोयो नात्युष्णशिशिर: सुख: ॥"
(महा० उद्योग० १४२।१६, १७)

"कर्ण ! तुम यहां से जाकर द्रोण, शान्तनुनन्दन भीष्म और कृपाचार्य

से कहना कि यह सौम्य (सुखद) मास चल रहा है। इसमें पशुओं के लिए घास और जलाने के लिए लकड़ी आदि वस्तुएँ सुगमता से मिल सकती हैं॥"

"सब प्रकार की औषधियाँ तथा फल-फूलों से वनकी समृद्धि बढ़ी हुई है, धान के खेतों में खूब फल लगे हुए हैं, मक्खियाँ बहुत कम हो गयी हैं, धरती पर कीचड़ का नाम नहीं हैं। जल स्वच्छ एवं सुस्वादु प्रतीत होता है, इस सुखद समय में न तो अधिक गर्मी है और न अधिक सर्दी ही॥"

सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति।
संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम्॥"
(महा० उद्योग० १४२।१८)

"आज से सातवें दिन (सप्ताह) के बाद अमावास्या होगी। उसके देवता इन्द्र कहे गये हैं। उसी में युद्ध को तैयारी की जाय॥"

श्रीकृष्ण का सन्देश प्राप्त कर दोनों सेनाओं ने रात्रि-विश्राम के अनन्तर पुष्य-नक्षत्र में कुरुक्षेत्र के लिए प्रस्थान किया।

"ततः प्रत्यागतः कृष्णो धार्तराष्ट्रविसर्जितः।
अक्रियायां नरव्याघ्र पाण्डवानिदमब्रवीत्॥"
"न कुर्वन्ति वचो मह्यं कुरवः कालनोदिताः।
निर्गच्छध्वं पाण्डवेयाः पुष्येण सहिता मया॥"
(शल्य पर्व ३५. ९, १०)

"नरव्याघ्र ! कार्य न होने पर धृतराष्ट्र से विदा ले वहां से लौटे हुए श्रीकृष्ण ने पाण्डवों से इस प्रकार कहा—कौरव काल के अधीन हो रहे हैं, इसलिये वे मेरा कहना नहीं मानते हैं। पाण्डवो ! अब तुम लोग मेरे साथ पुष्य-नक्षत्र में युद्ध के लिए निकल पड़ो॥"

"ततस्ते धृतसंकल्पा युद्धाय सहसैनिकाः।
पाण्डवेया महाराज तां रात्रिं सुखमावसन्॥"
(उद्योग० १५४।२७)

"महाराज जनमेजय ! तदन्तर योद्धाओं सहित पाण्डव यद्ध के लिए दृढ़ निश्चय करके उस रात में वहाँ सुख पूर्वक रहे॥"

"प्रयाणं घुष्यतामद्य श्वोभूत इति मा चिरम् ।
ते तथेति प्रतिज्ञाय श्वोभूते चक्रिरे तथा ॥
हृष्टरूपा महात्मानो निवासाय महीक्षिताम् ।"
(उद्योग० १५३।१७, १७½)

"आज ही यह घोषणा करा दी जाय कि कल सवेरे ही युद्ध के लिए प्रस्थान करना है। इसमें बिलम्ब नहीं होना चाहिये।", दुर्योधन का यह आदेश सुनकर 'बहुत अच्छा—ऐसा ही होगा' यह प्रतिज्ञा करके महामना कर्ण आदि ने अत्यन्त प्रसन्न होकर सवेरा होते ही राजाओं के निवास के लिए शिविर बनवाने आरम्भ कर दिये ॥"

"व्युष्टायां वै रजन्यां हि राजा दुर्योधनस्ततः ।
व्यभजत् तान्यनीकानि दश चैकं च भारत ॥"
(उद्योग० १५५।१)

"रात बीतने पर जब सबेरा हुआ, तब राजा दुर्योधन ने अपनी ग्यारह अक्षौहिणी सेना का विभाग किया।"

"अक्षौहिण्यस्तु सप्तैव पाण्डवानामभूद् बलम् ।
अक्षौहिण्यो दशैका च कौरवाणामभूद् बलम् ॥"
(उद्योग० १५५।२७)

"तत्र दुर्योधनो राजा शूरान् बुद्धिमतो नरान् ।
प्रसमीक्ष्य महाबाहुश्चक्रे सेनापतींस्तदा ॥
पृथगक्षौहिणीनां च प्रणेतॄन् नरसत्तमान् ।
विधिवत् पूर्वमानीय पार्थिवानभ्यषेचयत् ॥
कृपं द्रोणं च शल्यं च सैन्धवं च जयद्रथम् ।
सुदक्षिणं च काम्बोजं कृतवर्माणमेव च ॥
द्रोणपुत्रं च कर्णं च भूरिश्रवसमेव च ।
शकुनिं सौबलं चैव बाह्लीकं च महाबलम् ॥"
(उद्योग० १५५।३०–३३)

"पाण्डवों की सेना केवल सात अक्षौहिणी थी। कौरवों के पक्ष में ग्यारह अक्षौहिणी सेना एकत्र हो गयी थी ॥"

"उस समय वहाँ महाबाहु राजा दुर्योधन ने अच्छी तरह सोच-विचार कर बुद्धिमान् एवं शूर-वीर ११ पुरुषों को सेनापति बनाया ॥"

'कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा—इन श्रेष्ठ पुरुषों को एवं मद्रराज शल्य, सिन्धुराज जयद्रथ, कम्बोजराज सुदक्षिण, कृतवर्मा, कर्ण, भूरिश्रवा, सुबलपुत्र शकुनि तथा महाबली बाह्लीक—इन राजाओं को पहले अपने सामने बुलाकर उन सबको पृथक्-पृथक् एक-एक अक्षौहिणी सेना का नायक निश्चित करके विधि पूर्वक उनका अभिषेक किया ॥"

"ततः सेनापतिं चक्रे विधिवद् भूरिदक्षिणम् ।
धृतराष्ट्रात्मजो भीष्मं सोऽभिषिक्तोव्यरोचत ॥"
(उद्योग पर्व १५६।२६)

"तदन्तर धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन ने प्रचुर दक्षिणा देने वाले भीष्मजी का प्रधान सेनापति के पद पर विधि पूर्वक अभिषेक किया ॥"

इधर पाण्डवों के सेनानायक का वर्णन इस प्रकार है—

"ततो द्रुपदमानाय्य विराटं शिनिपुङ्गवम् ।
धृष्टद्युम्नं च पाञ्चाल्यं धृष्टकेतुं च पार्थिव ॥
शिखण्डिनं च पाञ्चाल्यं सहदेवं च मागधम् ।
एतान् सप्तमहाभागान् वीरान् युद्धाभिकांक्षिणः ॥
सेनाप्रणेतॄन् विधिवदभ्यषिञ्चद् युधिष्ठिरः ।
सर्वसेनापतिं चात्र धृष्टद्युम्नं चकार ह ॥
द्रोणान्तहेतोरुत्पन्नो य इद्धाज्जातवेदसः ।
सर्वेषामेव तेषां तु समस्तानां महात्मनाम् ॥
सेनापतिर्पतिं चक्रे गुडाकेशं धनञ्जयम् ।
अर्जुनस्यापि नेता च संयन्ता चैव वाजिनाम् ॥
संकर्षणानुजः श्रीमान् महाबुद्धिर्जनार्दनः ।"
(उद्योगपर्व १५७।११-१५३)

"हे जनमेजय ! तदनन्तर राजा द्रुपद, विराट, सात्यकि, पाञ्चाल-राजकुमार धृष्टद्युम्न, धृष्टकेतु, पाञ्चालवीर, शिखण्डी और मगधराज सहदेव—इन सात युद्धाभिलाषी महाभाग वीरोंको युधिष्ठिर ने विधि पूर्वक सेनापति के पद पर अभिषिक्त कर दिया और धृष्टद्युम्न को संपूर्ण सेनाओं

का प्रधान सेनापति बना दिया, जो द्रोणाचार्य का अन्त करने के लिए उत्पन्न हुए थे ।।"

'तदन्तर उन्होंने निद्रा विजयी वीर धनञ्जय को उन समस्त महामनावीर सेनापतियों का भी अधिपति बना दिया। अर्जुन के भी नेता और उनके घोड़ों के नियन्ता हुए बलराम के छोटे भाई परम बुद्धिमान् श्रीमान् भगवान् श्रीकृष्ण ।।"

"द्वावेव तु महाराज तस्माद् युद्धादपेयतुः।
रौहिणेयश्च वार्ष्णेयो रुक्मी च वसुधाधिपः ।।"
(उद्योग० १५८. ३८)

"महाराज ! उस युद्ध से दो ही वीर अलग हो गये थे—एक तो वृष्णिवंशी रोहिणी नन्दन बलराम और दूसरा राजा रुक्मी ।।"

"अत्यद्भुतानि कर्माणि क्षत्रियाणांमहात्मनाम् ।
बहुलत्वान्न संख्यातुं शक्यान्यब्दशतैरपि ।।
प्राधान्यतस्तु गदतः समासेनैव मे श्रृणु ।
कर्माणि पृथिवीशानां यथावदमरद्युते ।।"
(आश्वमेधिकपर्व ६०।६, ७)

"महाभारत युद्ध में काम आने वाले मनस्वी क्षत्रिय वीरों के कर्म बड़े अद्भुत हैं। वे इतने अधिक हैं कि यदि विस्तार के साथ उनका वर्णन किया जाय तो सौ वर्षों में भी उनकी समाप्ति नहीं हो सकती ।।"

"अतः देवताओं के समान तेजस्वी तात ! मैं मुख्य-मुख्य घटनाओं को ही संक्षेप से सुना रहा हूँ, आप उन भूपतियों के कर्म यथावत् रूप से सुनिये ।।"

"भीष्मः सेनापतिरभूदेकादशचमूपतिः।
कौरव्यः कौरवेन्द्राणां देवानामिव वासवः ।।
शिखण्डी पाण्डुपुत्राणां नेता सप्तचमूपतिः।
बभूव रक्षितो धीमान् श्रीमता सव्यसाचिना ।।"
(आश्वमेधिक पर्व ६०।८, ९)

"जैसे इन्द्र देवताओं की सेना के स्वामी हैं, वैसे ही कुरुकुल तिलक

भीष्म भी श्रेष्ठ कौरव वीरों की सेना के अधिपति बनाये गये। ये ग्यारह अक्षौहिणी सेना के संरक्षक थे ॥"

"पाण्डवों के सेना नायक शिखण्डी थे, जो सात अक्षौहिणी सेना का संचालन करते थे। बुद्धिमान् शिखण्डी श्रीमान् सव्यसाची अर्जुन के द्वारा सुरक्षित थे ॥"

"तेषां तदभवद् युद्धं दशाहानि महात्मनाम्।
कुरूणां पाण्डवानां च सुमहल्लोमहर्षणम् ॥"१०॥
"ततः शिखण्डी गाङ्गेयं युध्यमानं महाहवे।
जघान बहुभिर्बाणैः सह गाण्डीवधन्वना ॥"११॥
"अकरोत् स ततः कालं शरतल्पगतो मुनिः।
अयनं दक्षिणं हित्वा सम्प्राप्ते चोत्तरायणे ॥"१२॥

"महामनस्वी कौरवों और पाण्डवों में दस दिनों तक महान् रोमांचकारी युद्ध हुआ ॥ फिर दसवें दिन शिखण्डी ने महासमर में जूझते हुए गङ्गानन्दन भीष्म को गाण्डीवधारी अर्जुन की सहायता से बहु संख्यक बाणों द्वारा बहुत घायल कर दिया ॥ तत्पश्चात् भीष्म जी बाणशय्यापर पड़ गये। जबतक दक्षिणायन रहा है, वे मुनिव्रतका पालन करते हुए शय्या पर सोते रहे हैं। दक्षिणायन समाप्त होकर उत्तरायण आने पर ही उन्होंने मृत्यु स्वीकार की है ॥"

"ततः सेनापतिरभूद् द्रोणोऽस्त्रविदुषां वरः।
प्रवीरः कौरवेन्द्रस्य काव्यो दैत्यपतेरिव ॥१३
अक्षौहिणीभिः शिष्टाभिर्नवभिर्द्विजसत्तमः।
संवृतः समरश्लाघी गुप्तः कृपवृषादिभिः ॥१४॥
धृष्टद्युम्नस्त्वभून्नेता पाण्डवानां महास्त्रवित्।
गुप्तो भीमेन मेधावी मित्रेण वरुणो यथा ॥१५॥
स च सेनापरिवृतो द्रोणप्रेप्सुर्महामनाः।
पितुर्निकारान् संस्मृत्य रणे कर्माकरोन्महत् ॥१६॥
तस्मिंस्ते पृथिवीपाला द्रोणपार्षतसंगरे।
नानादिगागता वीराः प्रायशो निधनं गताः ॥१७॥
दिनानि पञ्च तद् युद्धमभूत् परमदारुणम्।
ततो द्रोणः परिश्रान्तो धृष्टद्युम्नवशं गतः ॥१८॥"

"तदनन्तर अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ आचार्य द्रोण कौरवपक्ष के सेनापति बनाये गये। वे कौरवराज की सेना के प्रमुख वीर थे। मानो दैत्यराज बलि की सेना के प्रधान संरक्षक शुक्राचार्य हों॥"

"उस समय मरने से बची हुई नौ अक्षौहिणी सेना उन्हें सब ओर से घेरकर खड़ी थी। वे स्वयं तो युद्धोपयुक्त धैर्य रखते ही थे, कृपाचार्य और कर्ण भी सदा उनकी रक्षा करते रहते थे॥"

"इधर महान् अस्त्रवेत्ता धृष्टद्युम्न पाण्डव सेना के अधिनायक थे ही। जैसे मित्र वरुण की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार भीमसेन मेधावी धृष्टद्युम्न की रक्षा करने लगे॥"

"पाण्डव सेना से घिरे हुए महामनस्वी वीर धृष्टद्युम्न ने द्रोण के द्वारा अपने पिता के अपमान का स्मरण करके उन्हें मार डालने के लिए युद्ध में बड़ा भारी पराक्रम दिखाया॥"

"धृष्टद्युम्न और द्रोण के उस भीषण संग्राम में नाना दिशाओं से आये हुए भूपाल अधिक संख्या में मारे गये॥"

"उन दोनों का वह परमदारुण युद्ध पाँच दिनों तक चलता रहा। अन्त में द्रोणाचार्य बहुत थक गये और धृष्टद्युम्न के वश में पड़कर मारे गये॥"

* "ततः सेनापतिरभूत् कर्णो दौर्योधने बले।
अक्षौहिणीभिः शिष्टाभिर्वृतः पञ्चभिराहवे॥
* तिस्रस्तु पाण्डुपुत्राणां चम्वो बीभत्सुपालिताः।
हतप्रवीरभूयिष्ठा बभूवुः समवस्थिताः॥
ततः पार्थं समासाद्य पतङ्ग इव पावकम्।
पञ्चत्वमगमत् सौतिर्द्वितीयेऽहनि दारुणः॥"
(आश्वमेधिक ६०. १९-२१)

"तत्पश्चात् दुर्योधन की सेना में कर्ण को सेनापति बनाया गया, जो मरने से बची हुई पाँच अक्षौहिणी सेनाओं से घिरकर युद्ध के मैदान में खड़ा था॥"

"उस समय पाण्डवों के पास तीन अक्षौहिणी सेनाएँ शेष थीं, जिनकी

रक्षा अर्जुन कर रहे थे। उनमें बहुत-से प्रमुख वीर मारे गये थे; फिर भी वे युद्ध के लिए डटी हुई थीं ॥"

"कर्ण दो दिन तक युद्ध करता रहा। वह बड़े क्रूर स्वभाव का था। जैसे पतंग जलती आग में कूदकर जल मरता है, उसी प्रकार वह दूसरे दिन के युद्ध में अर्जुन से भिड़कर मारा गया ॥"

* "हते कर्णे तु कौरव्या निरुत्साहा हतौजसः।
अक्षौहिणीभिस्तिसृभिर्मद्रेशं पर्यबारयन् ॥१२॥
* हतबाहनभूयिष्ठाः पाण्डवाऽपि युधिष्ठिरम्।
अक्षौहिण्या निरुत्साहाः शिष्टया पर्यवारयन् ॥२३॥
अवधीन्मद्रराजानं कुरुराजो युधिष्ठिरः।
तस्मिंस्तदार्धदिवसे कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥२४॥'

"कर्ण के मारे जाने पर कौरव हतोत्साह होकर अपनी ओज शक्ति खो बैठे और मद्रराज शल्य को सेनापति बना कर उन्हें तीन अक्षौहिणी सेनाओं से सुरक्षित कर युद्ध आरम्भ किया ॥"

"पाण्डवों के भी बहुत-से वाहन नष्ट हो गये थे। उनमें भी अब युद्ध विषयक उत्साह नहीं रह गया था तो भी वे शेष बची हुई एक अक्षौहिणी सेना से घिरे हुए युधिष्ठिर को आगे करके शल्य का सामना करने के लिए बढ़े ॥

"कुरुराज युधिष्ठिर ने अत्यन्त दुष्कर पराक्रम करके दोपहर होते-होते मद्रराज शल्य को मार गिराया ॥"

'हते शल्ये तु शकुनिं सहदेवो महामनाः।
आहर्तारं कलेस्तस्य जघानामितविक्रमः ॥२५॥
निहते शकुनौ राजा धार्तराष्ट्रः सुदुर्मनाः।
अपाक्रामद् गदापाणिर्हतभूयिष्ठसैनिकः ॥२६॥
तमन्वधावत् संक्रुद्धो भीमसेनः प्रतापवान्।
ह्रदे द्वैपायने चापि सलिलस्थं ददर्श तम् ॥२७॥
हतशिष्टेन सैन्येन समन्तात् परिवार्य तम्।
अथोपविविशुर्हृष्टा ह्रदस्थं पञ्च पाण्डवाः ॥२८॥

विगाह्य सलिलं त्वाशु वाग्बाणैर्भृशविक्षतः ।
उत्थाय स गदापाणिर्युद्धाय समुपस्थितः ॥२६॥"

"शल्य के मारे जाने पर अमित पराक्रमी महामना सहदेव ने कलह की नींव डालने वाले शकुनि को मार दिया ॥"

"शकुनि की मृत्यु हो जाने पर राजा दुर्योधन के मन में बड़ा दुःख हुआ । उसके बहुत से सैनिक युद्ध में मार डाले गये थे । इसलिये वह अकेला ही हाथ में गदा लेकर रणभूमि से भाग निकला ॥"

"इधर से अत्यन्त क्रोध में भरे हुए प्रतापी भीम सेन ने उसका पीछा किया और द्वैपायन नामक सरोवर में पानी के भीतर छिपे हुए दुर्योधन का पता लगा लिया ॥"

"तदन्तर हर्ष में भरे हुए पांचो पाण्डव बची हुई सेना के द्वारा उस पर चारों ओर से घेरा डालकर तालाब में बैठे हुए दुर्योधन के पास जा पहुँचे ॥"

"उस समय युधिष्ठिर के वाग्बाणों से अत्यन्त घायल होकर दुर्योधन तुरन्त पानी से बाहर निकला और हाथ में गदा ले युद्ध के लिए उद्यत हो पाण्डवों के पास आ गया ॥"

"ततस्तालध्वजो रामस्तयोर्युद्ध उपस्थिते ।
श्रुत्वा तच्छिष्ययो राजन्नाजगाम हलायुधः ॥
अब्रवीच्च तदा रामो दृष्ट्वा कृष्णं सपाण्डवम् ।
दुर्योधनं च कौरव्यं गदापाणिमवस्थितम् ॥
※ चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै ।
पुष्येण सम्प्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः ॥
शिष्ययोर्वै गदायुद्धं द्रष्टुकामोऽस्मि माधव ॥"

(शल्यपर्व ३४।२, ५. ६)

"उस समय अपने दोनों शिष्यों का संग्राम उपस्थित होने पर उसका समाचार सुन तालचिह्नित ध्वजवालेहलधारी बलराम जी वहाँ आ पहुंचे ॥"

"उस समय बलराम जी ने श्रीकृष्ण, पाण्डव तथा हाथ में गदा

लेकर खड़े हुए कुरुवंशी दुर्योधन की ओर देखकर कहा—'माधव ! तीर्थयात्रा के लिये निकले हुए आज मुझे बयालीस दिन हो गये। पुष्यनक्षत्र में चला था और श्रवण नक्षत्र में पुनः वापस आया हूँ। अपने दोनों शिष्यों का गदा-युद्ध देखना चाहता हूँ ॥"

"ततः स निहतो राजा धार्तराष्ट्रो महारणे।
भीमसेनेन विक्रम्य पश्यतां पृथिवीक्षिताम् ॥"
(आश्वमेधिक ६०. ३०)

"तत्पश्चात् उस महासमर में सब राजाओं के देखते-देखते भीमसेन ने पराक्रम करके धृतराष्ट्र पुत्र राजा दुर्योधन को मार डाला ॥"

"ततस्तत् पाण्डवं सैन्यं प्रसुप्तं शिबिरे निशि।
निहतं द्रोणपुत्रेण पितुर्वधममृष्यता ॥३१॥"

"इसके बाद रात के समय जब पाण्डवों की सेना अपनी छावनी में निश्चिन्त सो रही थी, उसी समय द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने अपने पिता के वध को न सह सकने के कारण आक्रमण किया और सबको मार गिराया ॥"

'हतपुत्रा हतबला हतमित्रा मया सह।
युयुधानसहायेन पञ्च शिष्टास्तु पाण्डवाः ॥३२॥
सहैव कृपभोजाभ्यां द्रौणिर्युद्धादमुच्यत।
युयुत्सुश्चापि कौरव्यो मुक्तः पाण्डवसंश्रयात् ॥३३॥
निहते कौरवेन्द्रे तु सानुबन्धे सुयोधने।
विदुरः संजयश्चैव धर्मराजमुपस्थितौ ॥३४॥"

"उस समय पाण्डवों के पुत्र, मित्र और सैनिक सब मारे गये। केवल मेरे और सात्यकि के साथ पाँचों पाण्डव शेष रह गये हैं ॥"

"कौरवों के पक्ष में कृपाचार्य और कृत वर्मा के साथ द्रोणपुत्र अश्वत्थामा जीवित बचा है। कुरुवंशी युयुत्सु भी पाण्डवोंका आश्रय लेनेके कारण बच गये हैं ॥"

बन्धु-बान्धवों सहित कौरव राज दुर्योधन के मारे जाने पर विदुर और संजय धर्मराज युधिष्ठिर के आश्रय में आ गये हैं ॥"

"एवं तदभवद् युद्धमहान्यष्टादश प्रभो।
यत्र ते पृथिवीपाला निहताः स्वर्गमावसन् ॥"
(आश्वमेधिक पर्व ६०. ३५)

"प्रभो ! इस प्रकार अठारह दिनों तक वह युद्ध हुआ है। उसमें जो राजा मारे गये हैं, वे स्वर्गलोक में आ वसे हैं ॥"

(१) निष्कर्ष—

(१) 'रेवती' नक्षत्र में भगवान् श्रीकृष्ण ने उपप्लव्य नगर से हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान किया और उसके बाद आठवें दिन पुष्य नक्षत्र में दोनों सेनाओं ने कुरुक्षेत्र के लिए प्रस्थान किया। इस तरह 'रेवती' श्रीकृष्ण—प्रस्थान दिवस और 'पुष्य'-सैन्य-निर्याण-दिवस मान्य है। इसी तरह 'पुष्य' वलदेव-प्रयाण-दिवस और 'श्रवण' बलदेव पुनरागमन-दिवस एवं युद्धान्त-दिवस मान्य है।

(२) यद्यपि धृष्टद्युम्न पाण्डवों के सेनानायक थे, परन्तु भीष्म-पितामह के वध में नियुक्त होने के कारण शिखण्डी के नेतृत्व में दस दिनों का युद्ध मानना चाहिये, द्रोणाचार्य के वध में नियुक्त होने के कारण धृष्टद्युम्न के नेतृत्व में ग्यारहवें दिन से पन्द्रहवें दिन का युद्ध मानना चाहिये, कर्ण के वध में नियुक्त होने के कारण अर्जुन के नेतृत्व में सोलहवें और सत्रहवें दिन का युद्ध मानना चाहिये तथा क्रमशः शल्य-वध और दुर्योधन-वध में नियुक्त होने के कारण युधिष्ठिर और भीमसेन के नेतृत्व में अठारहवें दिन का युद्ध मानना चाहिये।

(३) 'भीष्मः सेनापतिरभूदेकादशचमूपतिः' (आश्वमेधिक ६०।८) इस श्रीकृष्ण-वचन के अनुसार भीष्माचार्य ग्यारह अक्षौहिणी सेना के अधिपति हुए, जबकि 'अक्षौहिणीभिः शिष्टाभिर्नवभिर्द्विजसत्तमः' (आश्व० ६०. १४) के अनुसार द्रोणाचार्य नौ अक्षौहिणी सेना के ; अतः ११—९=२ अक्षौहिणी कौरव-सेना का संहार भीष्मजी के नेतृत्व काल में पाण्डवों द्वारा हुआ। इसी तरह 'अक्षौहिणीभिः शिष्टाभिर्वृतः पञ्चभिराहवे' (आश्व० ६०.१९)के अनुसार कर्ण पाँच अक्षौहिणी सेनाके सेनापति बने जब कि'अक्षौहिणीभिस्तिसृभिर्मद्रेशं पर्यवारयन्' (आश्व० ६०. २२) के अनुसार शल्य तीन अक्षौहिणी सेना के ; अतः द्रोण के नेतृत्व काल में ९-५=४ अक्षौहिणी कौरव-सेना का संहार हुआ और ५-३=२ अक्षौहिणी का संहार कर्ण के नेतृत्व

काल में हुआ। २+४+२=८ अक्षौहिणी कौरवसेना का नाश १७ दिनों में हुआ। शेष तीन अक्षौहिणी सेना में अधिकांश का संहार शल्य-शकुनि के नेतृत्वकाल में युद्ध के अन्तिम दिन हुआ।

'तिस्रस्तु पाण्डुपुत्राणां' (आश्व० ६०. २०) के अनुसार भीष्म और द्रोण के नेतृत्वकाल में पाण्डवों के ७—३=४ अक्षौहिणी सेना का सहार हुआ। 'अक्षौहिण्याशिष्टया' (आश्व० ६०. २३) के अनुसार कर्ण के नेतृत्व में पाण्डवों के ३ -१=२ अक्षौहिणी सेना का संहार हुआ। अवशिष्ट एक अक्षौहिणी सेना में अधिकांश पाण्डव-सेना का संहार शल्य के नेतृत्व काल में और अश्वत्थामा द्वारा सौप्तिक संहार में हुआ।

संजय के अनुसार शल्यके नेतृत्वमें युद्धारम्भ होने पर धृतराष्ट्रके पक्ष में ग्यारह हजार रथ, दस हजार सातसौ हाथी, दो लाख घोड़े तथा तीन करोड़ पैदल—इतनी सेना शेष रह गयी थी। पाण्डवों के पास छः हजार रथ, छः हजार हाथी, दस हजार घोड़े और दो करोड़ पैदल—इतनी सेना शेष थी—

"एकादश सहस्राणि रथानां भरतर्षभ ॥
दश दन्तिसहस्राणि सप्त चैव शतानि च।
पूर्णे शतसहस्रे द्वे हयानां तत्र भारत ॥
पत्तिकोट्यस्तथा तिस्रो बलमेतत्तवाभवत्।
रथानां षट् सहस्राणि षट् सहस्राश्च कुञ्जराः॥
दश चाश्वसहस्राणि पत्तिकोटी च भारत।
एतद् बलं पाण्डवानामभवच्छेषमाहवे ॥"
(शल्य० ८. ३८-४१)

ध्यान रहे, दुर्योधन की ग्यारह अक्षौहिणी सेना का जब नाश हो गया युद्ध के अन्तिम दिन धृष्टद्युम्न के पास पाण्डवों की विशाल सेना में से केवल दो हजार रथ, सात सौ हाथी, पाँच हजार घोड़े और दस हजार पैदल बच गये थे—

"रथानां द्वे सहस्रे तु सप्तनागशतानि च ॥
पञ्च चाश्वसहस्राणि पत्तीनां च शतं शताः।
एतच्छेषमभूद् राजन् पाण्डवानां महद्बलम् ॥"
(शल्यपर्व २९. २२, २३)

६. ऐन्द्र नक्षत्र वस्तुतः ज्येष्ठा न कि चित्रा या विशाखा

"कौमुदे मासि रेवत्यां शरदन्तेहिमागमे' (उद्योग० ८३।७) के अनुसार शरद् के अन्त और हिमागम के योग से 'कुमुदानि सन्त्यस्मिन्निति' इस व्युत्पत्ति के योग से कौमुद मास का अर्थ कार्तिक मानना चाहिये। सर्वज्ञ नारायण और नीलकण्ठाचार्य ने भी ऐसा ही माना है। इस दृष्टि से कार्तिक मास के रेवती नामक नक्षत्र में श्रीकृष्ण शान्तिवार्ता के उद्देश्य से उपप्लव्य नगर से हस्तिनापुर के लिए प्रस्थित हुए। 'सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति। संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम्' (उद्यो० १४२।१८) इस भगवद्वचन के अनुसार पुष्य के एक सप्ताह बाद ऐन्द्र नक्षत्र में अमावास्या का योग था। ज्योतिषके अनुसार विशाखा के अग्नि और इन्द्र दोनों ही देवता हैं, जबकि 'ज्येष्ठा' के केवल इन्द्र। 'रेवती' से विशाखा सत्रहवें स्थान पर है और ज्येष्ठा उन्नीसवें स्थान पर। अमावास्या युक्त विशाखा से सत्रहवें दिन पूर्व कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी और अमावास्या युक्त ज्येष्ठा से उन्नीसवें दिन पूर्व कार्तिक शुक्ल द्वादशी होनी चाहिये। साथ ही शुक्लादि मासानुसार विशाखा या ज्येष्ठा में कार्तिक कृष्ण अमावास्या तथा शुक्लान्त मासानुसार मार्गशीर्ष अमावास्या होनी चाहिये। नक्षत्र दृष्टि से कार्तिकी अर्थात् कार्तिक पूर्णिमा भरणी, कृत्तिका या रोहिणी नक्षत्र में होनी चाहिये। अब क्योंकि रेवती से भरणी· कृत्तिका और रोहिणी क्रमशः तीसरे, चौथे और पांचवें स्थान पर है, अतः रेवती नक्षत्र में एकादशी, द्वादशी या त्रयोदशी होनी चाहिये। श्रीनीलकण्ठाचार्य ने शरदन्त हिमागम रेवती नक्षत्र में कार्तिक शुक्ल द्वादशी मानी है। इधर विशाखा को ऐन्द्र नक्षत्र और अमावास्या युक्त मानने पर मार्गशीर्ष की पूर्णिमा 'रोहिणी' में सिद्ध होती है, जब कि ज्येष्ठा में अमावास्या मानने पर आर्द्रा में। मार्गशीर्ष की पूर्णिमा मृगशिरा या आर्द्रा में प्रशस्त है। 'इन्द्रस्य चित्रा' (तैत्ति० ब्राह्मण १. ५. १) के अनुसार यदि मार्गशीर्ष अमावास्या चित्रा नक्षत्र में मानें तो चित्रा से रेवती पन्द्रहवें स्थान पूर्व होने के कारण श्रीकृष्ण के हस्तिनापुर प्रस्थान के दिन कार्तिक पूर्णिमा होनी चाहिये। इस दृष्टि से चित्रा से १६ वें स्थान आगे अर्थात् चित्रा के बाद १५ वें स्थान पर भरणी है, उसी में मार्गशीर्ष की पूर्णिमा होनी चाहिये। जबकि मृगशिरा जो कि भरणी के बाद तीसरे स्थान पर है और आर्द्रा जो कि भरणी के बाद चौथे स्थान पर है, उसमें मार्गशीर्ष की पूर्णिमा प्रशस्त है। एकपक्ष में ३ या ४ नक्षत्रों का क्षय

असम्भव होने के कारण चित्रा को ऐन्द्र नक्षत्र इस सन्दर्भ में मानना अनुपयुक्त परिलक्षित होता है। ज्योतिषशास्त्र के अधिकाधिक प्रमाणों से भी इन्द्र का नक्षत्र ज्येष्ठा ही है न कि चित्रा। 'इन्द्रस्यचित्रा' यह तैत्तिरीय ब्राह्मण-वचन प्राशस्त्यार्थ अर्थवाद मात्र है। श्रीकवीश्वर को वैदिक अर्थवाद तत्त्व का ज्ञान न होने के कारण ही उन्होंने उस अर्थवाद वचन से, जिसका तात्पर्य स्वार्थ में है ही नहीं, चित्रा को इन्द्र का नक्षत्र मान लिया जो कथमपि संगत नहीं।

श्री ग० वा० कवीश्वर ने मार्गशीर्ष चित्रा में अमावास्या मानी है। अज्ञात कर्तृक 'महाभारत युद्ध काल निर्णयः' ने विशाखा को ऐन्द्र नक्षत्र मानकर कार्तिक कृष्ण विशाखा में अमावास्या मानी है। 'भारत-सावित्री' ने हेमन्त के प्रथम मास अर्थात् मार्गशीर्ष शुक्ल १३ भरणी में मानी है, इससे सिद्ध होता है कि मार्गशीर्ष अमावास्या उसे भी विशाखा में ही मान्य है; क्योंकि विशाखा से भरणी ठीक चौदहवें स्थान पर है।

प्रश्न उठता है कि जब ज्येष्ठा ऐन्द्र नक्षत्र के रूप में प्रसिद्ध है और सबको मान्य भी है, तब उसी की उपेक्षाकर चित्रा या विशाखा को ऐन्द्र नक्षत्र मानने की उक्त विचारकों को क्यों आवश्यकता परिलक्षित हुई ?

उत्तर है, क्योंकि पुष्य नक्षत्र में उन विचारकों को सैन्य-निर्याण और श्रीकृष्ण द्वारा युद्धदिवस घोषणा मान्य है; अतः **'सप्तमाच्चापि दिवसात्'** इस भगवद् वचन के अनुसार पुष्य से सातवें स्थान पर 'चित्रा' अवस्थित होने के कारण चित्रा गौणी-वृत्ति से ऐन्द्र नक्षत्र मान्य है। पर है यह सर्वथा अनुचित।

पुष्य के एक सप्ताह बाद विशाखा होने के कारण अर्थात् पुष्य और विशाखा के बीच में ७ दिन होने के कारण विशाखा को ऐन्द्र नक्षत्र माना गया है।

मार्गशीर्ष कृष्ण को वक्ष्यमाण रीति से १३ दिनों का पक्ष मान कर तिथि के अनुगुण दो नक्षत्रों का क्षय मानकर मध्य के सात दिनों को देखते हुए ज्येष्ठा को ऐन्द्र नक्षत्र माना गया है, जो सर्वथा उचित है या 'सप्तमात्' का अभिप्राय सप्ताह बाद मानकर ज्येष्ठा को मुख्यवृत्ति से ही ऐन्द्र नक्षत्र माना गया है। कहा जा सकता है—

"गौणीवृत्ति से ही सही, परन्तु 'चित्रा' सातवें दिन के अनुरूप और 'विशाखा' उसके सन्निकट है, ऐसी स्थिति में 'ज्येष्ठा' को ऐन्द्र नक्षत्र मानने की क्या आवश्यकता है ?'

उत्तर है—(१) मार्गशीर्ष की अमावास्या 'चित्रा' में मानने पर मार्गशीर्ष पूर्णिमा 'आर्द्रा' या 'मृगशिरा' में न सिद्ध होकर 'भरणी' में सिद्ध होती है, जबकि उससे 'आर्द्रा' चार स्थान आगे और मृगशिरा तीन स्थान आगे हैं, अतः एक पक्ष में तीन या चार नक्षत्रों का क्षय सर्वथा अप्रामाणिक है। अतः 'चित्रा' में मार्गशीर्ष की अमावास्या मानना असंभव है।

(२) शल्यपर्वके अनुसार, 'जब सेना का बटवारा होने लगा, तब बलवानों में श्रेष्ठ महामना बलदेव जीने अपने भाई श्रीकृष्ण से कहा—'महाबाहु मधुसूदन ! उन कौरवों की भी सहायता करना' परन्तु श्रीकृष्ण ने उस समय उनकी वह बात नहीं मानी। इससे मन-ही-मन कुपित और खिन्न होकर महायशस्वी यदुनन्दन हलधर सरस्वती के तट पर तीर्थयात्रा के लिए चल दिये।' वास्तव में यह भी दुर्योधन पक्षपाती होने के कारण बलराम जी का दुराग्रह ही था; क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण ने दुर्योधन को भी अपनी एक अक्षौहिणी नारायणीय सेना दे दी थी; दुर्योधन के प्रति पक्षपात उद्योगपर्व की सभा में बलराम जी के भाषण से सिद्ध है, जिसका खण्डन तत्काल सात्यकिने किया था।

श्रीबलराम जी जहाँ 'पुष्य' नक्षत्र में पाण्डवों से मिले थे, वहाँ उन्होंने द्वारका से तीर्थयात्रा के उपयुक्त अग्नि, ब्राह्मण और अन्य प्रसाधनों को मँगवाकर 'अनुराधा' (मैत्र नक्षत्र) में उद्धवादि परिकर सहित तीर्थयात्रा प्रारम्भ की (शल्य० ३५।१६–३७ ;)। साथ ही कृतवर्मा ने दुर्योधन का और सात्यकि सहित श्रीकृष्ण ने पाण्डवों का आश्रय ग्रहण किया।

"ततो विभज्यमानेषु बलेषु बलिनां वरः।
प्रोवाच भ्रातरं कृष्णं रौहिणेयो महामनाः॥
तेषामपि महाबाहो साहाय्यं मधुसूदन।
क्रियतामिति तत् कृष्णो नास्य चक्रे वचस्तदा॥
* ततो मन्युपरीतात्मा जगाम यदुनन्दनः।
तीर्थयात्रां हलधरः सरस्वत्यां महायशाः॥"

* मैत्रनक्षत्रयोगे स्म सहितः सर्वयादवैः ।
आश्रयामास भोजस्तु दुर्योधनमरिंदमः ॥
युयुधानेन सहितो वासुदेवस्तु पाण्डवान् ।
रौहिणेये गते शूरे पुष्येण मधुसूदनः ॥
पाण्डवेयान् पुरस्कृत्य ययावभिमुखः कुरून् ।"
(शल्यपर्व ३५. ११–१५३)

ध्यान रहे, चित्रा के बाद स्वाति, विशाखा, अनुराधा और फिर ज्येष्ठा है। यदि श्रीकृष्ण ने ज्येष्ठा को ऐन्द्र नक्षत्र मानकर 'संग्रामो युज्यतां' न कहा होता तो उसके ठीक एक दिन पहले 'अनुराधा' में कृतवर्माका दुर्योधन पक्ष में सम्मिलित होना और सात्यकि सहित श्रीकृष्ण का घोषणा पूर्वक पाण्डव-पक्ष में सम्मिलित होना और श्रीबलराम जी का खिन्न होकर तीर्थयात्राके लिए प्रस्थित होना कैसे सभव था ? अतः 'चित्रा' या 'विशाखा' को ऐन्द्र नक्षत्र मानना सर्वथा अनुपयुक्त है।

(३)और भी!कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय ब्राह्मण प्रथमाष्टक पञ्चम अध्याय प्रथम अनुवाक् के अनुसार इन्द्रस्य चित्रा' (१२) जहाँ सिद्ध है, वहाँ 'इन्द्रस्य रोहिणी'(१६) और'इन्द्रस्य शतभिषक्'(२२) भी सिद्ध है। साथ ही'इन्द्राग्नियोर्विशाखे' (१४) यह भी सिद्ध है। ऐसी स्थिति में (१) चित्रा, (२) रोहिणी, (३) शतभिषा और (४) विशाखा—ये सभी ऐन्द्र नक्षत्र हैं। ऐसा होने पर भी 'इन्द्रो ज्येष्ठामनुनक्षत्रमेति' इस आम्नायानुसार श्रीमत्सायणाचार्य ने ज्येष्ठा को ही मुख्य ऐन्द्र नक्षत्र माना है। साथ ही 'इन्द्रस्य रोहिणी' (१६) इस वचन में प्रयुक्त 'रोहिणी' का प्रसंगानुसार ज्येष्ठा ही अर्थ किया है—'रोहिणीशब्देन ज्येष्ठोच्यते' साथ ही 'नक्षत्राणां शतभिषग्वसिष्ठः' इस वचन के अनुसार शतभिषा के अधिदैव वसिष्ठ को माना है और 'त्वष्टानक्षत्रमभ्येति चित्राम्' इस मन्त्रानुसार त्वष्टा को ही चित्रा का अधिदेव माना है। परमैश्वर्यशाली होनेके कारण त्वष्टा आदि को भी 'इन्द्र' कह दिया गया है। इस तरह जहाँ कृत्तिका के अग्नि और ज्येष्ठा के इन्द्र स्वतन्त्र देवता हैं, वहाँ विशाखा के अग्नि सहित इन्द्र हैं, अतः विशाखा के केवल इन्द्र अधिदेव कैसे मान्य हैं ?

"पूर्वं चित्रानक्षत्रस्वामी योऽयमिन्द्र उक्तः सोऽयं त्वष्टा परमैश्वर्ययोगादिन्द्र उच्यते। अन्यत्र 'त्वष्टा नक्षत्रमभ्येति चित्राम्' इति मन्त्राम्ना-

नात् ।" (श्रीमत्सायणाचार्य २२) (४) श्रीमहाभारत में जहाँ अन्यत्र कहीं केवल नक्षत्र का तो कहीं केवल अधिदैव का वर्णन है, वहाँ स्वयं महर्षि वेदव्यास ने विविध उत्पातों का वर्णन करते हुए युद्धारम्भ के एक रात्रि पूर्व ज्येष्ठा के साथ इन्द्र देवता का उल्लेख करते हुए ज्येष्ठा को ही ऐन्द्र नक्षत्र माना है—

"श्वेतो ग्रहः प्रज्वलितः सधूम इव पावकः ।
ऐन्द्रं तेजस्वि नक्षत्रं ज्येष्ठामाक्रम्य तिष्ठति ।।"

(भीष्मपर्व ३. १६)

"केतु नामक उपग्रह धूमयुक्त अग्नि के समान प्रज्वलित हो, इन्द्र देवता सम्बन्धी तेजस्वी ज्येष्ठा नक्षत्र पर जाकर स्थित है ।।"

इसलिये भी ज्येष्ठा को ही ऐन्द्र नक्षत्र मानना उपयुक्त है ।

(२) निष्कर्ष.

इन्द्र ज्येष्ठा के स्वतन्त्र देवता हैं । तिथि के अनुगुण आद्योपान्त नक्षत्रोपलब्धि भी ज्येष्ठा को ही ऐन्द्र नक्षत्र मानने पर सम्भव है । ज्येष्ठा से एक नक्षत्र पूर्व अनुराधा में श्रीबलराम जी की तीर्थ-यात्रा और कृतवर्मा का दुर्योधन पक्ष में सम्मिलित होना भी ज्येष्ठा को ऐन्द्र नक्षत्र मानने पर ही सुसंगत है । तैत्तिरीय ब्राह्मण भाष्य में श्रीमत्सायणाचार्य ने और महाभारत भाष्य में श्रीनीलकण्ठाचार्य ने भी ज्येष्ठा को ही ऐन्द्र नक्षत्र माना है और स्वयं श्रीवेदव्यास ने भी ऐसा ही स्वीकार किया है, अतः ज्येष्ठा को ही ऐन्द्र नक्षत्र मानना उपयुक्त है । इस तरह, इन्द्र देवता सम्बन्धी ज्येष्ठा नक्षत्र में मार्गशीर्ष की अमावास्या थी, अतः उससे पूर्व श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर प्रस्थान के दिन रेवती नक्षत्र में कार्तिक शुक्ल एकादशी या द्वादशी और पुष्य नक्षत्र में सैन्यनिर्याण के दिन मार्गशीर्ष कृष्ण पञ्चमी सिद्ध होती है । अब क्योंकि पुष्य के बाद दशवें स्थानपर ज्येष्ठा है और मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष त्रयोदश दिन का सिद्ध है ; अतः या तो इस बीच में दो नक्षत्र एवं तिथियों का क्षय मानकर 'सप्तमाच्चापि' का अभिप्राय मध्य के सात दिन समझने योग्य है या पञ्चमी से अमावास्या तक एक तिथि और एक नक्षत्र का क्षय मानकर 'च' और 'अपि' के योग से 'सप्तमात्' का अर्थ ठीक सातवें दिन न करके सप्ताह बाद करना चाहिये । वैसे श्रीकृष्ण की गणनाशैली महाभारत में यही परिलक्षित होती है कि वे मध्य के दिनों को ही गिनकर

आदि और अन्त के दिनों को छोड़कर दिन की घोषणा करते हैं ; क्योंकि उन्होंने भीष्मपितामह के देहत्याग की अवधि की घोषणा करते हुए कहा— 'पञ्चाशतं षट् च कुरुप्रवीर, शेषं दिनानां तव जीवितस्य।' (शान्तिपर्व ५१. १४)='आपके जीवन के ५६ दिन शेष हैं', परन्तु भीष्मजी ने देहत्याग के दिन बताया—'अष्ट पञ्चाशतं रात्र्यः शयानस्याद्य मे गताः' (अनुशासनपर्व १६७. २७), 'आज शरशय्या पर सोते हुए (जिस दिन आपने ५६ दिन बताया था, उस दिन से आज तक) ५८ दिन हो गये हैं', इसलिए यहाँ भी आदि और अन्त के दिन को छोड़कर मध्य के ७ दिनों की गणना वाली श्रीनीलकण्ठाचार्य की शैली इस दृष्टि से उपयुक्त परिलक्षित होती है—"प्रयाध्वं वै कुरुक्षेत्रं पुष्योऽद्येति पुनः पुनः' (उद्योग० १५०. ३) इति दुर्योधनवाक्यम्। शक्रदेवतामित्यनेन तस्यां ज्येष्ठानक्षत्रयोग उच्यते, स च तिथिद्वयक्षयात् तत्रासम्भवन्नपि तत्र तिथिवदेव नक्षत्रक्षयाद्वा तिथिनक्षत्रयोराद्यन्तयोगाद्वा ज्ञेयमिति सर्वं समञ्जसम्' (भीष्म० १७. २)

७. मार्गशीर्षकृष्णत्रयोदशदिनात्मक पक्ष

श्रीवेदव्यास जी के निम्नलिखित वचनों से यह सिद्ध होता है कि दो तिथियों का क्षय होने के कारण महाभारत युद्धारम्भ के समय तेरह दिनों का पक्ष था—

"चतुर्दशीं पञ्चदशीं भूतपूर्वां च षोडशीम्।
इमां तु नाभिजानेऽहममावास्यां त्रयोदशीम्॥
चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासीं त्रयोदशीम्॥"

(भीष्मपर्व ३. ३२)

"एक तिथि का क्षय होने पर चौदहवें दिन, तिथिक्षय न होने पर पन्द्रहवें दिन और एक तिथि की वृद्धि होने पर सोलहवें दिन अमावास्या होना तो पहले देखा गया है; परन्तु इस पक्ष में तेरहवें दिन यह अमावास्या आ गई है, ऐसा पहले भी कभी हुआ है, इसका मुझे स्मरण नहीं है। इस एक ही मास में तेरहवें दिन चन्द्र और सूर्य दोनों ग्रस्त हुए॥"

भगवान् श्रीकृष्ण के वचन से भी यही सिद्ध होता है—

"एवं पश्यन् हृषीकेशः सम्प्राप्तं कालपर्ययम्।
त्रयोदश्याममावास्यां तान्दृष्ट्वा प्राब्रवीदिदम्॥

चतुर्दशी पञ्चदशी कृतेयं राहुणा पुनः।
प्राप्ते वै भारते युद्धे प्राप्ता चाद्य क्षयाय नः॥"
(महा० मौसल पर्व २।१८, १९)

"इस तरह कालका उलट-फेर प्राप्त हुआ देख और तेरहवें दिन अमावास्या का संयोग जान भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि फिर चतुर्दशी को ही राहुने अमावास्या बना दिया है। महाभारत युद्ध के समय जैसा योग था, वैसा ही आज भी है। यह सब हमलोगों के विनाश का सूचक है।"

अब प्रश्न उठता है कि मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष त्रयोदश दिनों का था या पौष कृष्ण ?

"अलक्ष्यः प्रभयाहीनः पौर्णमासीं च कार्तिकीम्।
चन्द्रोऽभूदग्निवर्णश्च पद्मवर्णनभस्तले॥"
(भीष्मपर्व २. २३)

"मांसवर्षं पुनस्तीव्रमासीत् कृष्णचतुर्दशीम्॥" (भीष्मपर्व ३. ३३)

"कार्तिक की पूर्णिमा को कमल के समान नीलवर्ण के आकाश में चन्द्रमा प्रभाहीन होने के कारण दृष्टिगोचर नहीं हो पाता था। उसकी कांति भी अग्नि के समान प्रतीत होती थी॥"

'कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को बड़े जोर से मांस की वर्षा हुई थी।"

उक्त स्थल में कार्तिकी पूर्णिमा के पश्चात् कृष्ण चतुर्दशी का उल्लेख है, साथ ही उसके लिए 'मांसवर्षं पुनस्तीव्रमासीत्' में संलग्न भूतकालिक 'आसीत्' शब्द का प्रयोग है ; अतः मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष की चतुर्दशी का ही संकेत प्राप्त श्लोक में हुआ है। अब क्योंकि श्रीकृष्णवचन से यह सिद्ध है कि चतुर्दशी को राहु ने पञ्चदशी (अमावास्या) बना दिया था और 'इमां तु नाभिजानेऽहममावास्यां त्रयोदशीम्' (भीष्म पर्व ३. ३२) यह व्यास-वचन भी है, अतः कृष्ण चतुर्दशी का अभिप्राय अमावास्या समझना उपयुक्त है।

"चन्द्रादित्यावुभौ ग्रस्तावेकाह्नाहि त्रयोदशीम्।
अपर्वणि ग्रहं यातौ प्रजासंक्षयमिच्छतः॥"
(भीष्मपर्व ३. २८)

"(इस पक्ष में दो तिथियों का क्षय होने के कारण) एक ही दिन

त्रयोदशी तिथि को विना पर्व के ही राहु ने चन्द्रमा और सूर्य दोनों को ग्रस लिया है ; अतः ग्रहणावस्था को प्राप्त हुए वे दोनों ग्रह प्रजा का संहार चाहते हैं ॥"

"चन्द्र सूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासीं त्रयोदशीम् ॥"

(भीष्म० ३. ३२)

"इस एक ही महीने में तेरह दिनों के भीतर चन्द्रग्रहण और सूर्य-ग्रहण दोनों लग गये ॥"

'प्रजा संक्षयमिच्छतः' (भीष्म० ३ २८), **'अपर्वणि ग्रहेणैतौ प्रजाः संक्षयमिष्यतः'** (भीष्म० ३. ३३) इन वचनों का पोषण ग्रन्थान्तरसे भी होता है—

"यदैकमासे ग्रहणं जायते शशिसूर्ययोः।
शस्त्रकोपैः क्षयं यान्ति तदा भूपाः परस्परम् ॥"

(शीघ्रबोध ४।१६१)

"एकपक्षे यदा यान्ति तिथयश्च त्रयोदश।
त्रयस्तत्र क्षयं यान्ति वाजिनो मनुजा गजाः ॥"

(शीघ्रबोध ४।१७६)

'जो सूर्य-चन्द्र का एक मास में ग्रहण हो तो राजा आपस में शस्त्र द्वारा नाश को प्राप्त हों।'

'जो एक पक्ष में तेरह तिथियाँ हों तो हाथी, घोड़े और मनुष्य तीनों का नाश हो।'

उपर्युक्त व्यासवचन के सूक्ष्म अनुशीलन से एक ही मास में चन्द्रग्रहण के बाद तेरहवें दिन सूर्य ग्रहण सिद्ध होता है। ऐसा माननेमें ही **'एकमासीं त्रयोदशीम्'** की सार्थकता भी है। अतः **'अलक्ष्यः प्रभयाहीनः पौर्णमासीं च कार्तिकीम्'** से चन्द्रग्रहण का और **'मांसवर्षं पुनस्तीव्रमासीत् कृष्णचतुर्दशीम्'** से सूर्य-ग्रहण का संकेत प्राप्त होता है। मार्गशीर्ष की पूर्णिमा और पौष-कृष्ण चतुर्दशी या अमावास्या का उल्लेख न होने के कारण भी मार्गशीर्ष कृष्ण ही तेरह दिनों का पक्ष सिद्ध होता है।

रही बात **'चन्द्रादित्यावुभौ ग्रस्तावेकाह्नाहि त्रयोदशीम्'**='एक ही दिन त्रयोदशी तिथि को विना पर्व के ही राहु ने चन्द्रमा और सूर्य दोनों को ग्रस लिया'(३. २८) और **'चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासीं त्रयोदशीम्'** (३.३२) ='इस एक ही महीने में तेरहवें दिन चन्द्रग्रहण और सूर्य-ग्रहण दोनों लग गये' इन दोनों वचनों की सार्थकता की ! क्रमसमुच्चय मानने पर अर्थात् शुक्लादि कार्तिक शुक्लपक्ष और कार्तिक कृष्णपक्ष दोनों को ही तेरह-तेरह दिनों का पक्ष मानने पर दोनों वचनों की सार्थकता होती है। ऐसा सिद्ध होने पर आगे मार्गशीर्ष और पौष में पक्षक्रम से एक-एक तिथि की वृद्धि मानने पर तिथिक्षय की पूर्ति सम्भव है।

दोनों तरह से शुक्लादि कार्तिककृष्ण या शुक्लान्त कृष्णादि मार्ग-शीर्ष कृष्ण तेरह दिनों का पक्ष सिद्ध होता है।

भारत-सावित्री और श्रीनीलकण्ठाचार्य के मत का अनुशीलन करने पर भी शुक्लान्त मार्गशीर्ष कृष्ण ही तेरह दिनों का पक्ष सिद्ध होता है।

भारत-सावित्री के अनुसार मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशी भरणी नक्षत्र में युद्धारम्भ सिद्ध होता है—

'हेमन्ते प्रथमे मासे शुक्लपक्षे त्रयोदशी।
प्रवृत्तं भारतं युद्धं नक्षत्रं यमदैवतम् ॥"

(भारत–सावित्री ६४)

इस तरह तो भरणी से पूर्व चौदहवें दिन विशाखा नामक ऐन्द्र नक्षत्र में अमावास्या सिद्ध होती है। उससे भी तेरह दिन पूर्व कृत्तिका में कार्तिकी (कार्तिक की पूर्णिमा) सिद्ध होती है। साथ ही कार्तिकी कृत्तिका से भी तीन दिन पूर्व कार्तिक शुक्ल द्वादशी रेवती में श्रीकृष्ण का उपप्लव्य नगर से हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान सिद्ध होता है।

अर्थात् भारत-सावित्री के अनुसार कार्तिक शुक्ल १२ रेवती में श्रीकृष्ण-निर्याण, कार्तिक कृत्तिका में कार्तिकी, मार्गशीर्ष कृष्ण ५ पुष्य में सैन्य निर्याण, मार्गशीर्ष कृष्ण १३ विशाखा में अमावास्या और मार्गशीर्ष शुक्ल १३ भरणी में युद्धारम्भ सिद्ध होता है।

श्रीनीलकण्ठाचार्य के अनुसार कार्तिक शुक्ल द्वादशी रेवतीमें श्रीकृष्ण निर्याण, मार्गशीर्ष कृष्ण पञ्चमी 'पुष्य' में सैन्य-निर्याण, मार्गशीर्ष कृष्ण

ज्येष्ठा में अमावास्या और मार्गशीर्ष कृष्ण ही त्रयोदशदिनात्मक पक्ष सिद्ध होता है—

"तत्रायं निष्कर्षः—कार्तिकशुक्लद्वादश्यां रेवत्यां कृष्णप्रयाणम्, ततोमार्गशीर्षकृष्णपञ्चम्यां पुष्ये सेनयोनिर्याणम्, ततः पञ्चम्या उपरि षष्ठीमारभ्य सप्तदिनानि गणयित्वा तदुपर्यष्टमेऽह्नि अमावास्या भविष्यतीत्यनेन त्रयोदशदिनात्मकोऽयं कृष्णपक्षो महोत्पातजनक इति सूचितम्। शक्रदेवतामित्यनेन तस्यां ज्येष्ठानक्षत्रयोग उच्यते ॥" (भीष्म० १७. २)

(३) निष्कर्ष

शुक्लादि मासानुसार कार्तिक कृष्ण को और शुक्लान्त मासानुसार मार्गशीर्ष कृष्ण को त्रयोदश दिनों का पक्ष मानना उपयुक्त है।

८. युद्धारम्भ और युद्धान्त के द्योतक वचन

"सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति।
संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम् ॥"

(उद्योग० १४२ १८)

युद्धारम्भ सम्बन्ध में मुख्य प्रमाण भगवान् श्रीकृष्ण का उक्त वचन आपाततः प्रतीत होता है। उपप्लव्य नगर से पाण्डवों के नायक और दूत बनकर श्रीकृष्ण भगवान् शरद् के अन्त और हिम के आगमन पर हस्तिनापुर गये। दुर्योधन ने उनकी अवज्ञा की। एकान्त में उन्होंने कर्ण को कुन्तीपुत्र बताया तथा पाण्डव पक्ष से युद्ध के लिए आमन्त्रित एवं प्रेरित किया। साथ ही विजयोत्सव के बाद राज्याभिषेकका वचन प्रदान कर अत्यन्त सम्मानित किया, परन्तु कर्ण ने दुर्योधन का पक्ष त्यागने में पूर्ण असमर्थता व्यक्त की। साथ ही पाण्डवों की विजय और धार्तराष्ट्रों की पराजय भी सुनिश्चित सिद्ध की। तब युद्धारंभ का निर्देश करते हुए अमोघदर्शी भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—"आज के सातवें दिन अमावास्या होगी। उसके देवता इन्द्र कहे गये हैं। उसी में युद्ध आरम्भ किया जाय (अर्थात् युद्ध की तैयारी की जाये) ॥"

युद्धारम्भ के सम्बन्ध में जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण का उक्त वचन मान्य है, वहाँ युद्धान्त में श्रीबलराम जी का निम्नलिखित वचन प्रमाण है—

"चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै।
पुष्येण सम्प्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः॥
शिष्ययोर्वै गदायुद्धं द्रष्टुकामोऽस्मि माधव।"
(शल्यपर्व ३४. ६, ६½)

सैन्य-निर्याण के दिन श्रीबलराम जी भगवान् श्रीकृष्ण और पाण्डवों से मिलकर तीर्थयात्रा के उद्‌देश्य से उपप्लव्य से चलकर सरस्वती के तट पर रुक गये। उन्होंने द्वारका से उपयुक्त ब्राह्मण, अग्नि और अन्य सामग्रियों को मँगवाकर अनुराधा नक्षत्र में (नीलकण्ठाचार्य के अनुसार) तीर्थयात्रा प्रारम्भ की। पुनः वे गदायुद्ध के समय श्रवण नक्षत्र में देवर्षि नारद से प्रेरित होकर आयें। इस तरह पुष्य से श्रवणोत्तर श्रवण तक उनके बयालीस दिन हो गये थे। उन्होंने श्रीमदनमोहन श्यामसुन्दर से कहा—"आप लोगों से मिलकर तीर्थयात्रा के उद्‌देश्य से चले हुए आज मुझे बयालीस दिन हो गये। पुष्य नक्षत्र से चलकर श्रवण में पुनः वापस आया हूँ। माधव! मैं अपने दोनों (भीम और दुर्योधन) शिष्यों का गदायुद्ध देखना चाहता हूँ॥"

ध्यान रहे, ज्येष्ठा से श्रवणोत्तर श्रवण बत्तीसवें स्थानपर है। कुल अठारह दिनों का युद्ध बत्तीस दिनों में तभी सम्भव हो सकता है जब कि चौदह अवकाश माने जायँ। विशाखा को ऐन्द्र नक्षत्र मानने पर तो कुल अठारह युद्ध चौंतीस दिनों में माना जायगा, तव तो सोलह अवकाश की कल्पना करनी होगी। अव विचारणीय प्रश्न यह है कि युद्धारम्भ के सम्बन्ध में भगवान् श्रीकृष्ण का और युद्धान्त के सम्बन्ध में श्रीवलभद्र का वचन प्रमाण मान कर विचार होना चाहिये अथवा किन्हीं एक के ही वचन को मुख्य मानकर विचार होना चाहिये?

गदायुद्ध ही अन्तिम दिन का युद्ध था। उसी दिन सौप्तिक संहार भी हुआ। अतः युद्धान्त में श्रीबलदेव-वचन अकाट्य है। 'पुष्य से चलकर आज श्रवण में आया हूँ। बयालीस दिन हो गये हैं। मैं दोनों शिष्यों का गदायुद्ध देखना चाहता हूँ।' यह वचन व्यावहारिक स्थिति का ज्यों-का-त्यों अनुवाद है, अतः गौणाथक कदापि नहीं हो सकता। प्रसंगानुसार उसी दिन गदायुद्ध और सौप्तिक संहार भी सिद्ध है; अतः युद्धान्त में श्रीवलदेव वचन प्रमाण है, इसका कोई बाधक वचन भी नहीं है। युद्धारम्भ के सम्वन्ध में श्रीकृष्ण-

वचन की पूर्ण सार्थकता तभी सम्भव है, जब महाभारत के अनुसार एक-एक दिन का अवकाश प्रामाणिक सिद्ध हो। अथवा अठारह दिनों तक युद्ध सिद्ध करने वाले वचनों को और युद्धारम्भ एवं युद्धान्त सम्बन्धी श्रीकृष्ण-बलराम के वचनों को देखते हुए ही अर्थात् वचनबल से ही बत्तीस या चौंतीस दिनोंमें अठारह दिनों तक युद्ध की कल्पना तब तक सुसंगत है—जब तक बाधक वचन न प्रस्तुत किये जायं ?

अब यदि श्रवण में युद्धान्त और लगातार अठारह दिनों तक युद्ध मानकर विचार करें तो मृगशिरा से युद्धारम्भ सिद्ध होता है। श्रीनीलकण्ठाचार्य के अनुसार मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्दशी मृगशिरा से पौष शुक्ल प्रतिपदा श्रवण तक युद्धकाल निश्चित होता है। धारा-बन्धादि को लेकर ज्येष्ठा में युद्धारम्भ सम्बन्धी वचन की सार्थकता वे दर्शाते हैं—

"कार्त्तिकी कृत्तिकायोगानुपातेन चतुर्दश्यां मृगस्यैवसम्भावनाच्च। एतेन युद्धारम्भं प्रकृत्य 'मघाविषयगः सोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत' इति भीष्मपर्वणि सञ्जयवाक्यान्मघायां युद्धारम्भ इत्यपि निरस्तम्, बलदेववाक्यविरुद्धत्वात्। 'संग्रामं योजयेत् तत्र तांह्याहुः शक्रदैवताम्' तत्र संग्राममित्यनेन संग्रामे जयसाधनं धाराबन्धादिकं तस्यां योजयेदित्युक्तम्।"

(भीष्मपर्व १७. २)

९. अठारह दिन

'अठारह दिनों तक युद्ध और अठारह अक्षौहिणी सेना' यह महाभारतके सम्बन्ध में प्रसिद्धि महाभारत के सर्वथा अनुरूप है।

"अष्टादश समाजग्मुरक्षौहिण्यो युयुत्सया।
तन्महादारुणं युद्धमहान्यष्टादशाभवत्॥"

(आदि पर्व २. ३८१)

"कुरुक्षेत्र में युद्ध की इच्छा से अठारह अक्षौहिणी सेनाएं एकत्र हुईं थीं और वह महाभयंकर युद्ध अठारह दिनों तक चलता रहा॥"

श्रीभीष्मपितामह के नेतृत्व में दश दिनों तक, द्रोणाचार्य के नेतृत्व में पाँच दिनों तक, कर्ण के नेतृत्व में दो दिनों तक तथा शल्य के नेतृत्व में

आधा दिन युद्ध हुआ। उसके बाद भीमसेन और दुर्योधन का गदायुद्ध हुआ। फिर सौप्तिक संहार हुआ। इस तरह अठारह दिनों तक युद्ध हुआ अथवा अठारह दिनों में महाभारत युद्ध पूर्ण हुआ—

"परिरक्ष्य स सेनांते दशरात्रमनीकहा।
जगामास्तमिवादित्यः कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥"
(भीष्मपर्व १३. ११)

"युद्धं कृत्वा दिनान् पञ्च द्रोणो हत्वा वरूथिनीम्।
ब्रह्मलोकं गतो राजन् ब्राह्मणो वेदपारगः ॥"
(द्रोणपर्व २०१. १००)

"युद्धं कृत्वा महद्घोरं पञ्चाहानि महाबलः।
ब्राह्मणो निहतो राजन् ब्रह्मलोकमवाप्तवान् ॥"
(द्रोणपर्व २९२. १५५)

"ततः पार्थं समासाद्य पतङ्ग इव पावकम्।
पञ्चत्वमगमत् सौतिर्द्वितीयेऽहनि दारुणः ॥"
(आश्वमेधिक ६०. २१)

"अवधीन्मद्रराजानं कुरुराजो युधिष्ठिरः।
तस्मिंस्तदार्द्धदिवसे कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥"
(आश्वमेधिक० ६०. २४)

"अथापराह्णे तस्याह्नः परिवार्य सुयोधनः।
ह्रदादाहूय युद्धाय भीमसेनेन पातितः ॥"
(शल्यपर्व १. १२)

"अहानि युयुधे भीष्मो दशैव परमास्त्रवित्।
अहानि पञ्च द्रोणस्तु ररक्ष कुरुवाहिनीम् ॥
अहनी युयुधे द्वे तु कर्णः परबलार्दनः।
शल्योऽर्धदिवसं चैव गदायुद्धमतः परम् ॥
तस्यैव दिवसस्यान्ते द्रौणिहार्दिक्यगौतमाः।
प्रसुप्तं निशि विश्वस्तं जघ्नुर्यौधिष्ठिरं बलम् ॥"
(आदिपर्व २. ३०-३२)

"अस्त्र-शस्त्रों के सर्वोपरि मर्मज्ञ भीष्मपितामह ने दस दिनों तक युद्ध किया, आचार्य द्रोण ने पाँच दिनों तक कौरव-सेना की रक्षा की ॥"

"शत्रुसेना को पीड़ित करने वाले वीरवर कर्ण ने दो दिन युद्ध किया और शल्य ने आधे दिन तक। इसके पश्चात् (दुर्योधन और भीमसेन का) गदायुद्ध हुआ ॥"

"अठारहवाँ दिन बीत जाने पर रात्रि के समय अश्वत्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्य ने निःशङ्क सोते हुए युधिष्ठिर के सैनिकों को मार डाला ॥"

भारत-सावित्री ने भी इसी तथ्य का प्रकाश किया है—

"दिनानि दश भीष्मेण भारद्वाजेन पञ्च च।
दिनद्वये तु कर्णेन शल्येनार्धदिनं तथा ॥
दिनार्द्धं तु गदायुद्धमेतद्भारतमुच्यते।
एवमष्टादशं हन्ति अक्षौहिण्यो दिनक्रमात् ॥"

(भारतसावित्री ७९, ८०)

१०. लगातार अठारह दिनों तक युद्ध के पोषक वचन

श्रवण में युद्धान्त अथवा लगातार अठारह दिनों तक युद्धवाली गणनाओं की अपेक्षा या उपेक्षा करने से पूर्व अवकाश के औचित्य और अनौचित्य का निर्णय अत्यावश्यक है। भीष्म के नेतृत्व काल में सायंकाल चौथे दिन के अवहार के समय उनका निम्नलिखित वचन उनके नेतृत्वकाल में निरवकाश युद्ध सिद्ध करता है—

"तन्न मे रोचते युद्धं पाण्डवैर्जितकाशिभिः।
घुष्यतामवहारोऽद्य श्वो योत्स्यामः परैः सह ॥"

(भीष्मपर्व ६४. ७७)

"अतः विजय से सुशोभित होने वाले पाण्डवों के साथ इस समय युद्ध करना मुझे नहीं रुचता, आज (इस समय) अवहार (रात्रिभर के लिए युद्ध विराम) घोषित कर दिया जाय, कल (सवेरे) हम विपक्षियों से युद्ध करेंगे ॥"

साथ ही अवहार के वाद रात्रि बीतने पर पुनः नित्य ही युद्धारंभ

का वर्णन भी भीष्माचार्य के नेतृत्व में अवकाशयुक्त युद्ध को अप्रामाणिक सिद्ध करता है—

"ततः सैन्येषु भग्नेषु मथितेषु च सर्वशः।
प्राप्ते चास्तं दिनकरे न प्राज्ञायत किंचन॥
भीष्मं च समुदीर्यन्तं दृष्ट्वा पार्था महाहवे।
अवहारमकुर्वन्त सैन्यानां भरतर्षभ॥"
(भीष्म० ४९।५२, ५३)

• इति प्रथम दिवसावहारे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥४९॥

"इस प्रकार सम्पूर्ण सेना मथित हो उठी, व्यूह भंग हो गया और सूर्य अस्ताचल को चले गये; उस समय कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था॥"

"भरतश्रेष्ठ! इधर, उस महान् युद्ध में भीष्म का वेग अधिकाधिक प्रचण्ड होता जा रहा था, यह देख कुन्ती के पुत्रों ने अपनी सेनाओं को युद्ध क्षेत्र से पीछे हटा लिया॥"

यह वर्णन महाभारत में प्रथम दिन के युद्ध का उपसंहार विषयक है।

• द्वितीय-दिवस के युद्धारम्भ का उल्लेख

"एवमेनं महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः॥
सूर्योदयं च इच्छन्तः स्थिता युद्धाय दंशिताः।"
(भीष्मपर्व ५०. ५७, ५७½)

"भारत! इस प्रकार पाण्डव क्रौञ्चारुण नामक महाव्यूह की रचना करके सूर्योदय की प्रतीक्षा करते हुए युद्ध के लिए कवच आदि से सुसज्जित हो खड़े हो गये॥"

• द्वितीय-दिवस के युद्धावहार का उल्लेख

"ततोऽवहारः सैन्यानां तव तेषां च भारत।
अस्तं गच्छति सूर्येऽभूत् सन्ध्याकाले च वर्तति॥"
(भीष्म० ५५।४३)

इति द्वितीययुद्धदिवसावहारे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

"हे भारत ! इस प्रकार सूर्य के अस्ताचल को चले जाने पर सन्ध्या के समय आपकी और पाण्डवों की सेनाएँ लौट आयीं ।"

• तृतीय-युद्ध-दिवसारम्भ का उल्लेख

"प्रभातायां च शर्वर्यां भीष्मः शान्तनवस्तदा ।
अनीकान्यनुसंयाने व्यादिदेशाथ भारत ।।"
(भीष्म० ५६. १)

"भारत ! जब रात बीती और प्रभात हुआ, तब शान्तनुनन्दन भीष्म जी ने अपनी सेनाओं को युद्धभूमि में चलने का आदेश दिया ।।"

• इति तृतीये युद्धदिवसे परस्परव्यूहरचनायां षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

• तृतीय-युद्ध-दिवसावहार का उल्लेख

"ततोरविं संवृतरश्मिजालं दृष्ट्वा भृशं शस्त्रपरिक्षताङ्गाः ।।
तदैन्द्रमस्त्रं विततं च घोरमसह्यमुद्वीक्ष्य युगान्तकल्पम् ।
अथापयानंकुरवः सभीष्माः सद्रोणदुर्योधनबाह्लिकाश्च ।।
चक्रुर्निशां संधिगतां समीक्ष्य विभावसोर्लोहितरागयुक्ताम् ।
अवाप्य कीर्तिंच यशश्चलोके विजित्य शत्रूंश्च धनंजयोऽपि ।।
ययौ नरेन्द्रैः सह सोदरैश्च समाप्तकर्मा शिविरं निशायाम् ।
ततः प्रजज्ञे तुमुलः कुरूणां निशामुखे घोरतमः प्रणादः ।।"
(भीष्म० ५९. १३१-१३४)

• इति तृतीय दिवसावहारे एकोनषष्टितमोऽध्यायः. (५९)

"तदनन्तर शस्त्रों के आघात से अत्यन्त क्षत-विक्षत अङ्गोंवाले भीष्म, द्रोण, दुर्योधन, बाह्लिक तथा अन्य कौरव योद्धाओं ने सूर्यदेव को अपनी किरणों को समेटते देख और उस भयंकर ऐन्द्रास्त्र को प्रलयंकर अग्नि के समान सर्वत्र व्याप्त एवं असह्य हुआ जानकर सूर्य की लाली से युक्त संध्या एवं निशा के आरम्भकाल का अवलोकन कर सेना को युद्ध भूमि से लौटा लिया ।। धनंजय भी शत्रुओं को जीतकर लोक में सुयश और सुकीर्ति पाकर भाइयों तथा राजाओं के साथ सारा कार्य समाप्त करके निशा के आरम्भ में

अपने शिबिर को लौट आये ।। उस समय रात्रि के आरम्भ में कौरवों के दल में बड़ा भयंकर कोलाहल होने लगा ।।"

इस प्रकार तृतीय दिवसावहार से सम्बन्ध रखने वाला उनसठवाँ अध्याय पूर्ण।

• **चतुर्थ-युद्ध-दिवसारम्भ का उल्लेख**

"व्युष्टां निशां भारत भारतानामनीकिनीनां प्रमुखे महात्मा ।
ययौ सपत्नान् प्रतिजातकोपो वृतः समग्रेण बलेन भीष्मः ।।"
(भीष्मपर्व ६०. १)

"भारत ! जब रात बीती और प्रभात हुआ, तब भरतवंशियों की सेना के अग्रभाग में स्थित हुए महामना भीष्म समग्र सेना से घिरकर शत्रुओं से युद्ध करने के लिए चले। उस समय उन के मन में शत्रुओं के प्रति बड़ा क्रोध था ।।"

• **चतुर्थ-युद्ध-दिवसावहार का उल्लेख**

* "तन्न मे रोचते युद्धं पाण्डवैर्जितकाशिभिः ।
घुष्यतामवहारोऽद्य श्वो योत्स्यामः परैः सह ।।७७।।
विनदन्तो महात्मानः कम्पयन्तश्चमेदिनीम् ।
घट्टयन्तश्च मर्माणि तव पुत्रस्य मारिष ।।८५।।
प्रयाताः शिबिरायैव निशाकाले परंतप ।।८५३।।"

इति चतुर्थदिवसावहारे चतुः षष्टितमोऽध्यायः (अ० ६४)

"इसलिये विजय से सुशोभित होने वाले पाण्डवों के साथ इस समय युद्ध करना मुझे पसन्द नहीं। आज युद्ध का विराम घोषित कर दिया जाय। कल (सबेरे) हमलोग शत्रुओं के साथ युद्ध करेंगे ।।"

"शत्रुओं को संताप देने वाले श्रेष्ठ नरेश ! महात्मा पाण्डव गर्जते, पृथ्वी को कंपाते और आपके पुत्र के मर्मस्थानों पर चोट पहुँचाते हुए निशा-काल में शिबिर को ही लौट गये ।।"

इस प्रकार चतुर्थ दिवसावहार विषयक चौंसठवाँ अध्याय पूर्ण.

• **पञ्चम दिवस युद्धारम्भ का उल्लेख**

"व्युषितायां तु शर्वर्यामुदिते च दिवाकरे।
उभे सेने महाराज युद्धायैव समीयतुः ॥"
(भीष्म० ६९. १)

• इति पञ्चमदिवसयुद्धारम्भे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः.

"महाराज ! वह रात बीतने पर जब सूर्योदय हुआ, तब दोनों ओर की सेनाएँ आमने-सामने आकर युद्ध के लिए डट गयीं ॥"

• पञ्चमदिवसावहार का वर्णन

"एतस्मिन्नेव काले तु सूर्येऽस्तमुपगच्छति।
सर्वेषां चैव सैन्यानां प्रमोहः समजायत ॥
अवहारं ततश्चक्रे पिता देवव्रतस्तव।
सन्ध्याकाले महाराज सैन्यानां श्रान्तवाहनः ॥"
(भीष्म० ७४. ३६, ३७)

• इति पञ्चमदिवसावहारे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः।

"इसी समय सूर्य अस्ताचल को चले गये। आपके समस्त सैनिकों पर मोह छा गया ॥ तब आपके पिता (ताऊ) देवव्रत ने सन्ध्या के समय अपनी सेना को पीछे हटा लिया। उनके वाहन बहुत थक गये थे ॥"

• षष्ठदिवसयुद्धारम्भ के द्योतक वचन

"विश्रम्य ततो राजन् सहिताः कुरुपाण्डवाः।
व्यतीतायां तु शर्वर्यां पुनर्युद्धाय निर्ययुः ॥
एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः।
सूर्योदये महाराज पुनर्युद्धाय दंशिताः ॥
(भीष्म ७५. १, १३)

• इति षष्ठदिवसयुद्धारम्भे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः.

'राजन् ! रात को विश्राम करने के अनन्तर जब वह रात बीत गयी, तब कौरव और पाण्डव पुनः युद्ध के लिये साथ-साथ निकले ॥"

"महाराज ! भरतनन्दन ! इस प्रकार उस महान् मकरव्यूह की

रचना करके पाण्डव कवच बाँधकर सूर्योदय के समय पुनः युद्ध के लिए तत्पर हो गये ।।"

• षष्ठदिवसावहार के द्योतक वचन

"एवं भित्वा महेष्वासः पाण्डवानामनीकिनीम् ।
कृत्वावहारं सैन्यानां ययौ स्वशिबिरं नृप ।।"
(अर्जुनो वासुदेवश्च कौरवाणामनीकिमीम् ।
हत्वा विद्राव्य च शरैः शिबिरायैव जग्मतुः ।।)
(भीष्मपर्व० ७९. ६३)

• इति भीष्मपर्वणिषष्ठदिवसावहारे एकोनाशीतितमोऽध्यायः

• सप्तम दिवस युद्धारम्भ के द्योतक वचन

"ततः प्रभाते विमले स्वेन सैन्येन वीर्यवान् ।
अव्यूहत स्वयं व्यूहं भीष्मो व्यूहविशारदः ।
मण्डलं मनुजश्रेष्ठो नानाशस्त्रसमाकुलम् ।।" ८१. ११, १२।।

• इति सप्तमयुद्धदिवसे एकाशीतितमोऽध्यायः ।।

"तदनन्तर निर्मल-प्रभात की वेला में व्यूहविशारद नरश्रेष्ठ बलवान् भीष्म ने अपनी सेना के द्वारा स्वयं ही मण्डल नामक व्यूह का निर्माण किया, जो नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सम्पन्न था ।।"

• सप्तम युद्धावहार के द्योतक वचन

"एवमेते महाराज तावकाः पाण्डवैः सह ।
पर्यवर्तन्त सहिता निशाकाले परंतप ।।
ततः स्वशिबिरं गत्वा पाण्डवाः कुरवस्तथा ।
न्यवसन्त महाराज पूजयन्तः परस्परम् ।।"
(भीष्म० ८६. ५२, ५३)

• इति सप्तमदिवसयुद्धावहारे षडशीतिमोऽध्यायः ।।८६।।

"शत्रुओं को संताप देनेवाने महाराज ! इस प्रकार रात के समय आपके योद्धा पाण्डवों के साथ अपने-अपने शिबिर में लौट आये ।।"

"महाराज ! तत्पश्चात् पाण्डव तथा कौरव अपने शिविर में जाकर आपस में एक-दूसरे की प्रशंसा करते हुए विश्राम करने लगे ॥"

- **अष्टमदिवस युद्धारम्भ के द्योतक वचन**

* "परिणाम्य निशां तां तु सुखं प्राप्ता जनेश्वराः ।
कुरवः पाण्डवाश्चैव पुनर्युद्धाय निर्ययुः ॥" ८७. १॥

"राजन् ! नरेश्वर कौरव और पाण्डव निद्रासुख का अनुभव करके वह रात बिताकर पुनः युद्ध के लिए निकले ॥"

इति अष्टमदिवसयुद्धारम्भे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥

- **अष्टमदिवसयुद्धावहार के द्योतक वचन**

"रात्रिः समभवत् तत्र नापश्याम ततोऽनुगान् ।
ततोऽवहारं सैन्यानां प्रचक्रुः कुरुपाण्डवाः ॥
रजनीमुखे सुरौद्रे तु वर्तमाने महाभये ।
अवहारं ततः कृत्वा सहिताः कुरुपाण्डवाः ।
न्यविशन्त यथाकालं गत्वा स्वशिबिरं तदा ॥"

(भीष्म० ९६. ७९, ८०)

"रात्रि हो गयी थी एवं हमें अपने अनुयायी नहीं दिखाई दे रहे थे, तब कौरवों और पाण्डवों ने अपनी-अपनी सेना को युद्धभूमि से लौटने का आदेश दे दिया ॥"

"फिर उस महाभयानक तथा अत्यन्त रौद्र रूप वाले प्रदोष काल में कौरव तथा पाण्डव एक साथ अपनी सेनाओं को लौटाकर यथा-समय शिविर में जा पहुंचे और विश्राम करने लगे ।"

इति अष्टमदिवसयुद्धावहारे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥९३॥

- **नवमयुद्धदिवसारम्भ के सम्बन्ध में वचन**

* "प्रविष्टः स निशां तांच गमयामास पार्थिवः ।
प्रभातायां च शर्वर्यां प्रातरुत्थाय तान् नृपः ॥
राज्ञः समाज्ञापयत सेनां योजयतेति ह ।
अद्य भीष्मो रणे क्रुद्धो निहनिष्यति सोमकान् ॥"

(भीष्मपर्व ९८ २६, २७)

"हे भूपाल ! वहाँ जाकर राजा ने सुख से रात बितायी और सबेरा होने पर उसने प्रातःकाल उठकर राजाओं को यह आज्ञा दी—राजसिंहो ! तुम सब लोग सेना को युद्ध के लिए तैयार करो, आज पितामह भीष्म रण-भूमि में कुपित होकर सोमकों का संहार करेंगे ॥"

• नवम-दिवस-युद्धावहार

"ततोऽवहारं सैन्यानां चक्रे राजा युधिष्ठिरः ।
तथैव तव सैन्यानामवहारो ह्यभूत् तदा ॥" (१०७. ५)

"इसके बाद महाराज युधिष्ठिर ने अपनी सेना को पीछे लौटा लिया । इसी प्रकार आपकी सेना भी शिविर की ओर लौट चली ॥"

• इति नवमदिवसावहारोत्तरमन्त्रे सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥१०७॥

• दशमदिवस युद्धारम्भ के द्योतक वचन

"ततस्ते पाण्डवाः सर्वे सूर्यस्योदयनं प्रति ।
ताड्यमानासु भेरीषु मृदङ्गेष्वानकेषु च ॥
ध्मायत्सु दधिवर्णेषुजलजेषु समन्ततः।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य निर्याताः पाण्डवा युधि ॥"
(भीष्म० १०८. २, ३)

"राजन् ! तदनन्तर सूर्योदय होने पर रण भेरियाँ बज उठीं, मृदङ्ग और ढोल पीटे जाने लगे, दही के समान श्वेतवर्ण वाले शङ्ख सब ओर बजाये जाने लगे । उस समय समस्त पाण्डव शिखण्डी को आगे करके युद्ध के लिये शिविर से बाहर निकले ॥"

• दशवें दिन के युद्धावहार के ज्ञापक वचन

स संज्ञामुपलभ्याशु भारद्वाजः प्रतापवान् ।
निवारयामास तदा स्वान्यनीकानि मारिष ॥
विनिवृत्तान् कुरून् दृष्ट्वा पाण्डवाऽपि स्वसैनिकान् ।
दूतैः शीघ्राश्वसंयुक्तैः समन्तात् पर्यवारयन् ॥
(भीष्म० १२०. २७, २८)

"आर्य ! सचेत होने पर प्रतापी द्रोणाचार्य ने शीघ्र ही अपनी सेनाओं

को युद्ध से रोक दिया ॥"

"कौरवों को युद्ध से लौटते देख पाण्डवों ने भी शीघ्रगामी अश्वों पर चढ़े हुए दूतों द्वारा सब ओर आदेश भेजकर अपने सैनिकों का भी युद्ध बन्द करा दिया ॥"

सायाह्ने निहतो भूमौ धार्तराष्ट्रान् विषादयन् ॥
पाञ्चालानां ददौ हर्षं भीष्मः कुरुपितामहः ।
(भीष्मपर्व १२०. ७, ७½)

"कुरुकुलवृद्ध पितामहभीष्म सायंकाल में जब रणभूमि में गिरे, तब उन्होंने आपके पुत्रों को बड़े विषाद में डाल दिया और पाञ्चालों को हर्ष मनाने का अवसर दे दिया ॥"

"व्युपरम्य ततो युद्धाद्योधाः शतसहस्रशः ।
उपतस्थुर्महात्मानं प्रजापतिमिवामराः ॥
(भीष्म० १२०. ३०)

"बारी-बारी से सब सेनाओं के युद्ध से निवृत्त हो जाने पर सब राजा कवच खोलकर भीष्म के पास आये ॥"

इस तरह अवहार के बाद रात्रि बीतने पर पुनः नित्य ही युद्धारम्भ का वर्णन भी भीष्माचार्य के नेतृत्व में अवकाश युक्त युद्ध को अप्रामाणिक सिद्ध करता है।

विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रत्येक दिन के युद्ध की समाप्ति उसी रात्रिमें बताकर "उसी" रात्रिकी समाप्ति होकर 'बिना किसी व्यवधानके दिन निकलते ही आगेके दिन का युद्धआरम्भ हो गया' इसी अर्थके स्पष्ट प्रतिपादन करने वाले 'परिणाम्य निशां' इत्यादि वचन हैं। 'तां' यह सर्वनाम रात्रि का विशेषण होने के कारण दूसरे दिन से अव्यवहित पूर्व रात्रि का ही बोध कराता है, न कि एक दिन छोड़कर दूसरे दिन की रात्रि का। ऐसी स्थिति में एक-एक दिन का अवकाश रखकर युद्ध की कल्पना सर्वथा घोर अज्ञान का ही परिचायक है। 'पुष्पिका' में ग्रन्थकार द्वारा प्रयुक्त प्रथम-द्वितीय-तृतीयादि दिवस युद्धारम्भ और अवहार के द्योतक वचनों में प्रथम-द्वितीय-तृतीयादि संख्यावोधक शब्दों का उल्लेख भी पहले, दूसरे, तीसरे आदि दिनों का वाचक ही है; न कि सामान्य संख्यावाचक दिनों का,

जिससे कि अवकाश की कल्पना की जाय? फिर भी बीच-बीच में अवकाश युक्त युद्ध माननेवाले श्रीकवीश्वर आदि ने यह भी नहीं सोचा कि ऐसा मानने पर भगवदवतार श्रीवेदव्यास, सत्यप्रतिज्ञ–भीष्म, प्रतिज्ञा भङ्ग हो जाने पर अग्निप्रवेश तक कर जाने का वचन देनेवाले नरावतार-अर्जुन, दिव्यदृष्टिसम्पन्न-सञ्जय आदि जो परिहास में भी मिथ्याभाषण नहीं करते थे, वे सब-के-सब मिथ्याभाषी हो जायेंगे। 'आज युद्ध बन्दकर कल युद्ध करेंगे' ऐसा प्रायः सभी सेनापतियों का और 'कल ही जयद्रथ को मारूँगा, सूर्यास्त तक न मार सका तो अग्निप्रवेश करूंगा' ऐसा अर्जुन का कहना तभी सार्थक हो सकता है, जब विना अवकाश के युद्ध मानें।

मूलके अनुशीलन से यह सिद्ध होता है कि श्रीद्रोणाचार्य के नेतृत्व से लेकर दुर्योधन वध तक लगातार युद्ध हुआ। द्रोणाचार्य ने अभिमन्यु-वध तक प्रतिज्ञा पूर्वक युद्ध किया। सेनापति के पद पर अभिषिक्त करने के उपलक्ष्य में दुर्योधन को दिये गये वचन के अनुसार अर्जुन से सुरक्षित और व्यवस्थित धर्मराज युधिष्ठिर को जीवित पकड़ने के उद्देश्य से दो दिनों तक और पाण्डवपक्ष के प्रमुख वीर को मार डालने के उद्देश्य से तीसरे दिन आचार्य ने युद्ध किया। तीसरे दिन चक्रव्यूह में फंसकर अर्जुन से अरक्षित अर्जुन-पुत्र वीरवर अभिमन्यु मारा गया। अभिमन्युवध से क्रुद्ध अर्जुन ने जयद्रथवध की अमोघ प्रतिज्ञा की। जयद्रथवध के पश्चात् क्रुद्ध द्रोण और दुर्योधन ने रात्रियुद्ध की घोषणा की। उसी रात्रि-युद्ध में घटोत्कच के वध से शोकार्त्त धर्मराज युधिष्ठिर जब कर्ण से युद्ध करने का निश्चय कर जीवन को संकट में डाल कर आगे बढ़ रहे थे, तब श्रीव्यास देव ने उन्हें ऐसा करने से रोका और दिव्यदर्शिता के अमोघ प्रभाव से आशीर्वाद देते हुए कहा—

"भ्रातृभिः सहितः सर्वैः पार्थिवैश्च महात्मभिः ॥
कौरवान् समरे राजन् प्रतियुद्धस्व भारत।
* पञ्चमे दिवसे तात पृथिवी ते भविष्यति ॥"

(द्रोणपर्व १८३ ६४, ६५)

"भरतवंशी नरेश! तुम अपने समस्त भाइयों तथा महामना भूपालों के साथ जाकर समर-भूमि में कौरवों का सामना करो। तात! आजके पाँचवें दिन सारी पृथिवी तुम्हारी हो जायगी॥"

श्रीव्यासदेव ने चौदहवें दिन के रात्रियुद्ध में ऐसा कहा। उनका यह वचन भी तभी सार्थक हो सकता है जब उसके बाद युद्ध लगातार हो, न कि अवकाश वाला।

यदि अवकाश सहित युद्ध होता तो 'पांचवें दिन पृथ्वी तुम्हारी हो जायगी' ऐसा न कहकर 'नवें दिन' कहते। पर-पूर्वाग्रहग्रस्त कवीश्वरादि को यह चिन्ता ही कहाँ है कि हमारे मन में वेदव्यास जी-से महर्षि और नरावतार-अर्जुन आदि मिथ्यावादी हो जायेंगे।

तमिस्रा-रात्रि के घोर अन्धकार को देखकर तथा प्रचण्ड युद्ध में उभय-पक्ष को श्रमित और निद्रित देखकर प्राज्ञ-पार्थ ने रात्रि-युद्ध को कुछ समय के लिये विश्राम दिया। सबों ने युद्ध-भूमि में ही विश्राम किया। उसी रात्रि के शेषांश में चन्द्रोदय के प्रकाश में पुनः युद्धारम्भ हुआ। बस द्रोणाचार्य के नेतृत्व का अन्तिम दिन आ गया—

"तस्य त्वहानि चत्वारि क्षपा चैकास्यतो गता।
तस्य चाह्नस्त्रिभागेन क्षयं जग्मुः पतत्त्रिणः॥"
(द्रोणपर्व १९१. ९)

"उनके निरन्तर वाण चलाते चार दिन और एक रात का समय बीत चुका था। उस दिन के (पन्द्रह भागों में से) तीन ही भाग में उनके सभी वाण समाप्त हो गये॥"

उक्त वचन से तो स्पष्ट ही है कि श्रीद्रोणाचार्य के नेतृत्व में अवकाश की बात कौन कहे, एक रात्रि-युद्ध भी हुआ। जो अवकाश युक्त युद्ध मानते हैं, उन्हें भी चौदहवें दिन का युद्ध और पन्द्रहवें दिन का युद्ध लगातार मानना ही पड़ता है।

युद्धावहार के बाद रात्रि बीतने पर युद्धारम्भ का स्पष्ट उल्लेख तो द्रोणादि के नेतृत्व काल में पूर्ववत् ही है। ग्रन्थ-विस्तार को स्तम्भित करने के उद्देश्य से उनका चित्रण यहाँ करना उचित नहीं समझते।

११. युद्धावहार और रात्रि युद्ध के समय पक्ष और तिथि के अनुमापक अन्धकार और प्रकाश का उल्लेख.

• प्रथमदिवस युद्धावहार के समयकुछ भी न सूझने का वर्णन है—

"ततः सैन्येषु भग्नेषु मथितेषु च सर्वशः।
प्राप्ते चास्तं दिनकरे न प्राज्ञायत किंचन ।।"
(भीष्म० ४६. ५२)

"इस प्रकार सारी सेना मथित हो उठी, व्यूह–भंग हो गया और सूर्य अस्ताचल को चले गये। उस समय कुछ भी सूझ नहीं पड़ता था।"

• अष्टमदिवस युद्धावहार के समय भयानक प्रदोषकाल में सेवकों के न दीखने का वर्णन है—

"रात्रिः समभवत् तत्र नापश्याम ततोऽनुगान्।
ततोऽवहारं सैन्यानां प्रचक्रुः कुरुपाण्डवाः ।।
रजनीमुखे सुरौद्रे तु वर्तमाने महाभये।
अवहारं ततः कृत्वा सहिताः कुरुपाण्डवाः।
न्यविशन्त यथाकालं गत्वा स्व-शिविरं तदा ।।"
(भीष्म० ८६. ७९, ८०)

"रात हो गयी थी, हमें अपने सेवक नहीं दिखाई दे रहे थे। तब कौरवों और पाण्डवों ने अपनी-अपनी सेना को युद्धभूमि से लौटने का आदेश दे दिया ।।"

"फिर उस भयानक तथा अत्यन्त रौद्ररूपवाले प्रदोषकाल में कौरव तथा पाण्डव एक साथ अपनी सेना को लौटाकर यथा-समय शिविर में जा पहुंचे और विश्राम करने लगे ।।"

• नवें दिन युद्धावहार के समय युद्ध न दीख पड़ने का वर्णन है—

"युध्यतामेव तेषां तु भास्करेऽस्तमुपागते।
सन्ध्या समभवद् घोरा नापश्याम ततो रणम् ।।
(निशामुखं च सम्प्रेक्ष्य घोररूपं भयानकम्।)
चिन्तयित्वा ततो राजा अवहारमरोचयत् ।।"
(भीष्मपर्व १०७. १, ४)

"कौरव-पाण्डव के युद्ध करते-करते ही सूर्यदेव अस्ताचल को चले गये और भयानक संध्याकाल आ गया। फिर हमलोग युद्ध भी न देख सके ।।"

"घोर रूप भयानक प्रदोषकाल आ पहुँचा है। इन सब बातों पर विचार करके राजा युधिष्ठिर ने सेना को युद्ध से लौटा लेना ही उचित समझा॥"

• ग्यारहवें दिन के युद्ध में सायं अन्धकार का वर्णन है—

"नादृश्यत तदा राजंस्तत्र किंचन संयुगे।
बाणान्धकारे महति कृते गान्डीवधन्वना॥
सूर्ये चास्तमनुप्राप्ते तमसा चाभिसंवृते।
नाज्ञायत तदा शत्रुर्न सुहृन्न च कश्चन॥"

(द्रोण० १६. ४८, ४९)

"उस रणक्षेत्र में गाण्डीवधारी अर्जुन ने बाणों के द्वारा महान् अन्धकार फैला दिया था। उस में कुछ भी दिखाई नहीं देता था॥"

'सूर्यदेव अस्ताचल को चले गये, सम्पूर्ण जगत् अन्धकार से व्याप्त हो गया, उस समय न कोई शत्रु पहचाना जाता था न मित्र ही॥"

• चौदहवें दिन रात्रियुद्ध में दारुण-अन्धकार का वर्णन

"ततः समभवद् युद्ध सन्ध्यायामतिदारुणम्॥
द्रोणस्य च महाराज सृंजयानां च सर्वशः।
तमसा चावृते लोके न प्राज्ञायत किंचन॥
सैन्येन रजसाचैव समन्तादुत्थितेन ह।"

(द्रोणपर्व १५४. २१–२२½)

"महाराज! तत्पश्चात् संध्याकाल में समस्त सृंजय-वीरों तथा द्रोणाचार्य का अत्यन्त दारुण-संग्राम होने लगा॥ सारा जगत् अन्धकार से तथा सेना द्वारा सब ओर उड़ाई हुई धूल से आच्छादित होने के कारण किसी को कुछ भी ज्ञात नहीं होता था॥"

"नैव स्वे न परे राजन् प्राज्ञायन्त तमोवृते॥
उन्मत्तमिव तत्सर्वं बभूव रजनीमुखे।"

(द्रोणपर्व १५४. २६. २६½)

"राजन् ! उस अन्धकाराच्छन्न-प्रदेश में अपने और पराये की पहचान नहीं होती थी ; उस प्रदोषकाल में सब कुछ उन्मत्त-सा जान पड़ता था ॥"

"वध्यतां च तथा तेषां क्षतानां च विशेषतः ॥
अर्धरात्रिः समाजज्ञे निद्रान्धानां विशेषतः ।"

(द्रोणपर्व १८४. १५, १५$\frac{1}{2}$)

"वहाँ बाणों की चोट सहते और विशेषतः क्षत-विक्षत होते हुए निद्रान्ध-सैनिकों की आधीरात बीत गयी ॥"

"तेषामेतादृशीं चेष्टां विज्ञाय पुरुषर्षभः ।
उवाच वाक्यं बीभत्सुरुच्चैः संनादयन् दिशः ॥
श्रान्ता भवन्तो निद्रान्धाः सर्वे एव सवाहनाः ।
तमसा च वृते सैन्ये रजसा बहुलेन च ॥
ते यूयं यदि मन्यध्वमुपारमत सैनिकाः ।
निमीलयत चात्रैव रणभूमौ मुहूर्तकम् ॥"

(द्रोणपर्व १८४. २५–२७)

"उनकी ऐसी अवस्था देखकर पुरुष प्रवर अर्जुन ने सम्पूर्ण दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुए उच्चस्वर से इस प्रकार कहा—सैनिको ! तुम सब लोग अपने वाहनों सहित थक गये हो और नींद से चौंधियाये हो रहे हो । इधर यह सारी सेना घोर-अन्धकार और बहुत-सी धूलसे ढक गयी है । अतः यदि तुम ठीक समझो तो युद्ध बन्द कर दो और दो घड़ी इस रणभूमि में ही सो लो ॥"

ततः कुमुदनाथेन कामिनीगण्डपाण्डुना ।
नेत्रानन्देन चन्द्रेण माहेन्द्री दिगलंकृता ॥

(द्रोण० १८४. ४६)

"तत्पश्चात् कामिनियों के कपोलों के समान श्वेतपीत-वर्णवाले नयनानन्ददायी कुमुदनाथ चन्द्रमाने पूर्व-दिशा को सुशोभित किया ॥"

"ततो मुहूर्ताद्भगवान् पुरस्ताच्छशलक्षणः ।
अरुणं दर्शयामास ग्रसन् ज्योतिः प्रभाः प्रभुः ॥"४९॥

"फिर दो घड़ी के बाद शशचिह्न से सुशोभित प्रभावशाली भगवान् चन्द्रमा ने अपनी ज्योत्स्ना से नक्षत्रों की प्रभा को क्षीण करते हुए पहले अरुण-कान्ति का दर्शन कराया ॥"

"ततोमुहूर्ताद् भुवनं ज्योतिर्भूतमिवाभवद् ।
अप्रख्यमप्रकाशं च जगामाशु तमस्तथा ॥" ५२ ॥

"तदनन्तर एक ही मुहूर्त्त में समस्त संसार ज्योतिर्मय-सा हो गया। अन्धकार का कहीं नाम निशान भी नहीं रह गया। वह अदृश्य-भाव से तत्काल कहीं चला गया ॥"

* "त्रिभागमात्रशेषाया रात्र्यां युद्धमवर्तत ।
कुरूणां पाण्डवानांच संहृष्टानां विशाम्पते ॥"

(द्रोणपर्व १८६. १)

"हे प्रजानाथ ! उस समय जब रात्रि के पन्द्रह मुहूर्त्तों में तीन मुहूर्त ही शेष रह गये थे, हर्ष तथा उत्साह में भरे कौरवों तथा पाण्डवों का युद्ध आरम्भ हुआ ॥"

• सोलहवें दिन सायं अन्धकारका वर्णन है—

"त्वदीयानां तदा युद्धे संसक्तानां जयैषिणाम् ।
गिरिमस्तं समासाद्य प्रत्यपद्यत भानुमान् ॥
तमसा च महाराज रजसा च विशेषतः ।
न किंचित् प्रत्यपश्याम शुभं वा यदिवाशुभम् ॥
ते त्रसन्तो महेष्वासा रात्रियुद्धस्य भारत ।
अपयानं ततश्चक्रुः सहिताः सर्वयोधिभिः ॥"

(कर्णपर्व ३०. ३७-३८)

"इस प्रकार जब आपके विजयाभिलाषी सैनिक युद्ध में संलग्न हो रहे थे, उसी समय सूर्यदेव अस्ताचल पहुँचकर डूब गये ॥"

"महाराज ! उस समय अन्धकार और विशेषतः धूल से सब कुछ आच्छादित होने के कारण हमलोग किसी भी शुभ या अशुभ वस्तु को देख नहीं पाते थे ॥"

"हे भारत ! वे महाधनुर्धर योद्धा रात्रि-युद्ध से डरे हुए थे, इसलिये समस्त सैनिकों के साथ उन्होंने वहाँ से शिबिर को प्रस्थान कर लिया ॥"

- सत्रहवें दिन अपराह्ण में अर्जुन के हाथों कर्ण मारा गया। सायं दीपक के प्रकाश में वीरों ने कर्णको देखा--

"शरोत्तमेनाञ्जलिकेन राजंस्तदा महास्त्रप्रतिमन्त्रितेन।
पार्थोऽपराह्णे शिर उच्चकर्त वैकर्तनस्याथ महेन्द्रसूनुः ॥"

(कर्णपर्व ९१. ५१)

"राजन् ! महान् दिव्यास्त्र से अभिमन्त्रित अञ्जलिक (अर्थात् अंजुरी जैसेआकार वाले) नामक उत्तम बाण के द्वारा इन्द्र-पुत्र कुन्ती-कुमार अर्जुन ने अपराह्ण-काल में वैकर्तन-कर्ण का सिर काट लिया ॥"

(व्यूढोरस्कं कमलनयनं तप्तहेमावभासं
कर्णं दृष्ट्वा भुवि निपतितं पार्थबाणाभितप्तम्।
पांशुग्रस्तं मलिनमसकृत् पुत्रमन्वीक्षमाणो
मन्दं मन्दं व्रजति सविता मन्दिरं मन्दरश्मिः ॥)

(कर्ण० ९१. ६९)

"जिसकी छाती चौड़ी और नेत्र कमल के समान सुन्दर थे तथा कान्ति तपाये हुए सुवर्ण के समान जान पड़ती थी, वह कर्ण अर्जुन के बाणों से संतप्त हो धरती पर पड़ा, धूल में सना मलिन हो गया था। अपने उस पुत्र की ओर बारम्बार देखते हुए मन्द किरणों वाले सूर्यदेव धीरे-धीरे अपने मन्दिर (अस्ताचल) की ओर जा रहे थे ॥" (इसी प्रकार कर्णपर्व ९ . ३० द्रष्टव्य)।

"गन्धतैलावसिक्ताभिः काञ्चनीभिः सहस्रशः।
दीपिकाभिः कृतोद्योतं पश्यते वै वृषं तवा ॥"

(कर्णपर्व ९६।३८)

"उस समय सुगन्धित तेल से भरे हुए सहस्रों सोने के दीपक जलाकर प्रकाश किया गया था। उसी में वे धर्मात्मा-कर्ण को देख रहे थे ॥"

- सौप्तिक-संहार के समय अन्धकार का वर्णन है—

* 'तस्या रजन्यास्त्वर्धेन पाण्डवानां महद्बलम् ।
गमयामास राजेन्द्र द्रौणिर्यमनिवेशनम् ।।" (सौप्तिक० ८ १३२)

"राजेन्द्र ! उस रात का आधा-भाग बीतते-बीतते द्रोणपुत्र-अश्वत्थामा ने पाण्डवों की उस विशाल सेना को यमराज के घर भेज दिया ।।"

"तैस्तत्र परिधावद्भिश्चरणोदीरितं रजः ।।
अकरोच्छिबिरे तेषां रजन्यां द्विगुणं तमः ।"
(सौप्तिक० ८. ९६–९६½)

"उन दौड़ते हुए घोड़ों और हाथियों ने अपने पैरों से जो धूल उड़ायी उसने पाण्डवों के शिविर में रात्रि के अन्धकार को दुगुना कर दिया ।।"

"एवं विचरतस्तस्य निघ्नतः सुबहून् नरान् ।।
तमसा रजनी घोरा बभौ दारुणदर्शना ।"
(सौप्तिक० ८।११८, ११८½)

"इस प्रकार अनेकों मनुष्यों का संहार करता हुआ वह शिविर में विचरण करने लगा । उस समय दारुण दिखायी देने वाली वह रात्रि अन्धकार के कारण और भी घोर तथा भयानक प्रतीत होती थी ।।"

(४) निष्कर्ष

• युद्धावहार और रात्रि युद्ध के समय के अन्धकार का और रात्रि युद्ध के पश्चात् चन्द्रोदयका वर्णन तथा सौप्तिक संहारके समय अन्धकार का वर्णन यह सिद्ध करता है कि नवें दिन से अठारहवें दिन तक का युद्ध निःसन्देह कृष्णपक्ष की अधिक अन्धकार युक्त रात्रियों वाले दिनों में और एक रात्रि में हुआ ।

• आठवें दिन संध्या के बाद कुछ भी दिखाई न पड़ने का स्पष्ट उल्लेख है, साथ ही 'रजनीमुखे सुरौद्रे तु वर्तमाने महाभये' ऐसा कहकर महा-भयंकर प्रदोष-काल का वर्णन है ', इससे भी यही परिलक्षित होता है कि आठवें दिन का युद्ध भी कृष्णपक्ष की अन्धकारमयी-रात्रि के दिन ही हुआ ।

• प्रथम-दिन सन्ध्या के समय 'न प्राज्ञायतकिंचन' ऐसा उल्लेख है, साथ ही 'रजसा' या 'तमसा' किंवा 'रजनीमुखे सुरौद्रे तु' इस प्रकार का कोई

उल्लेख नहीं है, अपितु 'सैन्येषु भग्नेषु मथितेषु च सर्वशः' ऐसा उल्लेख अवश्य है। इस दृष्टि से भयङ्कर-युद्ध से प्राप्त धूलि के कारण 'कुछ न दिखाई देने का' उल्लेख माना जा सकता है।

१२. प्रामाणिक गणना के लिए ध्यान रखने योग्य आवश्यक–सूत्र.

महाभारत में कूट-श्लोकों की भरमार है। जिन कूटात्मक श्लोकों को[५] कालकूट के समान हृदयंगम कर पाना कठिन है। महाभारत युद्ध और भीष्म-निर्वाण के सन्दर्भ में भी ग्रन्थकार ने कूटात्मक श्लोकों की रचना की है। उन पहेलियों या गुत्थियों को सुलझाये विना प्रामाणिक गणना की उपलब्धि असम्भव है। जिन कूट-स्थलों को ध्यान में रखकर निर्विरोध सुसंगति सम्भव है, वे संक्षेप में इस प्रकार हैं—

(१) "सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति।
संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम्॥"
(उद्योगपर्व १४२. १८)

भगवान् श्रीकृष्ण के वचनानुसार पुष्य के एक सप्ताह बाद ऐन्द्र-नक्षत्र में युद्धारम्भ का संकेत मात्र प्राप्त है, किन्तु उसकी सार्थकता तैयारी में ही है। जिसे ध्यान रखना आवश्यक है।

(२) 'यथा स भगवान् व्यासः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत्।
तथैव सहिताः सर्वे समाजग्मुर्महीक्षितः॥
मघाविषयगः सोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत।
दीप्यमानाश्च सम्पेतुर्दिवि सप्त महाग्रहाः॥"
(भीष्मपर्व १७।१–२)

इस संजय-वचन के अनुसार पुष्य से तीसरे स्थान पर अर्थात् पुष्य के एक दिन बाद स्थित मघा में या मघोत्तर मघा में (जो कि पुष्य से तीसवें स्थान पर है) युद्धारम्भ का केवल संकेत प्राप्त है।

५–महाभारत आदिपर्व १. ८०–८२ के अनुसार महाभारत में कुल ८८०० श्लोक ग्रन्थि-युक्त हैं।

(३) "चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै ।
पुष्येण संप्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः ।।
शिष्ययोर्वै गदायुद्धं द्रष्टुकामोऽस्मि माधव ।"
(शल्यपर्व ३४. ६-६½)

इस बलभद्र-वचन के अनुसार पुष्य से बयालीसवें स्थान पर श्रवणोत्तर-श्रवण में युद्धान्त का निर्देश प्राप्त है ।

(४) "अलक्ष्यः प्रभयाहीनः पौर्णमासीं च कार्तिकीम् ।
चन्द्रोभूदग्निवर्णश्च पद्मवर्णनभस्तले ।।"
(भीष्मपर्व २. २३)

"मांसवर्षं पुनस्तीव्रमासीत् कृष्णचतुर्दशीम् ।।"
(भीष्मपर्व ३. ३३)

"चतुर्दशीं पञ्चदशीं भूतपूर्वां च षोडशीम् ।
इमां तु नाभिजानेऽहममावास्यां त्रयोदशीम् ।
चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासीं त्रयोदशीम् ।।"
(भीष्मपर्व ३. ३२)

"चन्द्रादित्यावुभौ ग्रस्तावेकाह्नाहि त्रयोदशीम् ।
अपर्वणि ग्रहंयातौ प्रजासंक्षयमिच्छतः ।।"
(भीष्मपर्व ३. २८)

"एवं पश्यन् हृषीकेशः सम्प्राप्तं कालपर्ययम् ।
त्रयोदश्याममावास्यां तान् दृष्ट्वा प्राब्रवीदिदम् ।।
चतुर्दशी पञ्चदशी कृतेयं राहुणा पुनः ।
प्राप्ते वै भारते युद्धे प्राप्ता चाद्य क्षयाय नः ।।"
(महा० मौसल० २. १८, १९)

क्रमशः श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास और श्रीकृष्ण के इन वचनों के अनुसार मार्गशीर्ष-कृष्ण त्रयोदश दिनों का पक्ष मान्य है ।

विशेष विचारणीय यह है कि यहाँ पहले श्लोक में 'त्रयोदश्याममावास्यां तान् दृष्ट्वा प्राब्रवीदिदम्", अर्थात् 'तेरहवें दिन ही अमावास्या आ गयी ऐसा जान कर भगवान् ने उनसे कहा' ऐसा कहा है । इससे सिद्ध

होता है कि अमावास्या में युद्धारम्भ नहीं हुआ। तभी तो भगवान् ने आगे के श्लोक में यह कह दिया कि 'भारत युद्ध के अवसर पर भी अमावास्या तेरहवें दिन थी। हम सब का यह विनाश करने वाली है। इस बात का ध्यान रखो।', यदि अमावस्या में युद्धारम्भ हो ही गया होता तो इस कथन का कोई अर्थ (महत्त्व) ही नहीं था। अतः 'संग्रामो युज्यतां तस्यां' इसका यही अर्थ है कि 'उस दिन से युद्ध की तैयारी करो' न कि श्रीकवीश्वराद्यभिमत 'युद्ध करो'।

उक्त रीति से 'युद्धारम्भ से पूर्व त्रयोदश दिनों का पक्ष था और चतुर्दशी को ही राहु ने अमावास्या बना दिया था, अर्थात् चन्द्रग्रहण का योग चतुर्दशी में ही था।' ऐसा श्रीकृष्ण-वचन से सिद्ध है। 'पौर्णमासीं च कार्तिकीम् चन्द्रोऽभूदग्निवर्णश्चा' (भीष्म० २. २३), 'मांसवर्षं पुनस्तीव्रमासीत् कृष्णचतुर्दशीम्' (भीष्म० ३. ३२), 'चान्द्रादित्यावुभौ ग्रस्तावेकाह्ना हि त्रयोदशीम्' (भीष्म० ३. २८) इन वचनों के द्वारा 'कार्तिक पूर्णिमा के पश्चात् कृष्ण चतुर्दशी का और त्रयोदश दिनों के पक्ष का' वेदव्यास भगवान् ने भी युद्धारम्भ की पूर्व रात्रि में धृतराष्ट्र के प्रति मार्मिक चित्रण किया है। इससे सिद्ध होता है कि कार्तिक कृष्णपक्ष शुक्लादि मासानुसार त्रयोदश दिनों का था और युद्धारम्भ से पूर्व ही अमावास्या व्यतीत हो गयी थी। तभी व्यासप्रयुक्त 'अभूत्', 'ग्रस्तौ', 'यातौ' इन अतीत द्योतक शब्दों की सार्थकता सम्भव है; अतः शुक्लान्त मार्गशीर्ष अमावास्या तक युद्धारम्भ का कोई प्रश्न ही नहीं था।

(५) 'रजनीमुखे सुरौद्रे तु वर्तमाने महाभये' (भीष्म० ९६. ८०), 'रात्रिः समभवत् तत्र नापश्याम ततोऽनुगान्।' (भीष्म ९६. ७९); 'संध्यासमभवद्घोरा नापश्याम ततोरणम्' (भीष्म० १०७. १); 'सूर्ये चास्तमनुप्राप्ते तमसा चाभिसंवृते। नाज्ञायत तदा शत्रुर्न सुहृन्न च कश्चन' (द्रोण० १६: ४९); तमसा चावृते लोके न प्राज्ञायत किंचन' (द्रोण० १५४.२२); 'तमसा च महाराज रजसा च विशेषतः। न किंचित् प्रत्यपश्याम शुभं वा यदि वाशुभम्॥' (कर्ण० ३०. ३८), 'रजन्यां द्विगुणंतमः' (सौप्तिक० ८. ९६½), 'तमसारजनी घोरा बभौ दारुणदर्शना' (सौप्तिक० ८. ११८½) इन वचनों के अनुसार आठवें दिन से लेकर सत्रहवें दिन तक के युद्ध कृष्ण-पक्ष की अधिक अन्धकारमयी रात्रियों वाले दिनों में और एक रात्रि में मान्य हैं, अठारहवें दिन सौप्तिक संहार भी अन्धकार पूर्ण रात्रि में उपयुक्त है।

(६) 'तन्न मे रोचते युद्धं पाण्डवैर्जितकाशिभिः।
घुष्यतामवहारोऽद्य श्वो योत्स्यामः परैः सह ॥"
(भीष्म० ६४. ७७)

"तस्य त्वहानि चत्वारि क्षपा चैकास्यतो गता।
तस्य चाह्नस्त्रिभागेन क्षयं जग्मुः पतत्त्रिणः ॥"
(द्रोण० १९१.९)

"भ्रातृभिः सहितः सर्वैः पार्थिवैश्च महात्मभिः ॥
कौरवान् समरे राजन् प्रतियुध्यस्व भारत।
पञ्चमे दिवसे तात पृथिवी ते भविष्यति ॥"
(द्रोणपर्व १८३. ६४, ६५)

उक्त वचनों से सिद्ध है कि भीष्म, द्रोणादिके नेतृत्व में युद्धावहार के अतिरिक्त एक-एक दिन का अवकाश नहीं होता था, द्रोणाचार्य के नेतृत्व में एक रात्रि-युद्ध भी हुआ जिसमें भीमपुत्र घटोत्कचमारा गया।]

(७) "ततो मन्युपरीतात्मा जगाम यदुनन्दनः।
तीर्थयात्रां हलधरः सरस्वत्यां महायशाः ॥
मैत्रनक्षत्रयोगे स्म सहितः सर्व—यादवैः।
आश्रयामास भोजस्तु दुर्योधनमरिन्दमः ॥"
(शल्यपर्व ३ ।१३, १४)

"युयुधानेन सहितो वासुदेवस्तु पाण्डवान्।
रौहिणेये गते शूरे पुष्येण मधुसूदनः ॥"
(शल्यपर्व ३५।१५)

उपर्युक्त वचनों के अनुसार यह सिद्ध होता है कि 'पुष्य' नक्षत्र में श्रीवलराम जी श्रीकृष्ण सहित पाण्डवों से मिलकर तीर्थयात्रा के उद्देश्य से सरस्वती के तट की ओर चले। मैत्र-नक्षत्र में (अनुराधा में) कृतवर्माने नारायणी-सेना सहित दुर्योधन का साथ दिया और सात्यकि सहित श्रीकृष्ण ने पाण्डवों का। इसी दिन श्रीवलराम जी ने भी तीर्थयात्रा प्रारम्भ की।' अब क्योंकि चित्रा से अनुराधा चौथे स्थान पर है और विशाखा से दूसरे स्थान पर। अर्थात् चित्राके वाद अनुराधा तीसरे स्थान पर है और विशाखा के बाद पहले स्थान पर। ऐसी स्थिति में यदि चित्रा या विशाखा को ऐन्द्र

नक्षत्र माना जाय तब तो युद्ध के चौथे या दूसरे दिन पाण्डवपक्ष में श्रीकृष्ण का और सात्यकि का तथा यादवों सहित कृतवर्मा का दुर्योधनपक्ष में सम्मिलित होना मानना पड़ेगा जो सर्वथा अनुचित तथा सर्वथा अनुपयुक्त है। अनुराधा के ठीक दूसरे दिन ज्येष्ठा है, ऐन्द्रनक्षत्र के रूप में प्रसिद्धि भी उसी की है, वेदव्यास ने स्वयं भी ऐसा ही स्वीकार किया है, अतः उस दिन संग्राम-योजना की बात उपयुक्त ही है।

वेदव्यास के शब्दों में 'ज्येष्ठा' ऐन्द्र-नक्षत्र इस प्रकार है—

"श्वेतो ग्रहः प्रज्वलितः सधूम इव पावकः।
ऐन्द्रं तेजस्वि नक्षत्रं ज्येष्ठामाक्रम्य तिष्ठति॥"
(भीष्मपर्व ३. १६)

यहाँ यह भी विचारणीय है कि इस व्यास जी के वचन में प्रत्यक्ष अभिधाशक्ति द्वारा कहे गये ज्येष्ठा नक्षत्र को इन्द्र का नक्षत्र न मान कर 'इन्द्रस्य चित्रा' इस अर्थवाद वाक्य से अनुमानित लक्षणा वृत्ति द्वारा चित्रा को इन्द्र का नक्षत्र मानना कहाँ तक उचित है?

(८) "कृतोदकास्ते सुहृदां सर्वेषां पाण्डुनन्दनाः।
विदुरो धृतराष्ट्रश्च सर्वाश्च भरतस्त्रियः॥
तत्र ते सुमहात्मानो न्यवसन् पाण्डुनन्दनाः।
शौचं निर्वर्तयिष्यन्तो मासमात्रं बहिः पुरात्॥"
(शान्तिपर्व १. १-२)

'अष्टपञ्चाशतं रात्र्यः शयानस्याद्य मे गताः।
शरेषु निशिताग्रेषु यथा वर्षशतं तथा॥
माघोऽयं समनुप्राप्तो मासः सौम्यो युधिष्ठिर।
त्रिभागशेषः पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति॥"
(अनुशासन० १६७. २७, २८)

उपर्युक्त वचनों से सिद्ध है कि वक्ष्यमाण-रीति से युद्धारम्भ के कम-से-कम ५८ वें दिन माघ शुक्लाष्टमी में भीष्माचार्य ने देहत्याग किया। श्लोक का यह तात्पर्य है कि मुझे ५८ दिन सोते हुए हो गये पर निद्रा नहीं आयी; क्योंकि युद्धारम्भ-दिन से ही तीखे-तीखे वाणों पर सोना पड़ रहा है।

१३. 'गीता जयन्ती' कसौटी पर

'अठारह अक्षौहिणी सेना' और 'अठारह दिनों तक युद्ध, यह तथ्य महाभारत से ही सिद्ध है।

"अष्टादश समाजग्मुरक्षौहिण्यो युयुत्सया।
तन्महादारुणं युद्धमहान्यष्टादशाभवत् ॥"
आदिपर्व २. ३८१)

भीष्म जी के नेतृत्व में दस दिनों तक कौरवों ने युद्ध किया। द्रोणाचार्य के नेतृत्व में ग्यारहवें से पन्द्रहवें दिन तक कुल पांच दिन युद्ध हुआ। कर्ण के नेतृत्व में दो दिनों तक युद्ध हुआ। मद्रराज शल्य के नेतृत्व में अठारहवें दिन का आधा युद्ध हुआ। उसके पश्चात् गदायुद्ध में उसी दिन सायं दुर्योधन मारा गया।

"श्वो योत्स्यामः परैः सह"='अब युद्धावहार-विश्राम करो, कल विपक्षियों के साथ युद्ध करूँगा' (भीष्म० ६४. ७०) इस भीष्म-वचन के अनुसार यह मान्य है कि भीष्मजी के नेतृत्व काल में नित्य ही युद्ध होता था, अन्यथा 'कल विश्राम कर परसों लड़ेंगे' ऐसा कहते। पर ऐसा कहीं भी नहीं कहा ; अतः विश्राम केवल रात्रि में होता था, अगले दिन नहीं।

द्रोणाचार्य के नेतृत्व से लेकर दुर्योधन-वध तक लगातार युद्ध हुआ। द्रोणाचार्य ने अभिमन्यु वध तक नित्य ही प्रतिज्ञा पूर्वक युद्ध किया। अभिमन्यु वध से क्रुद्ध अर्जुन ने जयद्रथ-वध की अमोघ प्रतिज्ञा की। जयद्रथ-वध के पश्चात् क्रुद्ध दुर्योधन और द्रोणने रात्रियुद्ध की घोषणा की। रात्रि युद्ध में ही कर्ण के द्वारा अमोघ शक्ति के प्रयोग से भीमपुत्र पराक्रमी पितृभक्त घटोत्कच मारा गया। शोकातुर युधिष्ठिर कर्ण के साथ युद्ध करने की तयारी करने लगे, तब दिव्यशक्ति सम्पन्न अमोघदर्शी भगवान् वेदव्यास ने प्रकट होकर उनसे कहा—'पञ्चमे दिवसे तात पृथिवी ते भविष्यति।' (द्रोणपर्व १८३. ६५)='तात ! आज के पाँचवें दिन पृथिवी तुम्हारी हो जाएगी।' श्रीवेदव्यास का यह वचन तभी सार्थक हो सकता है, जब उसके पश्चात् एक-एकदिन विराम दिये विना लगातार युद्ध हुआ हो। कवीश्वरादि के अनुसार तो व्यास जी मिथ्यावादी, प्रतारक, नरकगामी होंगे।

गदायुद्ध, जो कि अन्तिम दिन का युद्ध था, श्रवण नक्षत्र में सम्पन्न हुआ अर्थात् युद्धान्त श्रवण नक्षत्र में हुआ, ऐसा श्रीबलराम जी के वचनानुसार सिद्ध है—

'चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै।
पुष्येण सम्प्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः।।
शिष्ययोर्वै गदायुद्धं द्रष्टुकामोऽस्मि माधव।"
(शल्यपर्व ३४. ६, ६½)

"आप लोगों से मिलकर तीर्थयात्रा के उद्देश्य से चले हुए आज मुझे बयालीस दिन हो गये। पुष्य नक्षत्र में चला था और श्रवण में पुनः वापस आया हूँ।। माधव! मैं अपने दोनों शिष्यों का गदायुद्ध देखना चाहता हूँ।"

(१) • इस तरह 'श्रवण' नक्षत्र से सत्रह दिन पूर्व 'मृगशिरा' नक्षत्र में युद्धारम्भ सिद्ध होता है, यही गीताजयन्ती की, इस प्रथम गणना के अनुसार, मान्य तिथि सिद्ध होती है। महाभारत के प्रसिद्ध टीकाकार श्रीनील–कण्ठाचार्य के अनुसार यह गणना है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने पाडवों के दूत और नायक होकर हेमन्त-ऋतु के शुभारम्भ पर कौमुद मास (कार्तिक) रेवती नक्षत्र उपप्लव्य नगर से हस्तिनापुर सन्धिवार्ता के लिए प्रस्थान किया—'कौमुदे मासि रेवत्यां शरदन्ते हिमागमे' (महा० उद्योग० ८३. ७)।

'सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति। संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम्' (उद्योग० १४२. १८) इस श्रीकृष्ण-वचन के अनुसार यह सिद्ध होता है कि इन्द्र-देवता सम्बन्धी ज्येष्ठा नक्षत्र में मार्गशीर्ष की अमावास्या थी। 'ऐन्द्रं तेजस्विनक्षत्रं ज्येष्ठामाक्रम्य तिष्ठति'='इन्द्रदेवता सम्बन्धी तेजस्वि ज्येष्ठा नक्षत्र पर (केतु नामक ग्रह) जाकर स्थित है।' (भीष्मपर्व ३. १६) इस व्यास-वचन के अनुसार इन्द्र ज्येष्ठा के अधिपति स्वीकार्य हैं। ज्येष्ठा में मार्गशीर्ष अमावास्या होने के कारण उससे पूर्व रेवती नक्षत्र में कार्तिक शुक्ल एकादशी या द्वादशी मान्य है। इस तरह कार्तिक शुक्ल द्वादशी या एकादशी में श्रीकृष्ण-निर्याण सिद्ध होता है। साथ ही 'प्रयाध्वं वै कुरुक्षेत्रं पुष्योद्येति पुनः पुनः' (उद्योग १५०. ३) इस दुर्योधन

वचन और 'निर्गच्छध्वं पाण्डवेयाः पुष्येण सहिता मया' (शल्यपर्व ३५. १०) इस श्रीकृष्ण वचन के अनुसार कुरुक्षेत्र के लिए सैन्यनिर्याण के दिन मार्गशीर्ष कृष्ण पञ्चमी सिद्ध होती है। इसी दिन श्रीवलराम जी श्रीकृष्ण से मिलकर तीर्थयात्रा के उद्देश्य से चले थे।

इसी संदर्भ में यह भी ध्यान रखने योग्य है कि 'इमां तु नाभिजानेऽहममावास्यां त्रयोदशीम्' (भीष्मपर्व ३. २) इस व्यास-वचन के अनुसार और 'चतुर्दशी पञ्चदशी कृतेयं राहुणा पुनः' (मौसल० २. १९) इस भगवद् वचन के अनुसार महाभारत-युद्ध के आस-पास कृष्णपक्ष 'तेरह दिनों का था और चतुर्दशी को ही सूर्य ग्रहण से युक्त अमावास्या का योग भी था। अर्थात् यादवों के लिये अभिशापरूप मौसलयुद्ध के समान महाभारत युद्ध के समय भी कृष्णपक्ष तेरह दिनों का था और सूर्यग्रहण से युक्त अमावास्या का योग था। 'अलक्ष्यः प्रभयाहीनः पौर्णमासीं च कार्तिकीम्' (भीष्म० ३. २३), 'मांसवर्षं पुनस्तीव्रमासीत् कृष्णचतुर्दशीम्' (भीष्मपर्व ३. ३३) इस व्यास-वचन के अनुसार कार्तिकी पूर्णिमा के बाद कृष्ण चतुर्दशी का उल्लेख सहज ही 'चतुर्दशी पञ्चदशी कृतेयं राहुणा पुनः' इस भगवद्-वचन का स्मारक है अर्थात् मार्गशीर्ष कृष्ण तेरह दिनों का था। 'चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासीं त्रयोदशीम्' (भीष्मपर्व ३. ३२)='एक ही महीने में तेरह दिनों के अन्दर ही चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण का उल्लेख यह ध्वनित करता है कि शुक्लान्त-मासानुसार कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा और मार्गशीर्ष कृष्ण अमावास्या में तथा शुक्लादि-मासानुसार कार्तिक-पूर्णिमा और कार्तिक-अमावास्या में क्रमशः चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण का योग था। इस दृष्टि से मार्गशीर्ष कृष्ण पञ्चमी 'पुष्य' में वलराम-निर्याण और उसके बयालीसवें दिन श्रवण नक्षत्र में गदायुद्ध दर्शनार्थ श्रीवलराम जी के पुनरागमन को देखते हुए तथा मृगशिरा में युद्धारम्भ को देखते हुए यही सिद्ध होता है कि मार्गशीर्ष शुक्ल १४ मृगशिरा में युद्धारम्भ हुआ और पौष शुक्ल १ श्रावण में युद्धान्त।

(२) भारत-सावित्री के अनुसार महाभारत युद्ध का प्रारम्भ हेमन्त ऋतु के प्रथम मास में शुक्लपक्ष की त्रयोदशी में यमदैवत भरणी नक्षत्र में सिद्ध होता है—

"हेमन्ते प्रथमे मासे शुक्लपक्षे त्रयोदशी।
प्रवृत्तं भारतं युद्धं नक्षत्रं यमदैवतम्॥"

(भारत-सावित्री ६४)

परन्तु ऐसा मानने पर भरणी से श्रवण २१ वें स्थान पर है, अतः युद्धान्त श्रवण नक्षत्र में होना असम्भव है। यदि यम का अर्थ युग्म करके मृगशिराको ही यम देवता सम्बन्धी नक्षत्र मानें तो उसके अनुगुण चतुर्दशी या पूर्णिमा तिथि मान्य होगी. त्रयोदशी नहीं। भारत-सावित्री के अनुसार भी यम दैवत भरणी ही मान्य है ; क्योंकि 'फाल्गुन्यां निहतो भीष्मः कृष्णपक्षे च सप्तमी' इस भारत सावित्री के अनुसार फाल्गुनी नक्षत्र में भीष्म वध तभी सम्भव है जब भरणी में युद्धारम्भ हुआ हो, क्योंकि पूर्वा फाल्गुनी भरणी के बाद ठीक नवें स्थान पर हैं।

ध्यान रहे, भारत-सावित्री ने अमावास्या में दुर्योधन वध अर्थात् युद्धान्त माना है 'अमायामर्धरात्रेतु राजा दुर्योधनोहतः' (७५) और शुक्ल त्रयोदशी में युद्धारम्भ 'शुक्लपक्षे त्रयोदशी, प्रवृत्तं भारतं युद्धं' (६४), इस तरह उसके मत में दैनिक अवहार युक्त कुल अठारह दिनों में अठारह युद्ध मान्य है। भरणी के ठीक अठारहवें स्थान पर मूल और इक्कीसवें स्थान पर श्रवण है, अतः 'मूल' नक्षत्र में युद्धान्त सिद्ध होता है न कि श्रवण में। इस तरह, भारत-सावित्री का वचन महाभारत के सर्वथा अनुगुण नहीं है। कल्पभेद से विगान परिहार सम्भव है।

(३) • आजकल गीताजयन्ती मार्गशीर्ष शुक्ल ११ में मनाई जाती है, सम्भव है नक्षत्र गणना की दृष्टि से किन्हीं विद्वान् ने भारत-सावित्री के भरणी नक्षत्र के अनुगुण त्रयोदशी तिथि न मानकर एकादशी स्वीकार कर मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी में गीताजयन्ती मानी हो। इस तिथि की प्रामाणिकता पर हम आगे विचारेंगे। एकादशी से लेकर चतुर्दशी या पूर्णिमा तक गीताजयन्ती महोत्सव मनाने पर सभी (प्रचलित और उल्लिखित) तिथियों का समादर हो जाता है।

(४) • ध्यान रहे, महाभारत युद्धके आरम्भ और अन्त सम्बन्धी प्रामाणिक तिथि की उपलब्धि केवल इस बात पर ही निर्भर नहीं करती कि श्रवण में युद्धान्त हो और उससे सत्रह दिन पूर्व मृगशिरा में युद्धारम्भ हो ; अपितु इस बात पर भी निर्भर करती है कि भीष्म निधन सम्बन्धी वचनों के साथ भी उसकी सुसंगति हो। उपर्युक्त गणना में शरदन्त हिमागम रेवती नक्षत्र के पश्चात् पुष्य के एक सप्ताह बाद ऐन्द्र नक्षत्र में अमावास्या को देखते हुए पुष्य के ४२ वें स्थान पर अवस्थित श्रवणोत्तर श्रवण में युद्धान्त के अनुरूप पौष शुक्ल १ में युद्धान्त और उससे पूर्व अठारहवें दिन मृगशिरा

नक्षत्र के अनुरूप मार्गशीर्ष शुक्ल १४ में युद्धारम्भ की प्राप्ति है। पौष कृष्ण ६ उत्तराफाल्गुनी से पौष शुक्ल १ श्रवण तक क्रमशः ८ वें दिन से १८ वें दिन का युद्ध प्राप्त है, अतः आठवें, नवें, ग्यारहवें, चौदहवें और अठारहवें दिन के युद्ध में सायं, मध्यरात्रि में तथा उत्तररात्रि में अन्धकार एवं प्रकाश का उल्लेख चरितार्थ होता है। ऐसा होने पर भी इसकी चरम प्रामाणिकता युद्धारम्भ और भीष्म पतन एवं युद्धान्तसे संलग्न भीष्मनिर्वाण सम्बन्धी वचनों के साथ सामञ्जस्य पर ही निर्भर है।

मार्गशीर्ष कृष्ण अमावास्या ज्येष्ठा से मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशी रोहिणी तक शिविर निर्माण, भूमिशोधन, ध्वजारोपण, सन्धिवार्ता, सैन्य प्रशिक्षण, समय (नियम)–निर्धारण आदि में चौदह दिनों का उपयोग होता है।

बीच में विश्राम की कल्पना निराधार है। सर्वाधिक तथ्य यह है कि **'संग्रामो युज्यतां तस्यां'** इस श्रीकृष्ण वचन में 'युज' धातु 'प्रारम्भ' अर्थ का वाचक न होकर 'तैयारी' अर्थ का वाचक है; क्योंकि इस प्रकरण में अनेक बार 'योग:' शब्द प्रारम्भार्थक न होकर 'तैयारी' अर्थ में है, किन्तु कवीश्वर पूर्वाग्रह से उसे प्रारम्भार्थक मान बैठे हैं।

"मघा विषयगः सोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत।
दीप्यमानाश्च सम्पेतुर्दिवि सप्त महाग्रहाः॥"

(भीष्मपर्व १७. २)

इस श्लोक के अनुसार यद्यपि सप्तग्रही से युक्त मघा नक्षत्र पर चन्द्र था, उसी दिन युद्धारम्भ हुआ (भीष्म० १७ १); परन्तु इस श्लोक का इस प्रसंग में कूटार्थभेदी प्रक्रिया के अनुसार ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिये—मघा के पाँचवें स्थान पूर्व मृगशिरा है, उसके देवता सोम (चन्द्र) हैं, अतः सोम देवता सम्बन्धी मृगशिरा नक्षत्र में युद्धारम्भ हुआ। विषय अर्थात् पाँच और 'विषयगः' अर्थात् पाँचवाँ स्थान। क्योंकि मघा के देवता पितर हैं और मृगशिरा के चन्द्र; अतः मघा मृगशिरा समझने योग्य है।

अब भीष्म निर्वाण सम्बन्धी वचनों की दृष्टि से विचार कर गणना की प्रामाणिकता परीक्षण करने योग्य है।

१४. भीष्म-निर्वाण सम्बन्धी पृष्ठभूमि

'संजयोऽहं महाराज नमस्ते भरतर्षभ।
हतो भीष्मः शान्तनवो भरतानां पितामहः ॥
(भीष्मपर्व १३. ३)

"ककुदं सर्वयोधानां धाम सर्वधनुष्मताम्।
शरतल्पगतः सोऽद्य शेते कुरुपितामहः ॥"
(भीष्मपर्व १३. ४)

"राजन्! मैं संजय हूँ, आपको नमस्कार, भरतवंशियों के पितामह शान्तनुनन्दन भीष्म मारे गये।'

"जो समस्त योद्धाओं के ध्वज स्वरूप और सम्पूर्ण धनुर्धरों के आश्रय थे, वे ही कुरुकुल पितामह भीष्म आज बाण शय्यापर सो रहे हैं॥"

"परिरक्ष्य स सेनां ते दशरात्रमनीकहा।
जगामास्तमिवादित्यः कृत्वा कर्मसुदुष्करम्॥
यः स शक्र इवाक्षोभ्यो वर्षन् बाणान् सहस्रशः।
जघान युधि योधानामर्बुदं दशभिर्दिनैः॥
स शेते निहतो भूमौ वातभग्न इव द्रुमः।"
(भीष्म० १३- ११, १२, १२½)

"वे ही शत्रुसेना के संहारक भीष्म दश दिनों तक आपकी सेना का संरक्षण करके अत्यन्त दुष्कर पराक्रम प्रकट करते हुए अन्त में सूर्य-सदृश अस्ताचल को चले गये॥"

"जिन्होंने इन्द्र की भाँति क्षोभ रहित होकर हजारों वाणों की वर्षा करते हुए दश दिनों में शत्रु पक्ष के दश करोड़ योद्धाओं का संहार कर डाला, वे ही आज आंधी द्वारा उखाड़े हुए वृक्ष की भाँति गिरकर युद्धभूमि में सो रहे हैं।"

सौप्तिक संहार के पश्चात् उषः काल में दुर्योधन के देहत्याग के पश्चात् संजय हस्तिनापुर गये। पुनः धृतराष्ट्र की प्रेरणा से धर्मराज युधिष्ठिर ने मृतकों के सामूहिक दाहादिकी व्यवस्था की। उन्होंने जलाञ्जलि के पश्चात् मासमात्र गंगातट पर निवास किया—

"कृतोदकास्ते सुहृदां सर्वेषां पाण्डुनन्दनाः ।
विदुरो धृतराष्ट्रश्च सर्वाश्च भरतस्त्रियः ॥
तत्र ते सुमहात्मानो न्यवसन् पाण्डुनन्दनाः ।
शौचं निर्वर्तयिष्यन्तो मासमात्रं बहिः पुरात् ॥"
(शान्तिपर्व १।१-२)

"राजन् ! पाण्डव, विदुर, धृतराष्ट्र तथा भरतवंश की सम्पूर्ण स्त्रियाँ—इन सब ने गंगा जी में अपने समस्त सुहृदों के लिए जलाञ्जलियाँ प्रदान कीं ॥"

"तदनन्तर वे महामनस्वी पाण्डव आत्मशुद्धि का सम्पादन करने के लिए एक मास तक वहीं (गङ्गातट पर) नगर से बाहर टिके रहे ॥"

पुनः सभी हस्तिनापुर आये। धर्मराज युधिष्ठिर का, भगवान् कृष्ण के नेतृत्व में, राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ। यथायोग्य महलों में पाण्डवों ने निवास किया।

"प्रवेशने तु पार्थानां जनानां पुरवासिनाम् ।
दिदृक्षूणां सहस्राणि समाजग्मुः सहस्रशः ॥"
(शान्ति० ३८. १)

"कुन्तीपुत्रों के हस्तिनापुर में प्रवेश करते समय उन्हें देखने के लिए दस लाख नगर निवासी सड़कों पर एकत्र हो गये ॥"

"पूजिताश्च ययुर्विप्रा राजानमभिनन्द्य तम् ।
राजा च हर्षमापेदे पाण्डवः ससुहृज्जनः ॥
(शान्ति० ३८. ३७)

"तत्पश्चात् राजा द्वारा पूजित हुए वे ब्राह्मण उनका अभिनन्दन करके चले गये और पाण्डवपुत्र राजा युधिष्ठिर अपने सुहृदों सहित बड़े हर्ष को प्राप्त हुए ॥"

"तत उत्थाय दाशार्हः शङ्खमादाय पूजितम् ।
अभ्यषिञ्चत् पतिं पृथ्व्याः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥
धृतराष्ट्रश्च राजर्षिः सर्वाः प्रकृतयस्तथा ।"
(शान्ति० ४०. १५, १५३)

"तत्पश्चात् दाशार्हवंशी श्रीकृष्ण ने उठकर, जिसकी पूजा की गयी थी, वह पाञ्चजन्य शङ्ख हाथ में ले जल से पृथ्वीपति कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर का अभिषेक किया। फिर राजा धृतराष्ट्र तथा प्रकृतिवर्ग के अन्य सब लोगों ने भी अभिषेक का कार्य सम्पन्न किया॥"

'ततो युधिष्ठिरो राजा ज्ञातीना ये हृता युधि।
श्राद्धानि कारयामास तेषां पृथगुदारधीः॥"
(शा० ४२. १)

"तदनन्तर उदारबुद्धि राजा युधिष्ठिर ने भाई और कुटुम्बी जनों में से जो लोग युद्ध में मारे गये थे, उन सब के अलग-अलग श्राद्ध करवाये॥"

"ततो युधिष्ठिरो राजा भीमं भीमपराक्रमम्।
सान्त्वयन्नब्रवीच्छ्रीमानर्जुनं यमजौ तथा॥'
(शान्ति० ४४. २)

"इसके बाद श्रीमान् महाराज युधिष्ठिर ने भयानक पराक्रमी भीमसेन, अर्जुन तथा नकुल-सहदेव को सान्त्वना देते हुए कहा—

"यथासुखं यथाजोषं जयोऽयमनुभूयताम्।
विश्रान्ताल्लँब्धविज्ञानाञ्श्वः समेतास्मि वः पुनः॥"
(शान्ति० ४४. ५)

"अब तुमलोग सुख पूर्वक जी भरकर इस विजय जनित आनन्द का अनुभव करो। अच्छी तरह विश्राम करके जब तुम्हारा चित्त स्वस्थ हो जाय, तब फिर कल तुम लोगों से मिलूँगा॥"

"तत्र भक्ष्यान्नपानैस्ते मुदिताः सुसुखोषिताः।
सुखप्रबुद्धा राजानमुपतस्थुर्युधिष्ठिरम्॥"
(शान्ति० ४४. १६)

"वहाँ अपने-अपने स्थानों पर खान-पान से सन्तुष्ट हो वे सब लोग रात भर बड़े सुख से सोये और सबेरे उठकर राजा युधिष्ठिर की सेवा में उपस्थित हो गये॥"

पुनः भगवान् श्रीहरि की प्रेरणा से भीष्माचार्य के श्रीमुख से उपदेश श्रवण की अभिलाषा से धर्मराज निज परिकर सहित पितामह की सेवा में

कुरुक्षेत्र उपस्थित हुए। श्रीभगवान् ने दिव्यशक्ति और दिव्यदृष्टि से देवव्रत भीष्म जी को सम्पन्न किया। साथ ही जीवन के शेष दिनों का रहस्योद्घाटन करते हुए श्रीहरि ने पितामह से कहा—

"पञ्चाशतं षट् च कुरुप्रवीर
शेषं दिनानां तव जीवितस्य।
ततः शुभैः कर्मफलोदयैस्त्वं
समेष्यसे भीष्म विमुच्य देहम्॥"
(शान्तिपर्व ५१. १४)

"कुरुप्रवीर भीष्म! आपके जीवन के कुल छप्पन दिन शेष हैं। तदनन्तर आप इस शरीर का त्याग करके अपने शुभकर्मों के फलस्वरूप उत्तम लोकों में जायँगे॥"

तत्पश्चात् उसी दिन चन्द्रोदय के दिव्य प्रकाश में सेना सहित पाण्डव हस्तिनापुर के लिए प्रस्थित हुए—

"ततः पुरस्ताद् भगवान् निशाकरः
समुत्थितस्तामभिहर्षयंश्चमूम्।
दिवाकरापीतरसा महौषधीः
पुनः स्वकेनैव गुणेन योजयन्॥"
(शान्तिपर्व ५२. ३३)

"इसके वाद पूर्व दिशा के आकाश में भगवान् चन्द्रदेव का उदय हुआ, जो उस सेना का हर्ष बढ़ा रहे थे और सूर्य ने जिन बड़ी-बड़ी ओषधियों का रस पी लिया था, उन सबको अपनी सुधावर्षी किरणों द्वारा पुनः उनके स्वाभाविक गुणों से सम्पन्न कर रहे थे॥"

फिर रात्रि बिताकर उपदेश श्रवण के योग्य परिकर सहित धर्मराज, भगवान् श्रीकृष्ण के मार्गदर्शन में, भीष्माचार्य के समीप समुपस्थित हुए। कई दिनों तक उपदेश हुआ। पुनः भीष्माचार्य ने युधिष्ठिर से कहा—

"आगन्तव्यं च भवता समये मम पार्थिव।
विनिवृत्ते दिनकरे प्रवृत्ते चोत्तरायणे॥"
(अनुशासनपर्व १६६. १४)

"पृथ्वीनाथ ! जब सूर्य नारायण दक्षिणायन से निवृत्त हो उत्तरायण आ जायँ, तुम फिर हमारे पास आना ॥"

तत्पश्चात् पाण्डव हस्तिनापुर आकर रहने लगे। यथासमय धर्मराज को भीष्मजी के देहत्याग का समय स्मरण हो आया। वे सम्बन्धियों सहित पितामह की सेवा में समुपस्थित हुए—

'उषित्वा शर्वरीः श्रीमान् पञ्चाशन्नगरोत्तमे।
समयं कौरवाग्रचस्य सस्मार पुरुषर्षभः॥
स निर्ययौ गजपुराद् याजकैः परिवारितः।
दृष्ट्वा निवृत्तमादित्यं प्रवृत्तं चोत्तरायणम्॥"
(अनुशासनपर्व १६७. ५, ६)

"पचास रात तक उस उत्तम नगर में निवास करके श्रीमान् पुरुषप्रवर युधिष्ठिर को कुरुकुल शिरोमणि भीष्मजी के बताये हुए समय का स्मरण हो आया॥"

"वे यह देखकर कि सूर्यदेव दक्षिणायन से निवृत्त हो गये और उत्तरायण पर आ गये, याजकों सहित हस्तिनापुर से बाहर निकले॥"

निज सेवा में समुपस्थित धर्मराज से पितामह ने कहा—

'अष्टपञ्चाशतं रात्र्यः शयानस्याद्य मे गताः।
शरेषु निशिताग्रेषु यथा वर्षशतं तथा॥
माघोऽयं समनुप्राप्तो मासः सौम्योयुधिष्ठिर।
त्रिभागशेषः पक्षोऽयं शुक्लोभवितुमर्हति॥"
(अनुशासनपर्व १६७. २७, २८)

"इन तीखे अग्रभाग वाले बाणों की शय्या पर शयन करते हुए आज मुझे अट्ठावन दिन हो गये; किन्तु ये दिन मेरे लिये सौ वर्षों के समान बीते हैं॥"

"युधिष्ठिर! इस समय चान्द्रमास के अनुसार माघ का महीना प्राप्त हुआ है। इसका यह शुक्लपक्ष चल रहा है, जिसका एक भाग बीत चुका है और तीन भाग शेष है।" (शुक्लपक्ष से मास का आरम्भ मानने पर आज माघ शुक्लाष्टमी प्रतीत होती है।)

महर्षि वैशम्पायन ऋषि ने जनमेजय के पूछने पर भीष्म जी के स्वर्गारोहण दिवस का रहस्योद्घाटन करते हुए कहा है—

"शृणुष्वावहितो राजञ्शुचिर्भूत्वा समाहितः।
भीष्मस्य कुरुशार्दूल देहोत्सर्गं महात्मनः॥
* (शुक्लपक्षस्य चाष्टम्यां माघमासस्य पार्थिव।
प्राजापत्ये च नक्षत्रे मध्यं प्राप्ते दिवाकरे॥)
निवृत्तमात्रे त्वयन उत्तरे वै दिवाकरे।
समावेशयदात्मानमात्मन्येव समाहितः॥"
(शान्तिपर्व ४७. २, ३)

"राजन्! कुरुश्रेष्ठ! तुम सावधान, पवित्र और एकाग्रचित्त होकर महात्मा भीष्मजी के देहत्याग का वृत्तान्त सुनो॥"

"राजन्! जब दक्षिणायन समाप्त हुआ और सूर्य उत्तरायण में आ गये, तब माघ मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथि को रोहिणी नक्षत्र में मध्याह्न के समय भीष्म जी ने ध्यानमग्न होकर अपने मन को परमात्मा में लगा दिया॥"

१५. भीष्मोत्क्रमण-सम्बन्धी वचनों की कसौटी पर पूर्वोक्त गणना.

(१) महाभारत में बलराम जी ने उनकी (अपनी) तीर्थयात्रा में ४२ दिन बताए हैं। उनमें विलोम शोधन-प्रक्रियाके अनुसार कम दिनकी कल्पना नहीं की जा सकती, क्योंकि दिन संख्या के साथ ही पुष्य से श्रवण तक (श्रवणोत्तर श्रवण तक) नक्षत्र का भी उल्लेख है। पुष्य से श्रवणोत्तर श्रवण ४२ वें स्थान पर है।

(२) भीष्म-निर्वाण सम्बन्धी 'पञ्चाशतं षट्' और 'अष्ट पञ्चाशद् रात्र्यः' का कदाचित् विलोम शोधन प्रक्रिया के अनुसार [६] न्यून अर्थ कर भी लें किन्तु 'पञ्चाशन्नगरोत्तमे' में प्रयुक्त पचास का अर्थ तो पचास ही करना होगा। इसे न्यूनाधिक नहीं कर सकेंगे। ऐसी स्थिति में ५६ का अर्थ

६—विलोम शोधनात् अष्टपञ्चाशदूनं रात्रयो व्यतीता इत्यर्थः
१००—५८=४२ (—नीलकण्ठाचार्य)

भी कम करना असम्भव होगा, क्योंकि जब भीष्म जी की आयु के ५६ दिन शेष रहेंगे, तब भीष्म जी से श्रीकृष्ण कहेंगे कि आपकी आयु के ५६ दिन (अर्थात् आज के बाद और देहत्याग के दिन से पूर्व-मध्य के) शेष हैं। फिर 'पञ्चाशन्नगरोत्तमे' के अनुसार पाण्डव उपदेशामृत श्रवण करने के पश्चात् पचास रात्रि हस्तिनापुर में निवास करेंगे। अर्थात् भीष्म जी से उपदेश की स्वीकृति लाभ कर भगवान् श्रीकृष्ण के साथ पाण्डव रात्रि विश्राम के लिए हस्तिनापुर आएंगे, पुनः उपदेश सुनने के लिए रात्रि बीतने पर कुरुक्षेत्र उपस्थित होंगे। ५६—५०=६ दिन भीष्माचार्य उपदेश करेंगे। पुनः छठे दिन की रात्रि में पाण्डव हस्तिनापुर आकर पचास रात्रि निवास करेंगे या ५ दिनों तक भीष्म जी से उपदेश सुनेंगे। छठे दिन हस्तिनापुर आकर पाण्डव पचास दिनों तक हस्तिनापुर में निवास करेगे। पुनः भीष्मजी के देहत्याग के दिन हस्तिनापुर से कुरुक्षेत्र पधारेंगे। तब भीष्मजी श्रीकृष्ण से कहेंगे 'आपने जिस दिन जीवन के ५६ दिन शेष बताए थे उस दिन से आज तक कुल मेरे ५६+२=५८ दिन शरशय्या पर हो गये। अथवा चान्द्रवर्ष ३५४ दिनों का होता है और सौर वर्ष ३६५ दिन पन्द्रह घड़ी एवं कुछ पलों का। इस दृष्टि से आपके द्वारा निर्दिष्ट ५६ दिन ही लगभग ५८ दिन के तुल्य हो जाते हैं।"

अथवा शरशय्या लाभ से देहत्याग के दिन श्रीपितामह के कुल ५८ दिन हुए, मध्य के अवशिष्ट ५६ दिनों को लेकर श्रीकृष्ण ने श्रीभीष्म के जीवन के ५६ दिन शेष बताया था, ऐसा मानना उपयुक्त होगा।

(३) ध्यान रहे—

"शुद्ध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति॥"

(मनुस्मृति ५. ८३)

"ब्राह्मण दश दिनों में, क्षत्रिय बारह दिनों में, वैश्य पन्द्रह दिनों में और शूद्र तीस दिनों में शुद्ध होता है॥"

क्षात्र धर्म के अनुसार युद्ध में शस्त्र द्वारा वीरगति को प्राप्त क्षत्रिय की मृत्यु से प्राप्त अशौच की सद्यः शुद्धि हो जाती है—

"उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्महतस्य च।
सद्यः संतिष्ठते यज्ञस्तथाऽऽशौचमिति स्थितिः॥"
(मनुस्मृति ५. ९८)

(४) "माघोऽयंसमनुप्राप्तो मासः सौम्यो युधिष्ठिर।
त्रिभागशेषः पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति॥"
(अनुशासन पर्व १६७. २८)

उक्त स्थल में 'माघोऽय" के साथ 'त्रिभागशेषः' का अन्वय करने पर शुक्लादि मासानुसार माघ शुक्ला साढ़े सप्तमी अर्थात् अष्टमी तिथि सिद्ध होती है। 'पक्षोऽय" के साथ 'त्रिभागशेषः' का अन्वय करने पर और एक तिथि की वृद्धि मानने पर १६/४ चतुर्थी तिथि की सिद्धि होती है और इसी बीच में एक तिथि की वृद्धि मानने पर पञ्चमी तिथि सिद्ध होती है। नीलकण्ठाचार्य को 'शेषः' का अभिप्राय देहत्यागरूप कृत्यावशेष मानकर पक्ष का त्रिभाग पञ्चमी मान्य है। साथ ही 'माघोऽयं समनुप्राप्तः' का अर्थ करते समय उन्होंने माघशुक्लाष्टमी में ही भीष्म जी का देहत्याग माना है। इसी तरह 'त्रिभागशेषः पक्षोऽय' का एक तिहाई पक्ष शेष है अर्थात् 'आज दशमी है' ऐसा भी अर्थ हो सकता है। परन्तु 'माघोऽय" के साथ 'त्रिभागशेषः' का अन्वय करने पर जब तिथि की उपलब्धि हो ही जाती है तब 'पक्षोऽय" के साथ अन्वय में गौरव है। साथ ही दाक्षिणात्य पाठ सहित निम्नलिखित वचनों के अनुशीलन से भी भीष्मनिर्वाण माघ शुक्लाष्टमी में ही सिद्ध है।

("शुक्लपक्षस्य चाष्टम्यां माघमासस्य पार्थिव।
प्राजापत्ये च नक्षत्रे मध्यं प्राप्ते दिवाकरे॥")

"समावेशयदात्मानमात्मन्येव समाहितः॥"
(शान्तिपर्व ४७ ३)

"माघे मासि सिताष्टम्यां भीष्मः प्राणान् समत्यजत्।"
(देवीपुराण ५७ ५०)

"शुक्लाष्टम्यां तु माघस्य दद्याद् भीष्माय यो जलम्।
संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥"
(भविष्योत्तरम्)

"अष्टम्यां तु सिते पक्षे भीष्माय तु तिलोदकम् ।
अन्नञ्च विधिवद्दद्युः सर्वे वर्णा द्विजातयः ॥"
(धवलधृतास्मृतिः)

(टिप्पणी—सर्वे वर्णा इत्युपादानात् ब्राह्मणशूद्रयोरप्य-
धिकारः ॥ द्विजातय इति सम्बोधनम् ।)
मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या श्राद्धे भीष्माष्टमी तिथिः ।
स्नाने च तर्पणे दाने ग्राह्या सूर्योदयी परा ॥
पूर्वस्यामेव कर्त्तव्यं तर्पणं श्राद्धमेव च ।
यदैकस्मिन्भवेन्मासि कदाचिन्माकरीद्वयम् ।
भीष्माष्टमीद्वयं वापि तदा ग्राह्या परा तिथिः ॥
(स्मृति रत्नाकरे विष्णुधर्मोत्तरम्)

● मार्गशीर्ष शुक्ल १४ मृगशिरा में युद्धारम्भ मानने पर पौष कृष्ण ८ चित्रा में भीष्म पतन और पौष शुक्ल १ श्रवण में युद्धान्त सिद्ध होता है।

'सद्यः संतिष्ठते यज्ञः' (मनुस्मृति ५. ६८) के अनुसार यद्यपि युद्ध में वीरगति को प्राप्त सगे-सम्बन्धियों की मृत्यु से प्राप्त अशौच की युद्धकाल में दैनिक शुद्धि हो जाती थी, तथापि सौप्तिक संहार में अन्यरीतिसे भी अश्वत्थामा के द्वारा मारे गये स्वजनों के मरण से प्राप्त अशौच की शुद्धि के लिए पाण्डव युद्ध के पश्चात् 'द्वादशाहेन भूमिपः' (मनु० ५.८३) के अनुसार बारह दिनों तक पुरसे बाहर रहे। ऐसा माननें पर 'मासमात्रं बहिः पुरात्' (शान्ति० १. २) इस वचन की सार्थकता सध जाती है। अर्थात् 'एक महीनामें अवशिष्ट ३०—१८=१२ दिन पाण्डवादि युद्धोपरान्त शुद्धि सम्पादन के उद्देश्य से नगर के बाहर रुके रहे, तब तक उनके युद्धकाल से ३० दिन शुद्धिसम्पादन में व्यतीत हो गये थे', ऐसा वाक्य शेष मानकर 'मासमात्र' का अभिप्राय हृदयंगम करना चाहिये। ऐसा मानने पर मनुप्रोक्त दोनों वचन सार्थक हाते हैं, साथ हो 'मासमात्रं बहिः पुरात्' की भी सार्थकता सध जाती है और दैनिक अवहार युक्त, किन्तु अवकाश सहित लगातार अठारह दिनों तक ही युद्ध हुआ यह भी चरितार्थ होता है। इस रीति से पौष शुक्ल द्वादशी तक शुद्धि सम्पादन कर पाण्डव हस्तिनापुर पहुंचे। तब तक भीष्म जी के शरशय्यापर ९+१२=२१ दिन हो गये थे। दुर्योधनादि मृतकों के दाह

संस्कार के पश्चात् १२ दिन मानने पर भी शुक्लपक्ष में १ तिथि की वृद्धि मानकर शुद्धि-सम्पादन के लिए अपेक्षित समय की वृद्धि हो सकती है। तत्पश्चात् हस्तिनापुर में धर्मराज युधिष्ठिर का राज्याभिषेक और अभिमन्यु आदि के लिए श्राद्धादि कृत्यों में चतुर्दशी तक समय व्यतीत हो सकता है। पूर्णिमा के दिन भीष्माचार्य के दर्शनों के लिये पाण्डवों का शुभागमन मानें तो माघ शुक्लाष्टमी में देहत्याग करने के लिये भीष्म जी के कुल मध्य के १५+७=२२ दिन ही शेष रहेंगे। कदाचित् माघ अधिक मास सिद्ध हो और शुद्ध माघ शुक्लाष्टमी में देहत्याग मानें तो १५+१५+१५+७=५२ दिन ही भीष्म जी के अवशिष्ट रहेंगे। ऐसी स्थिति में 'पञ्चाशतं षट् च कुरुप्रवीर' (शान्ति० ५१. १४) भगवान् श्रीकृष्ण का यह वचन '५६ दिन शेष न रहकर कुल ५२ दिन शेष रहने के कारण' असंगत होगा। इस तरह भीष्म निर्वाण की दृष्टि से उक्त गणना असंगत होने के कारण किसी और प्रामाणिक गणना का अनुशीलन अपेक्षित है। ध्यान रहे, माघ का अधिक मास सिद्ध होना और उस वर्ष उसका योग सधना कठिन है।

१६. भीष्म-निर्वाण सम्बन्धी वचनों से संलग्न तथा प्रचलित गीताजयन्ती की प्रामाणिक तिथि मार्गशीर्षशुक्ल एकादशी.

महाभारत में युद्धारम्भ सम्बन्धी दो विरुद्ध-वचन प्राप्त हैं, जब कि युद्धान्त सम्बन्धी केवल एक वचन प्राप्त है। कदाचित् वे विरुद्ध-वचन आपस में टकराकर युद्धारम्भ सम्बन्धी अपनी-अपनी उपयोगिता लुप्त कर दें तो भी प्रश्न उठता है कि उन दोनों की सार्थकता कितने अंश में और किस अभिप्राय से सिद्ध है साथ ही युद्धारम्भ का प्रामाणिक नक्षत्र भी क्या है?

"सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति।
संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम् ॥"

(उद्योग० १४२. १८)

भगवान् श्रीकृष्ण का यह वचन 'अमावास्या से युक्त ऐन्द्र नक्षत्र जो कि पुष्य के सातवें दिन या सात दिन बाद ही होने योग्य है, उसमें युद्धारम्भ होना उपयुक्त है,' ऐसा आपाततः सिद्ध करता है।

"यथा स भगवान् व्यासः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ।
तथैव सहिताः सर्वे समाजग्मुर्महीक्षितः ॥"
(भीष्म० १७. १)

"श्रीकृष्णद्वैपायन भगवान् व्यास ने जैसा कहा था, उसी के अनुसार सब राजा कुरुक्षेत्र में एकत्र हुए थे ॥"

"मघाविषयगः सोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत ।
दीप्यमानाश्च सम्पेतुर्दिवि सप्त महाग्रहाः ॥"
(भीष्म० १७. २)

"उसदिन चन्द्रमा मघा नक्षत्र पर था ; आकाश में सात महाग्रह उद्दीप्त दिखाई दे रहे थे ॥"

इस संजय-वचन के अनुसार सप्तग्रही के योग से युक्त मघा नक्षत्र में युद्धारम्भ सिद्ध होता है ।

अब क्योंकि 'मघा' सैन्य-निर्याण तिथि 'पुष्य' से तीसरे स्थान पर है, अर्थात् पुष्य और मघा के बीच में केवल आश्लेषा नक्षत्र को लेकर एक दिन का ही व्यवधान है. ऐसी स्थिति में यदि पुष्य में हस्तिनापुर और उपप्लव्य नगर से चली हुई कौरव-पाण्डव सेना आश्लेषा में कुरुक्षेत्र पहुँचकर 'मघा' में युद्धारम्भ कर देती है, ऐसा मानें तब तो पुरोपम शिबिरादि के निर्माण का जो वर्णन है, वह जहाँ व्यर्थ होता है, वहाँ (विशाखा जो कि इन्द्र और अग्नि उभय देवताकनक्षत्र है, वह पुष्य के नवें स्थान पर है और ज्येष्ठा जो कि केवल ऐन्द्र नक्षत्र है, वह पुष्य से ग्यारहवें स्थान पर है अर्थात्) मघा के सातवें और नौमें स्थान पर अवस्थित विशाखा और ज्येष्ठा दोनों में किसी एक नक्षत्र में युद्धारम्भ सम्बन्धी श्रीकृष्ण-वचन सर्वथा उपेक्षित हो जाता है । साथ ही मघा से श्रवण जो कि केवल तेरहवें स्थान पर है, उसमें युद्धान्त भी असम्भव है ; क्योंकि सर्वत्र अठारह दिनों के युद्ध का ही उल्लेख है न कि तेरह दिनों के । यदि पुष्य के तीसवें स्थान पर आने वाले मघा नक्षत्र में युद्धारम्भ मानें तो भी उसके तेरहवें दिन श्रवण में युद्धान्तवाली असंगति ही प्राप्त होती है । अतः मघा में युद्धारम्भ सर्वथा असंगत है । ऐसी स्थिति में 'यथा स भगवान् व्यासः' यह प्रथम श्लोक युद्ध के प्रारम्भ का सूचक है, जब कि 'मघाविषयगः' यह श्लोक भीष्म जी के शरशय्या लाभ दिवस का द्योतक है । आगे तीसरे और चौथे श्लोकों में जिन उत्पातों का

वर्णन है, उन्हीं का विस्तार पूर्वक द्रोणाचार्य ने युद्ध के दशवें दिन भीष्म निधन (पतन) की आशंका से भीष्म की रक्षा में निजपुत्र अश्वत्थामा को नियुक्त करते हुए किया है (भीष्मपर्व ११।२ वाँ अध्याय)। पाँचवें और छठे श्लोक में कहा गया है कि "कुरुकुल वृद्ध पितामह भीष्म तथा भरद्वाज नन्दन द्रोणाचार्य—ये दोनों शत्रुदमन महारथी प्रतिदिन सबेरे उठकर मन को संयम में रखते हुए यही आशीर्वाद देते थे कि पाण्डवों की जय हो'; परन्तु वे जैसी प्रतिज्ञा कर चुके थे उसके अनुसार आपके लिए ही पाण्डवों के साथ युद्ध करते थे"—

"अहन्यहनि पार्थानां वृद्धः कुरुपितामहः।
भरद्वाजात्मजश्चैव प्रातरुत्थाय संयतौ ॥
जयोऽस्तु पाण्डुपुत्राणामित्यूचतुररिंदमौ।
युयुधाते तवार्थाय यथा स समयः कृतः ॥"
(भीष्मपर्व १७. ५, ६)

कदाचित् तीसरे और चौथे श्लोकों में वर्णित उत्पातों को प्रथम दिन के युद्धारम्भ से पूर्व का मानें तो भी ५, ६ श्लोकों में 'अहन्यहनि' शब्द तो भीष्म जी के नेतृत्व काल में प्रतिदिन की घटना का ही द्योतक है। आगे पुनः युद्धारम्भ का व्यापक चित्रण है। इस तरह संक्षेप से भीष्म वध तक की घटना का उल्लेख कर विस्तार पूर्वक युद्धारम्भ से भीष्मनिधन तक की घटना को वताने के लिए ही संजय ने धृतराष्ट्र को प्रबोधित करना प्रारम्भ किया है, यह तथ्य 'अहन्यहनि' इस वाक्यशेष से स्पष्ट है। ऐसी स्थिति में मघा में भीष्मजी का शरशय्या लाभ अर्थात् दशवें दिन का युद्ध मान्य है।

यदि ऐन्द्र नक्षत्र ज्येष्ठा में ही युद्धारम्भ माना जाय तो 'मघा' सम्बन्धी वचन की सर्वथा उपेक्षारूप दोष प्राप्त होता है, साथ ही लगातार युद्ध मानने पर श्रवण में युद्धान्त न होकर अठारहवें दिन पौष कृष्ण द्वितीया पुष्य में युद्धान्त सिद्ध होता है और आठवें, नौवें, ग्यारहवें और चौदहवें दिन का युद्ध क्रमशः शुक्ल ७, शुक्ल १०, शुक्ल १३ में होने के कारण पूर्व रात्रि में अन्धकार वाला तथा उत्तर रात्रि में चौदहवें दिन चन्द्रोदय वाला वचन सर्वथा विरुद्ध सिद्ध होता है। अठारह दिनों का युद्ध एक-एक दिन अवकाश देकर और चौदहवें एवं पन्द्रहवें दिन का युद्ध विना अवकाश देकर मानें तो श्रवण में युद्धान्त न होकर शतभिषा में युद्धान्त होता है।

श्रवण ज्येष्ठा से कुल बत्तीसवें स्थान पर है। कदाचित् विशाखा को ऐन्द्र नक्षत्र मानकर श्रवण में युद्धान्त मानें तो यद्यपि श्रवण उससे चौतीसवें स्थान पर है, उक्त रीति से श्रवण में युद्धान्त सध सकता है, तथापि आठवें दिन का युद्ध शुक्ल त्रयोदशी या चतुर्दशी में होना और युद्धारम्भ के पश्चात् अनुराधा (मैत्र) में कृतवर्मादि का दुर्योधन पक्ष में और श्रीकृष्ण एवं सात्यकि का पाण्डव पक्ष में सम्मिलित होना भी अनुपयुक्त होगा। तात्पर्य्य यह है कि विशाखा या ज्येष्ठा में युद्धारम्भ अनुपयुक्त है। हाँ 'सैन्य शिक्षण' और 'समय निर्धारण' की दृष्टि से ज्येष्ठा को ऐन्द्र नक्षत्र मानकर उसकी सार्थकता उपयुक्त है।

माघ को अधिकमास सिद्ध कर पाना कठिन है तथा अधिकमास मान लेने पर भी पूर्वोक्त रीति से कुल ५१ दिन ही शेष रह सकते हैं न कि ५६ दिन। ऐसी स्थिति में प्रशस्त परम्परा प्राप्त श्रीमद्भगवद्गीता जयन्ती की तिथि मार्गशीर्षशुक्ल एकादशी और भीष्म निर्वाण की तिथि माघ शुक्लाष्टमी मानने पर भीष्मजी के मध्य के ५६ और कुल ५८ दिन हो जाते हैं। 'अष्टपञ्चाशतं-रात्र्यः' का कूटभेदी प्रक्रिया से यह अर्थ उपयुक्त परिलक्षित होता है कि "युद्धारम्भ से अब तक ५८ दिन मेरे शरशय्या पर सोये हो गये। जिनमें ९ दिनों तक युद्ध के नेतृत्व के कारण व्यग्रता रही और दशमें दिन से लेकर आज तक ४९ दिन शरशय्या पर शयन करते हो गये॥"

माघ शुक्लाष्टमी में भीष्मोत्क्रमण की प्रामाणिकता महाभारत के अनुसार और उसके अनुगुण अन्य शास्त्रों के अनुसार पहले विस्तार पूर्वक सिद्ध की जा चुकी है। पूर्वोक्त रीति से मघा में भीष्म पतन मानने पर उससे ९ दिन पूर्व अश्विनी में युद्धारम्भ सिद्ध होता है। नक्षत्र गणना के अनुरूप तिथिगणना को देखते हुए मृगशिरा में मार्गशीर्ष की पूर्णिमा की दृष्टि से अश्विनी में मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी सिद्ध होती है। अतः इसी को युद्धारम्भ या गीताजयन्ती की तिथि मानना उपयुक्त है। श्रवण में युद्धान्त बलदेव वचन से ही सिद्ध है। अश्विनी से मघा दशवें स्थान पर और श्रवण बाइसवें स्थान पर है। मघा और श्रवण की सार्थकता को देखते हुए युद्धा-वहार के निमित्त दैनिक रात्रि-अवकाश के अतिरिक्त चार अवकाश मानने पर अठारह युद्ध को मिलाकर बाईस दिनों की सार्थकता सिद्ध होती है। अब क्योंकि भीष्म, द्रोण, कर्ण और शल्य के नेतृत्व काल में अवकाश महा-

भारत के सर्वथा विरुद्ध है, ऐसा पहले समारोह पूर्वक सिद्ध किया जा चुका है। इधर सनत्कुमार संहिता के अनुसार भीष्म जी के शरशय्या पर समासीन होने पर पांच दिनों का अवकाश कथा-वार्ता के निमित्त मान्य है। इससे भीष्म पतन और द्रोणाभिषेक के निमित्त, कर्णाभिषेक और शल्याभिषेक के निमित्त अधिक-से-अधिक एक-एक अवकाश मान्य हो सकता है। अधिक अवकाश की क्लिष्ट कल्पना अनुपयुक्त है। इधर 'पञ्चमे दिवसे तात पृथिवीते भविष्यति' (द्रोणपर्व १८३. ६५) यह व्यास-वचन है। श्रीव्यास ने युधिष्ठिर जी को रात्रि युद्ध जो कि चौदहवें दिन हुआ उसमें यह वरदान दिया कि 'पाचवें दिन हे तात ! पृथिवी तुम्हारी हो जायगी।' इसके अनुसार तत्पश्चात् पाँचवें दिन युद्धान्त होना अनिवार्य है। तत्पश्चात् पन्द्रहवें दिन का एक युद्ध, सोलहवें और सत्रहवें दिन के कर्ण के नेतृत्व में दो युद्ध और अठारहवें दिन शल्य के नेतृत्व में एक युद्ध अर्थात् कुल चार युद्ध मान्य हैं। शल्य या कर्ण के अभिषेक के उपलक्ष्य में केवल एक अवकाश की सार्थकता उक्त रीति से सध सकती है। शेष दो अवकाश भीष्मजी के शरशय्या पर आसीन होनेपर माना जा सकता है। उससे अधिक मानने में क्लिष्ट कल्पना सिद्ध हो सकती है। अतः अश्विनी से श्रवण तक एक नक्षत्र का क्षय मान कर कुल इक्कीस दिनों में भीष्म के उपलक्ष्य में दो और कर्ण एवं शल्याभिषेक के उपलक्ष्य में एक अवकाश मानकर शेष अठारह दिन युद्ध मानना चाहिये।

इस तरह मार्गशीर्ष ११ अश्विनी में युद्धारम्भ, पौषकृष्ण ५ मघा में भीष्म पतन, पौष कृष्ण ११ में जयद्रथ वध और रात्रियुद्ध तथा पौष शुक्ल १ श्रवण में युद्धान्त तथा माघ शुक्ल ८ में भीष्मोत्क्रमण मान्य है। 'मासमात्रं वहिः पुरात्' (शान्ति० १. २) का कूटभेदी प्रक्रिया से यह अर्थ परिलक्षित होता है कि युद्धकाल में दैनिक और तत्पश्चात् सौप्तिक संहार से प्राप्त शौच सम्पादन में पाण्डवों के कई दिन व्यतीत हुए। पुर प्रवेश से पूर्व और युद्धारम्भ के अनन्तर शौच सम्पादन में पाण्डवों के कुल ३० दिन व्यतीत हुए। युद्ध काल में २१ और अवशिष्ट ३०—२१=९ दिन अर्थात् मार्गशीर्ष शुक्ल ११ से पौष शुक्ल १० तक पाण्डव शौच सम्पादन में व्यतीत किए। अन्तिम नो दिन युद्धोपरान्त वे नदी तटपर बने रहे। 'द्वादशाहेन भूमिपः' के अनुसार क्षत्रियों की शुद्धि बारहवें दिन होनी चाहिये। इस दृष्टि से शेष ९+१=१०, १२—१०=२ दिनों में पाण्डव हस्तिनापुर पहुंचकर

अभिमन्यु आदि के श्राद्धादि में संलग्न रहे। हस्तिनापुर में पहुँचने पर अभिमन्यु आदि के श्राद्ध का वर्णन महाभारत में है (शान्तिपर्व ४२।१)। पुनः पौष शुक्ल १४ तक यथायोग्य महलों में पाण्डवों ने निवास किया। पौष पूर्णिमा को वे भीष्म से उपदेश की प्रार्थना करने श्रीकृष्ण के नेतृत्व में गये। माघ कृष्ण १ से ५ तक उन्होंने भीष्माचार्य से उपदेश सुना। सनत्कुमार-संहिता में पाँच दिनों का वर्णन है। महाभारत के अनुसार भी ५०+१=५१, ५६—५१=५ दिन प्राप्त होते हैं।

'पञ्चाशन्नगरोत्तमे' के अनुसार पाण्डवों ने हस्तिनापुर में पचास दिन (रात्रि) बिताये। लेकिन माघ में भीष्म जी के देहत्याग की अवधि को देखते हुए पचास दिनों में संकोच करना अत्यावश्यक है। 'पक्षो वै मासः' इति द्वौ मासौ वा वसेत्। (संन्यासोपनिषत् प्रथमोऽध्यायः) इस श्रुति के अनुसार पक्ष को मास मानकर अर्थात् दिन-रात्रि के हिसाब से पचास दिन को पच्चीस दिन मानकर विचार करना चाहिये। इस दृष्टि से पौष शुक्ल १३ से अर्थात् राज्याभिषेक के पश्चात् यथा योग्य महलों में निवास करते हुए पाण्डवों के माघ शुक्ल ७ तक कुल २५ दिन हो गये। माघशुक्लाष्टमी को वे भीष्म पितामह की सेवा में पुनः समुपस्थित हुए और भीष्म जी ने देहत्याग किया।

वस्तुतः—

- मार्गशीर्ष शुक्ल ११ अश्विनी युद्धारम्भ।
- पौष कृष्ण ५ मघा भीष्म पतन।
- पौष कृष्ण ११ रात्रियुद्ध।
- पौष शुक्ल १ श्रवण युद्धान्त।
- पौष शुक्ल ११ हस्तिनापुर प्रवेश।
- पौष शुक्ल पूर्णिमा भीष्माचार्य की सेवा में उपदेश श्रवण की भावना से प्रस्थान।
- माघ कृष्ण १ से ५ तक उपदेश।
- माघ कृष्ण ६ से माघ शुक्ल ७ तक
  कुल १७ दिनों तक उपदेश के बाद हस्तिनापुर में निवास।

- माघ शुक्लाष्टमी भीष्मोत्क्रमण।
- पौष कृष्ण ५ से माघ शुक्ल ८ तक भीष्म जी के शरशय्या पर कुल ४९ दिन व्यतीत हुए।
- पौष शुक्ल पूर्णिमा से माघ शुक्ल ८ तक २४ दिन भीष्माचार्य के शेष।
- पौष शुक्ल पूर्णिमा के बाद और माघ शुक्ल ८ के पूर्व माघ कृष्ण १ से माघशुक्ल ७ तक भीष्माचार्य के कुल २२ दिन।

इस तरह,

- 'मासमात्रं बहिः पुरात्'

  ३०—९=२१ दिनों का मासमात्र में संकोच आवश्यक।
- 'पञ्चाशतं षट् च कुरुप्रवीर'

  ५६—२२=३४ दिन का ५६ दिनों से संकोच आवश्यक।

  'पञ्चाशन्नगरोत्तमे'

  ५०—१७=३३ दिन का ५० में से संकोच आवश्यक।
- 'अष्टपञ्चाशतं रात्र्यः'

  ५८—४९=९ दिनों का ५८ में से संकोच अपेक्षित।

श्रीबलभद्र की तीर्थयात्रा के ४२ दिनों की पूर्ति इस गणना में इस प्रकार है। पुष्य से श्रवणोत्तर श्रवण तक कुल ४२ नक्षत्र होते हैं। मार्गशीर्ष कृष्ण पंचमी से पौष शुक्ल १ तक कुल ४२ तिथियाँ होती हैं। मार्गशीर्ष कृष्ण ५ पुष्य में बलराम-निर्याण के पश्चात् १ तिथि का क्षय मानकर कुल ४१ तिथियां रह जाती हैं। पुनः मार्गशीर्ष शुक्ल ११ अश्विनी युद्धारम्भ से पूर्व १ तिथि बढ़ जाने पर ४२ तिथियाँ हो जाती हैं। युद्धकाल में १ नक्षत्र के क्षय की पूर्ति बलभद्र यात्रा के पश्चात् और युद्धारम्भ के पूर्व एक नक्षत्र की वृद्धि मानकर हो सकती है। अथवा द्रोण, कर्ण, शल्य के अभिषेक के उपलक्ष्य में ४ अवकाश मानकर नक्षत्र क्षय और वृद्धि मानने की आवश्यकता नहीं रह सकती है।

इसप्रकार यथा संभव सभी वचनोंको उद्धृत कर उसकी अविरुद्ध संगति साधने का भरसक प्रयास किया गया है। सम्बन्धित किसी भी वचन की उपेक्षा नहीं की गयी है। परस्पर एक-दूसरे से विरुद्ध परिलक्षित विविध वचनों में किसी एक की प्रधानता मानकर और बहुतों की उपेक्षा कर किये गये मत निर्धारण मे इसकी भिन्नता भी स्वाभाविक है। गीताजयन्ती और भीष्मोत्क्रमण की प्रसिद्ध तिथियों का समादर भी इस गणना में सन्निहित है। समादर के साथ ही दोनों तिथियों की प्रामाणिकता भी महाभारत के अनुसार निर्दिष्ट है।

कदाचित् प्रसंग का संकोच कर पुष्य में कुरुक्षेत्र के लिये उपप्लव्य और हस्तिनापुर से प्रस्थान करने वाली सेनाओं के कुरुक्षेत्र पहुँचने का नक्षत्र मघा है, ऐसा मानें या मघा के दलों में भरणी नक्षत्र भी है, उसी में युद्धारम्भ भी माने तो भी मार्गशीर्ष शुक्ल ११ ही गीता जयन्ती की तिथि सिद्ध होती है। इसका कारण यह है कि माघ शुक्लाष्टमी भीष्मोत्क्रमण की प्रामाणिक तिथि है, जिसका पोषण महाभारत से भी होता है।

अब 'अष्टपञ्चाशतं रात्र्यः शयानस्याद्य मे गताः' (अनुशासन १६७. २७) इस भीष्मवचन के अनुसार ५८ रात्रियाँ उनके शरशय्या पर व्यतीत हुईं, ऐसा सिद्ध होता है। माघ शुक्लाष्टमी से ५७ दिन पूर्व भीष्मपात मानें तो मार्गशीर्ष शुक्ल ११ को १० वें दिन का युद्ध सिद्ध होगा। ऐसी स्थिति में युद्धारम्भ मार्गशीर्ष शुक्ल १ में मान्य होगा। परन्तु ऐसा मानने पर पौष शुक्ल १ तक इकत्तीस दिनों में कुल १८ युद्ध मानना मूल के ही सर्वथा विरुद्ध मान्य होगा। अतः 'अष्टपञ्चाशतं' का अर्थ प्रसंगानुसार 'युद्धारम्भ से अब तक ५८ दिन इस शरशय्या पर समासीन हुए हो गये, अर्थात् ५८—९ =४९ दिन वस्तुतः हुए हैं' ऐसा मान्य होगा। इस तरह मार्गशीर्ष शुक्ल ११ से पौष शुक्ल १ तक ५+१५+१=२१ दिनों में कुल १८ युद्ध मानना ही उपयुक्त है। ऐसी स्थिति में २१—१८=३ दिन अवकाश के मान्य होंगे। अब क्योंकि युद्ध के दसवें दिन सायं भीष्म शरशय्यापर समासीन हुए। अर्जुन ने बाणों का उपधान प्रदान किया, रात्रि बीतने पर बाण-गङ्गा प्रकट कर उससे उन्हें तृप्त किया। पुनः दुर्योधन ने कर्ण को बुलाया। शोकाकुल कर्ण भीष्म से मिलकर दुर्योधन के पास गया। दुर्योधन ने कर्ण के सुझाव से द्रोणाचार्य को सेनापति पद पर अभिषिक्त किया। इन सब कृत्यों

में एक दिन का अवकाश सह्य हो सकता है। इधर वेदव्यास ने यद्यपि युद्धारम्भ से पूर्व रात्रि में धृतराष्ट्र को 'चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासीं त्रयोदशीम्' (भीष्मपर्व ३ ३२), 'इमां तु नाभिजानेऽहममावास्यां त्रयोदशीम्' (भीष्म ३. २) बताया, इससे युद्धारम्भ से पूर्व त्रयोदश दिनों के कृष्णपक्ष का समर्थन प्राप्त होता है, परन्तु भविष्यद्गति से यह वर्णन मानने पर युद्धकाल में कृष्णपक्ष १३ दिनों का मान्य हो सकता है। ऐसी स्थिति में पौष कृष्ण को १३ दिनों का मानने पर शेष दो अवकाश की कल्पना निरस्त हो जाती है। रही बात 'पुष्य' से 'श्रवण' तक (श्रवणोत्तर श्रवण) अर्थात् मार्गशीर्ष कृष्ण ५ से पौष शुक्ल १ तक श्रीबलभद्र की तीर्थयात्रा के ४२ दिनों की बात ! तो यात्रा से युद्धान्त तक दो तिथियों की वृद्धि मानकर उक्त दिनों की संपूर्ति हो सकती है।

(५) निष्कर्ष—

१. श्रीनीलकण्ठ के अनुसार दैनिक अवहार युक्त किन्तु विराम रहित कुल १८ दिनों तक युद्ध हुआ। युद्धारम्भ मार्गशीर्ष शुक्ल १४ मृगशिरा में और युद्धान्त पौष शुक्ल १ श्रवण में हुआ।

२. भीष्म-निधन माघ शुक्ल ८ में हुआ। उससे ५७ दिन पूर्व मार्गशीर्ष शुक्ल ११ अश्विनी या भरणी में युद्धारम्भ और पौष शुक्ल १ श्रवण में युद्धान्त हुआ।

१७. युद्धारम्भ, युद्धान्त और भीष्म-निर्वाण सम्बन्धी विविध मत निरूपण.

१. भारत-सावित्री

मत–निरूपण

'भारत-सावित्री' में स्थित कालगणना सम्बन्धी साक्षिक श्लोक उद्धृत किए जाते हैं—

"हेमन्ते प्रथमे मासे शुक्लपक्षे त्रयोदशी।
प्रवृत्तं भारतं युद्धं नक्षत्रं यमदैवतम्॥

फाल्गुन्यां निहतो भीष्मः कृष्णपक्षे च सप्तमी ।
अष्टम्यां चैव सौभद्रो नवम्यां च जयद्रथः ।।
दशम्यां भगदत्तस्तु महायुद्धे निपातितः ।
एकादश्यामर्धरात्रौ हतो वीरो घटोत्कचः ।।
ततः प्रभातसमये विराटद्रुपदौ हतौ ।
द्वादश्यां चैव मध्याह्ने द्रोणाचार्यो रणे हतः ।।
त्रयोदश्यां तु मध्याह्ने वृषसेनो निपातितः ।
चतुर्दश्यां तु पूर्वाह्णे रणे दुःशासनो हतः ।।
तस्मिन्नेव महायुद्धे वर्तमाने चतुर्दशी ।
धनञ्जयेन मध्याह्ने कर्णो वैकर्तनो हतः ।।"

(भारत-सावित्री ६४-६९)

"अमायां धर्मपुत्रेण शल्यो मद्राधिपोहतः ।
उलूकः शकुनिश्चैव यमाभ्यां विनिपातितौ ।।
अमायामर्धरात्रे तु राजा दुर्योधनो हतः ।
भीमसेनस्य गदया ताडितो विनिपातितः ।।
अमायामेव यामिन्यां द्रौणिना निहतस्तदा ।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपद्याः पञ्च चात्मजाः ।।"

(भारत-सावित्री ७४–७७)

"दिनानि दश भीष्मेण भारद्वाजेन पञ्च च ।
दिनद्वये तु कर्णेन शल्ये चार्द्धदिनं तथा ।।
दिनार्द्धं तु गदायुद्धमेतद्भारतमुच्यते ।
एवमष्टादशं हन्त्रि अक्षौहिण्यो दिनक्रमात् ।।" ७९, ८०।।

भावार्थ—

"हेमन्त ऋतु के प्रथम मास में शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी में यमदैवत सम्बन्धी (भरणी) नक्षत्र में भारत युद्ध प्रारम्भ हुआ । भीष्म जी फाल्गुनी

में अर्जुन द्वारा कृष्ण पक्ष की सप्तमी में गिरा दिये गये। अष्टमी में सुभद्रा कुमार अभिमन्यु एवं नवमी में जयद्रथ मारे गये ॥ महायुद्ध में दशमी में भगदत्त और एकादशी में अर्धरात्रि में वीर घटोत्कच मारे गये ॥ उसके बाद प्रातः विराट् और द्रुपद मारे गये ॥ त्रयोदशी के मध्याह्न में वृषसेन मारा गया। उस चतुर्दशी के ही महायुद्ध में अर्जुन के द्वारा वैकर्तन कर्ण मारा गया ॥ अमावास्या में युधिष्ठिर के हाथों मद्राधिप शल्य मारे गये। सहदेव ने उलूक और शकुनिको मार गिराया। (नकुल और सहदेवने उलूक और शकुनि को मार डाला) ॥ अमावास्या की आधीरात में दुर्योधन भीमसेन की गदा के आघात से मार गिराया गया ॥ अमावास्या की रात्रि में ही द्रोणपुत्र-अश्वत्थामा के द्वारा धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और द्रौपदी के पाँचों पुत्र मारे गये ॥"

मत-विमर्श

'शरदन्ते हिमागमे' (उद्योगपर्व ८३. ७) इस महाभारत-वचन के अनुसार श्रीकृष्णने शरत्-ऋतु के अन्त में और हेमन्तके प्रारम्भ में उपप्लव्य नगर से हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान किया। **'कौमुदे मासि रेवत्यां'** (उद्योग० ८३. ७) के अनुसार कौमुदमास और रेवती नक्षत्र को देखते हुए तथा **'सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति······ तामाहुः शक्रदेवताम्'** (उद्योग० १४२. १८) इस वचन के अनुसार रेवती के उन्नीसवें स्थान में स्थित ऐन्द्र नक्षत्र ज्येष्ठा में अमावास्या का योग देखते हुए **'कौमदे मासि रेवत्यां शरदन्ते हिमागमे'** में प्रयुक्त **'शरदन्त हिमागम'** का अर्थ मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी सिद्ध है। रेवती में मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी मानने पर रोहिणी में कार्तिक की पूर्णिमा मान्य है। कदाचित् शरदन्त हिमागम रेवती में द्वादशी मानें तो कार्तिकी कृत्तिका नक्षत्र में मान्य है। मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष में दो तिथियों का पूर्वरीति से क्षय सिद्ध होने के कारण कार्तिक शुक्ल एकादशी से प्रारम्भ होने वाली हेमन्त ऋतु का प्रथम मास शुक्ल त्रयोदशी को पूर्ण होता है। अतः **'हेमन्ते प्रथमे मासे शुक्लपक्षे त्रयोदशी'** का अभिप्राय 'मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशी' सिद्ध होता है जो कि महाभारत के उपयुक्त है।

'प्रवृत्तं भारतं युद्धं नक्षत्रं यमदैवतम्' यह 'सावित्री-वचन' विचारणीय है। इसके अनुसार शुक्ल त्रयोदशी से अग्रिम अमावास्या तक युद्धकाल निश्चित होता है। ऐसी स्थिति में ३+१५=१८ दिनों तक महाभारत युद्ध

हुआ, यह मान्य है। एवमष्टादशं हन्त्रि अक्षौहिण्यो दिनक्रमात्' (८०) 'अठारह अक्षौहिणी सेना और अठारह दिनों तक युद्ध' यह प्रशस्ति भारत-सावित्री की महाभारत के सर्वथा अनुरूप है। यम दैवत भरणी नक्षत्र ही है। भारत-सावित्री को भी यही मान्य है, क्योंकि उसके अनुसार भीष्म ने दश दिनों तक युद्ध किया। अर्जुन ने भीष्म को फाल्गुनी में मारा **'फाल्गुन्यां निहतो भीष्मः कृष्णपक्षे च सप्तमी'** शुक्ल त्रयोदशी में कृष्ण सप्तमी और भरणीसे पूर्वा फाल्गुनी ठीक दशवें स्थान पर है। अब यदि भरणीमें युद्धारम्भ माना जाय तो मूल नक्षत्र में युद्धान्त होना चाहिये न कि श्रवण में; क्योंकि भरणी से 'मूल' ठीक अठारहवें स्थान पर है, जब कि श्रवण इक्कीसवें स्थान पर। साथ ही 'मूल' में अमावास्या उपयुक्त है न कि श्रवणमें। श्रवण नक्षत्र में पौष शुक्ल द्वितीया या प्रतिपदा ही सम्भव है न कि अमावास्या। इस तरह नक्षत्र गणना की दृष्टि से महाभारत युद्ध का अन्त श्रवण में होना चाहिये न कि मूल में।

युद्धान्त के सम्बन्ध में ही नहीं; अभिमन्यु-वध, जयद्रथ-वध, भगदत्त वध, वृषसेन वध सम्बन्धी भारत-सावित्री के दिन भी मूल (महाभारत) के विरुद्ध हैं। महाभारत के अनुसार अभिमन्यु वध तेरहवें दिन के युद्ध में होना चाहिये न कि ग्यारहवें दिन के युद्ध में। इसी तरह जयद्रथ वध चौदहवें दिन होना चाहिये न कि बारहवें दिन, भगदत्त वध बारहवें दिन होना चाहिये न कि तेरहवें दिन, वृषसेन वध सत्रहवें दिन होना चाहिये न कि सोलहवें दिन, दुर्योधन वध सन्ध्या में होना चाहिये न कि अर्धरात्रि में, सौप्तिक संहार अधरात्रि तक सम्पन्न होना चाहिये न कि अर्ध रात्रि के बाद प्रारम्भ।

हां दशवें दिन के युद्ध में भीष्म का शरशय्या लाभ करना मूल के अनुरूप है। शिखण्डी को आगे करके अर्जुन ने ही भीष्म को मारा। चौदहवें दिन रात्रि युद्ध में घटोत्कच मारा गया। पन्द्रहवें दिन के युद्ध में विराट् एवं द्रुपद आचार्य द्रोण के हाथों मारे गये। द्रोणाचार्य भी युद्ध के पन्द्रहवें दिन ही मारे गये। सत्रहवें दिन भीम द्वारा दुःशासन का वध हुआ और अर्जुन ने कर्ण को मारा। अठारहवें दिन युधिष्ठिर ने शल्य को मारा (शल्य० २८. ६२)। यह सब घटना मूल (महाभारत) के अनुरूप है।

२. श्रीनीलकण्ठाचार्य

मत-निरूपण

श्री महाभारत के प्रसिद्ध टीकाकार श्रीनीलकण्ठाचार्य के मत में महाभारत युद्ध मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्दशी मृगशिरा में आरम्भ होता है और पौष शुक्ल प्रतिपदा श्रवण में अन्त होता है।

श्रीबलभद्र वचन को प्रमाण मानकर 'श्रवण' में युद्धान्त माना है। इसके अनुसार श्रीकृष्ण कार्तिक शुक्ल द्वादशी रेवती में उपप्लव्य नगर से हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान करते हैं। मार्गशीर्ष कृष्ण ५ पुष्य में श्रीबलराम जी उनसे मिलकर मैत्र (अनुराधा) नक्षत्र में तीर्थयात्रा के उद्देश्य से प्रस्थान करते हैं। उसी दिन कौरव-पाण्डव सेना कुरुक्षेत्र के लिए प्रस्थान करती हैं। मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष तेरह दिनों का होता है। ऐन्द्र नक्षत्र ज्येष्ठा मान्य है। मार्गशीर्ष की अमावास्या ज्येष्ठा में संग्राम में जय साधक धारावंधादि कृत्य का संपादन होता है। मार्गशीर्ष शुक्ल १४ मृगशिरा में युद्धारम्भ होता है। युद्धारम्भ का आधार इस मत में 'भारत-सावित्री' का निम्नलिखित श्लोक है।

> "हेमन्ते प्रथमे मासि शुक्लपक्षे त्रयोदशी।
> प्रवृत्तं भारतं युद्धं नक्षत्रे यमदैवते ॥"

परन्तु श्रवण से १७ नक्षत्र पूर्व सोम दैवत मृगशिरा है न कि यम दैवत भरणी। साथ ही पौष शुक्ल प्रतिपदा से पूर्व श्रवण नक्षत्र का होना भी असम्भव है। मृगशिरा या आर्द्रा में मार्गशीर्ष की पूर्णिमा विहित है। अतः भारत-सावित्री का शोधन श्रवणान्त युद्ध और तदनुगुण तिथि की दृष्टि से उपयुक्त है। ऐसी स्थिति में श्रवण से मृगशिरा सत्रहवें स्थान पूर्व है। अतः यम का अर्थ युग्म करके मृगशिरा को ही यम दैवत नक्षत्र मानकर युद्धारम्भ माना जा सकता है। पर ऐसा मानने से मृगशिरा का पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध राशिगत दो विभागकर पूर्वार्द्ध में वृष और उत्तरार्द्ध में मिथुन का चन्द्र माना जाय, वृष के शुक्र और मिथुन के बुध अधिपति होने के कारण आसुर शक्ति की पराजय और दैवशक्ति का अभ्युदय सूचक मृगशिरा में ही युद्धारम्भ माना जाय तो नक्षत्र के अनुगुण चतुर्दशी तिथि भी मान्य होगी। [यद्यपि राशिगत पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध भेद तो पुनर्वसु आदि नक्षत्रों का भी हो सकता है तथापि मृगशिरा इसलिये यहाँ मान्य है कि उसकी युद्धारम्भ के उपयुक्त प्रत्यासत्ति (सामीप्य) सिद्ध है।]

इस तरह मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्दशी मृगशिरा ही युद्धारम्भ की उपयुक्त तिथि है।

'त्रिभागमात्रशेषायां रात्र्यां युद्धमवर्तत' (द्रोणपर्व १८६. १), 'ततो मुहूर्ताद् भुवनंज्योतिर्भूतमिवाभवत्' (द्रोण० १५४. ५२) इन वचनों के अनुसार चौदहवें दिन रात्रियुद्ध हुआ। त्रिभागशेष रहने पर युद्ध बन्द किया गया और चन्द्रोदय होने पर पुनः युद्ध हुआ। यहाँ त्रिभागशेष का अर्थ त्रिमुहूर्त्त शेष मानना चाहिये। चतुर्दशी में युद्धारम्भ होने पर कृष्ण द्वादशी में रात्रियुद्ध सिद्ध होता है। उत्तर रात्रि में चन्द्रोदय का वर्णन चरितार्थ होता है।

मकर संक्रान्ति गत पौष के लिए भी माघ शब्द का प्रयोग सम्भव मानकर तथा 'असिताष्टमी' ऐसा च्छेद कर 'अर्जुनेनहतो भीष्मोमाघमासेऽसिताष्टमी' ऐसा भीष्म वध के सम्बन्ध में भारत-सावित्री है। 'त्रयोदश्यां तु मध्याह्ने भारद्वाजो निपातितः' इस वचन से त्रयोदशी में द्रोणाचार्य का निधन मान्य है। अष्टमी में भीष्म पतन और त्रयोदशी में द्रोण निधन को देखते हुए भी चतुर्दशी में युद्धारम्भ मान्य है।

'मघाविषयगःसोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत' (भीष्म० १७।२), 'मघा' पितृदैवतनक्षत्र है। 'विषयः' का अर्थ 'देशः' और 'विषयगः' का अर्थ 'पितृलोकगतः' है, क्योंकि चन्द्र के अधीन ही स्वर्गियोंका दिव्य देह लाभ है, अतः युद्ध में मरे हुए को दिव्य देह प्रदान करने की भावना से चन्द्र पितृलोकमें सन्निहित थे, इस तात्पर्य को व्यक्त करने वाला यह श्लोक है। यह वलभद्र वाक्य के विरुद्ध होने के कारण युद्धारम्भ का द्योतक नहीं है।

"चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्यवै।
पुष्येण सम्प्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः॥
शिष्ययोर्वै गदायुद्धं द्रष्टुकामोऽस्मि माधव॥"
(शल्यपर्व ३४. ६-६½)

मार्गशीर्ष कृष्ण ५ पुष्य से पौष शुक्ल १ श्रवण तक ४२ दिन और नक्षत्र की पूर्ति होने के कारण उक्त वलदेव-वचन चरितार्थ है।

नैल०—'मघाविषयगः सोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत' इति मघा पित्र्यं-

नक्षत्रं तस्य विषयोदेशः पितृलोकस्तद्गतः सोमः कुरुपाण्डवयुद्धारम्भदिन-मुक्तं भारत-सावित्र्याम्—

हेमन्ते प्रथमे मासि शुक्लपक्षे त्रयोदशीम् ।
प्रवृत्तं भारतं युद्धं नक्षत्रे यमदैवते ॥

प्रथमे मार्गशीर्षे अत्रत्रयोदशी शब्देनतद्युक्ता चतुर्दश्येवग्राह्या। 'अर्जुनेन हतो भीष्मो माघमासेऽसिताष्टमी' इति 'त्रयोदश्यां तु मध्याह्ने भारद्वाजो निपातितः' इति तत्रैव युद्धस्य दशमे पञ्चदशे चाह्नि हतयो-र्भीष्मद्रोणयोरष्टमी त्रयोदशी संयोग दर्शनात् ।

अत्र पौषेऽपि माघशब्दो मकरायनाभिप्रायेण तदानीं तत्सम्भवाद् असिताष्टमीतिच्छेदः। अन्यथा सप्तमी-द्वादश्योरेवतयोर्हननं प्राप्नोति। यत्तु अमावास्यायां दुर्योधनहननं तत्रैवोक्तम्, तत्राप्यमावास्या शब्दइष्टि-दिने प्रतिपद्येवप्रयुक्तो वेदितव्यः। 'यमदैवते' इति भरणीन ग्राह्या, किंतु युग्मदैवत मृगशीर्षमेव ग्राह्यम् । तस्य हि पूर्वदलं शुक्रदैवत्यत्वादासुरमुत्त-रार्धंबुधदैवत्यत्वाद् दैवं तेन तत्रासुराणामुपरमो देवानामभ्युदयश्च सिध्यति। किं च—

'चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै ।
पुष्येण सम्प्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः ॥''

इति युद्धारम्भादष्टादशेऽह्नि तीर्थयात्रात आगतस्य बलदेवस्य वच-नात् श्रवणे युद्धसमाप्तिर्दृश्यते। ततः प्राचीनेऽष्टादशाक्षें मृगशीर्ष एव युद्धारम्भः संभवति, न त्वेकविंशे। भरण्यामष्टादशदिनमध्ये नक्षत्र-त्रय त्रयस्य कल्पयितुमयुक्तत्वात् । कार्तिकीकृत्तिका योगानुपातेन चतुर्दश्यां मृग-स्यैव सम्भावनाच्च । एतेन युद्धारम्भं प्रकृत्य 'मघा विषयगः सोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत' इति भीष्मपर्वणि सञ्जयवाक्यान्मघायां युद्धारम्भ इत्यपि निर-स्तम्, बलदेववाक्यविरुद्धत्वात् । शब्दार्थस्तु मघापदेन तत्सहचराः पितरो लक्ष्यन्ते, तेन युद्धे मृतानामुत्तमदेहप्रदानार्थंचन्द्रस्तदा पितृलोके सन्निहितोऽ-भूदिति स्वर्गिणां दिव्यदेहलाभश्चन्द्राधीन इति शास्त्र प्रसिद्धेः ।

(भीष्मपर्व १७. २)

ननु श्रवणेऽत्र युद्ध समाप्तिर्दृश्यते तदनुपातेन युद्धारम्भो मृगशीर्षे भवितुं युज्यते, अष्टदशाहानि युद्धमभूदिति वचनात् । एवं च युद्धारम्भं

प्रकृत्य भीष्मपर्वणि संजय वाक्यम्—'मघा विषयगःसोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत' इति मघायां युद्धारम्भप्रदर्शकं विरुध्यते। तथात्वे रेवत्यां युद्धसमाप्त्यापत्तेरिव्युपक्रमोपसंहारयोर्विरोधो दुःसमाधेय इति चेत्, सत्यम्। उपसंहारस्य निर्णीतार्थकत्वात् तदनुरोधेनोपक्रमस्य नेयत्वान्मघाविषयग इत्यस्यायमर्थः—अत्र मघापदेन तत्सहचराः पितरो लक्ष्यन्ते 'मघानक्षत्रं पितरो देवता' इति श्रुतेरिति मघायां पितृसम्बन्धित्वावधारणात्। तेन युद्धे मतानामुत्तमदेह प्रदानार्थं चन्द्रस्तदापितृलोके सन्निहितोऽभूदिति। स्वर्गिणां दिव्यदेह लाभश्चन्द्राधीन इति शास्त्रे प्रसिद्धम्। युद्धारम्भस्तु मृगशीर्षे इति भीष्मपर्वणि निपुणतरमुपपादित तन्न विस्मर्तव्यम्। (शल्य० ३३. ५)

"ततो मन्युपरीतात्मा जगाम यदुनन्दनः।
तीर्थयात्रां हलधरः सरस्वत्यां महायशाः॥
मैत्र नक्षत्रयोगेस्म सहितः सर्वयादवैः।"
(शल्य० ३५. १३, १३½)

मैत्र नक्षत्रयोगे अनुराधायाम् पुष्येण हि पाण्डवेभ्यः प्रयाणमनुराधातस्तीर्थयात्रार्थमिति विवेकः॥

तथा द्वादश्यां रात्रियुद्धे चन्द्रोदयकाले त्रिभागमात्रशेषायां रात्रौ युद्धमवर्तत' इत्युक्तं तत्र त्रिभागेत्यस्य त्रिमुहूर्तशेषायामित्यर्थः।

तत्रायं निष्कर्षः—कार्तिक शुक्लद्वादश्यां रेवत्यां कृष्णप्रयाणम्, ततो मार्गशीर्ष कृष्णपञ्चम्यां पुष्ये सेनयोर्नियणिम्, ततः पञ्चम्या उपरि षष्ठीमारभ्य सप्त दिनानि गणयित्वातदुपर्यष्टमेऽह्नि अमावास्या भविष्यतीत्यनेन त्रयोदश दिनात्मकोऽयं कृष्णपक्षो महोत्पात जनक इति सूचितम्। क्षीणयोश्च तिथ्योः पक्षान्तरे पुनर्वृद्ध्या संख्यापूरणं भवतीति मार्गशीर्ष कृष्णपञ्चमीमारम्य पौष शुक्ल प्रतिपद् द्विचत्वारिंशी तिथिर्भवतीति बलदेव वाक्योक्ता दिन संख्या नक्षत्र संख्या चानुगृहीता भवति। यत्तु—

"सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्याभविष्यति।
संग्रामं योजयेत् तत्र तां ह्याहुः शक्र दैवताम्॥"[७]

---

७. पूर्वोक्त प्रकारेण योग शब्दस्य बाहुल्येनोद्योगार्थे प्रयुक्तत्वादत्रापि योजयेदिति पदस्योद्योगं कुर्यात्कारयेद्वेत्येवार्थकत्वात्पर्वणश्चास्य तथा सति 'उद्योग' पर्वेतिनाम सार्थक्याच्च भीष्मपर्वत एव युद्धपर्व प्रारम्भो न तूद्योग पर्वत इत्यपि ध्येयम्।

"प्रयाध्वं वै कुरुक्षेत्रं पुण्योऽद्येति पुनः पुनः" इति दुर्योधन वाक्यम् । तत्र संग्राममित्यनेन संग्रामे जयसाधनं धाराबन्धादिकं तस्यां योजयेदित्युक्तम् तत्तु शुक्रदैवतामित्यनेन तस्यां ज्येष्ठानक्षत्रयोग उच्यते ; स च तिथि द्वय क्षयात् तत्रासम्भवन्नपि तत्र तिथिवदेव नक्षत्रक्षयाद्वा तिथि नक्षत्रयोरा-द्यन्तयोगाद्वाज्ञेयमिति सर्वं समञ्जसम् । महाग्रहा राहुकेत्वोरुपग्रहत्वात् सप्तैव (भीष्म० १७. २) ।

इस प्रकार भीष्म-स्वर्गारोहण सम्बन्धी वचनों की विविध रीति से व्याख्या श्रीनीलकण्ठ ने की है, अतः उनके मत में एक दृष्टि से माघशुक्ला-ष्टमी, दूसरी दृष्टि से माघ शुक्ला पञ्चमी तो तीसरी-दृष्टि से फाल्गुन कृष्ण पञ्चमी (या षष्ठी) भीष्म-निधन की तिथि सिद्ध होती है—

(१) 'माघोऽयं समनुप्राप्तो मासः सौम्यो युधिष्ठिर ।
त्रिभागशेषः पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति ॥"
(अनुशा० १६७. २८)

माघ के चार भाग करें तो साढ़े सात-सात के (७½) प्रत्येक भाग होंगे । अष्टमी के दिन पक्ष का आधा भाग शेष रहता है । इस तरह भीष्म जी के देहत्याग की तिथि माघ शुक्लाष्टमी सिद्ध होती है ।

(२) भीष्मजी पौष कृष्ण अष्टमी में शरशय्यापर समासीन हुए । 'अर्जुनेन हतो भीष्मो माघमासे सिताष्टमी' इस सावित्री-वचन के अनुसार भीष्मजी माघ शुक्लाष्टमी में अर्जुन के द्वारा मारे गये । लेकिन 'माघ' शब्द मकरायनाभिप्राय से प्रयुक्त होने से, जो कि उस समय सम्भव था, वस्तुतः पौष ही समझने योग्य है । माघमासे सिताष्टमी में' असिताष्टमी' (ऽष्टमी) ऐसा च्छेद करना चाहिये । इस तरह पौष कृष्ण ८ में भीष्म पतन मान्य है । 'अष्ट पञ्चाशतं रात्र्यः शयानस्याद्य मे गताः' (महा० अनुशा० १६७।२७) यह वचन माघोऽयं समनुप्राप्तः, त्रिभागमात्रः पक्षोऽय" इस वाक्य शेष के योग से विलोम शोधन प्रक्रिया के अनुसार ५८ के स्थान पर ४२ रात्रि ही समझने योग्य हैं । पौष कृष्णाष्टमी से माघ शुक्ला पञ्चमी तक १ तिथि क्षय मानकर ४२ दिनों की सिद्धि होती है । 'विलोम शोधनाद् अष्टपञ्चाशद्वनं शतं रात्र्यो द्वाचत्वारिंशद् रात्रयोव्यतीता इत्यर्थः । इकाई और दहाई के स्थान पर क्रमशः ८ और ५ अर्थात् ५८ रात्रियाँ कम १००

रात्रियाँ अर्थात् १००—५८=४२ रात्रियाँ होती हैं। 'त्रिभागशेषः पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति' का अर्थ पक्षशेष न करके देहत्यागादि रूप कृत्यशेष करना चाहिये। इस तरह इस प्रक्रिया के अनुसार भीष्म जी के दिवंगत होने की तिथि माघ शुक्ला पञ्चमी सिद्ध होती है। (३) 'पञ्चाशतं षट् च कुरुप्रवीर शेषं दिनानां तव जीवितस्य' ५×६=३० दिन जीवन के अवशिष्ट रहें हैं जो कि सौ दिन के तुल्य होने के कारण 'पञ्चाशतंषट्' कहे गये हैं। भीष्मजी अपने जीवन के कुल ५८ दिन शेष बताएगें 'अष्टपञ्चाशतं रात्र्यः शयानस्याद्य मे गताः', उनमें अब कुल ३० दिन वच चुके हैं। ५८—३०=२८ व्यतीत हो चुके हैं। शरशय्यापर आसीन हो जाने के बाद १८—१०=८ दिन युद्ध के शेष थे। पुनः दुर्योधन के मरण से प्राप्त अशौच की शुद्धि युयुत्सुको १६ वें दिन हुई। पाण्डव भी उसी के साथ नदी तट पर बने रहे। इस तरह १६+८=२४ दिन व्यतीत हुए। पच्चीसवाँ दिन श्राद्धादि में गया छब्बीसवें दिन पुर में प्रवेश किया। सत्ताइसवें दिन धर्मराज युधिष्ठिर का अभिषेक हुआ। अट्ठाइसवाँ दिन यथा योग्य दान-मान सान्त्वना में व्यतीत हुआ। उन्तीसवें दिन भीष्मजी के पास पाण्डव आए। उस दिन से भीष्मजी के कुल तीस दिन अवशिष्ट रहे। इस तरह भीष्म पतन पौष कृष्ण अष्टमी में और भीष्म निधन फाल्गुन कृष्ण पञ्चमी में सिद्ध होता है।

• "तत्र ते सुमहात्मानो न्यवसन् पाण्डुमन्दनाः।
शौचं निर्वर्तयिष्यन्तो मासमात्रं बहिः पुरात् ॥"
(शान्तिपर्व १. १-२)

क्योंकि पाण्डवादि क्षत्रिय थे अतः "द्वादशाहेन भूमिपः" (मनु० ५. ८३) इस मनुवाक्यानुसार उन्हें बारह दिन का ही अशौच प्राप्त था न कि शूद्रवत् एक महीने का। उसमें भी 'उद्यतैराहवे शस्त्रैः...... ....सद्यः संतिष्ठते यज्ञः' (मनु० ५. ९८) इस मनु-वाक्य के अनुसार युद्ध में मारे गये केसपिण्ड तत्काल शुद्ध होते हैं; पाण्डवों को युद्ध के पश्चात् एक महीना शुद्धि सम्पादन के उद्देश्य से रुकना अनुपयुक्त था। ऐसी स्थिति में यही मानना चाहिये कि उन्हें छद्म युद्ध भी ८ शाप और प्रतिज्ञा पालनादि के

८. भीमसेन द्वारा गदायुद्ध की मर्यादा का उल्लंघन कर दुर्योधन को मारना, पाण्डवों द्वारा भूरिश्रवा, कर्ण, भीष्म, द्रोण के प्रति व्यवहार का उल्लेख दुर्योधन के द्वारा महाभारत शल्यपर्व ६४।११, १२ में हुआ है।

उद्देश्य से समय-समय पर करना पडा और कौरवों ने विना ही किसी कारण के छद्म युद्ध कर अभिमन्यु को मारा। अतः उससे प्राप्त अशुद्धि की शुद्धि के निमित्त युद्धोपरान्त पाण्डव मास मात्र पुर के बाहर ही नदी तट पर बने रहे। अथवा सौप्तिक-संहार में पशुवद् मारे गये स्वजनों के कारण प्राप्त अशौच के निवारण के लिए बारह दिनों तक पाण्डव युद्धकाल के पश्चात् नदी तट पर रुके रहे। युद्ध काल में दैनिक शुद्धि अठारह दिनों तक होती रही, युद्धोत्तर बारह दिन और लगे, कुल १८+१२=३० दिन शुद्धि सम्पादन में व्यतीत हुए।

नेल०—(१) सौम्यश्चान्द्रः। माघस्यचतुर्भागकरणे सार्द्ध सप्त त्रिभागत्वात् अष्टम्यर्द्धस्यानतीतत्वेन प्रथमभागस्य विद्यमानत्वात् त्रिभागशेषो भवितुमर्हतीत्यर्थः। तेनाद्याष्टमीत्यर्थः। (महा० अनु० १६७. २७, २८)

(२) तथा—'अष्ट पञ्चाशतं रात्र्यः शयानस्याद्य मे गताः' इति भीष्मवचनं च माघोऽयं समनुप्राप्तः, त्रिभागमात्रः पक्षोऽयमिति वाक्यशेषानुसारात्। अशतं शतहीनं यथास्यात् तथा अष्ट पञ्च अष्ट पञ्चाशत् रात्रयोव्यतीता इति व्याख्येयम्। विलोम शोधनात् अष्ट पञ्चाशदूनं शतं रात्रयो द्वाचत्वारिंशद् रात्रयो व्यतीता इत्यर्थः। तथा च पौष कृष्णाष्टमीतो माघ शुक्ल पञ्चम्यां तावती दिन संख्या पूर्यते, पक्षस्य च तृतीयो भागो गतो भवति, तत्राप्येक तिथि क्षयात्, पञ्चम्याद्विचत्वारिंशत्तमत्वं ज्ञेयम्। शेषो भवितुमर्हतीत्यत्र. कार्यशेषो देहत्यागादिरेव शेषः, न तु पक्ष शेष इति व्याख्या ज्ञेया। (महा० भीष्म० १७. २)

(३) 'पञ्चाशतं षट् च कुरुप्रवीर। शेषं दिनानां तव जीवितस्य' (शान्ति० ५१. १४)। पञ्चाशतं षट् चेति तव जीवितस्य सम्बन्धिनां दिनानां शेषां पञ्चषट् च पञ्चवारभावर्तिताः षड्ति रीत्या त्रिंशदिति ज्ञेयं तावदेव आशत शतावधि यद्दिनानां शतेन कर्तुं शक्यं तत्त्रि शतापि कर्तुं शक्यमित्यर्थः। 'अष्ट पञ्चाशतं रात्र्यः शयानस्याद्य मे गताः' (अनु० १३७.२७) इति भीष्मो वक्ष्यति। तत्र त्रिंशदतः परं शिष्टाः अष्टाविंशतिरितः पूर्वं व्यतीताः। तथा हि। भीष्मस्यशरतल्पशयनानन्तरं अष्टौ दिनानि युद्धं ततो दुर्योधनाशौचं युयुत्सोः षोडशदिनानि तेन सह पुरं प्रविशतां पाण्डवानामपितावन्ति दिनानि गतानि, पञ्चविंशे सर्वेषां श्राद्ध दानं, षड्विंशे पुरप्रवेशः सप्तविंशे राज्याभिषेकः, अष्टाविंशे प्रकृतिसान्त्वनं आम्युदयिकं दानं च,

ऊर्नत्रिंशे भीष्मं प्रत्यागमनम् । तद्दिनमारभ्यत्रिंशद्दिनानिशिष्टानीति ज्ञेयम् ।।

"तत्र ते सुमहात्मानो न्यवसन् पाण्डुनन्दनाः ।
शौचं निवर्तयिष्यन्तो मासमात्रं बहिः पुरात् ।।"
(शान्ति० १।२)

तत्र गङ्गातीरे पुराद्बहिर्मास मात्र मासस्य प्रयोजनं तु यत्क्वचित्-छद्मयुद्धकृतं तज्जन्यदोषनिर्हरणेन शुद्धिसम्पादनं तदेतदुक्तं शौचं निवर्तयिष्यन्त इति । नत्वत्र शावाशौचशुद्धिर्मासमात्रेणेति विवक्षितम् ।'दशाहाच्छुद्ध्यते विप्रो द्वादशाहेन भूपतिः । वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्धति ।।' इति मनुवाक्य विरोधात् । न चैते शूद्रा येन मासमाशौचं कुर्युः । किं च 'उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्म हतस्य च । सद्यः सन्तिष्ठते यज्ञस्तथाऽऽशौचमिति स्थितिः ।।' इति संग्रामहतानां सपिण्डाः सद्य एव शुद्ध्यन्ति इत्युक्तं मनुना । तेन द्वादशाहमपि नैषामाशौचं मासस्तु दूरतो निरस्त इति प्रतीयते ।

यद्वा सौप्तिके पशुवद्धतानां सुहृदां द्वादशाहमाशौचमस्ति तेन युद्धदिनेषु अष्टादशाह पर्यन्तं प्रत्यहमाशौच प्राप्तिः सद्यः शुद्धिश्च अन्त्यदिने प्राप्तस्याशौचस्य द्वादशाहेन निवृत्तिरिति मासं शौचसम्पादनोक्तिर्युज्यते ।।

मत-विमर्श

श्रीनीलकण्ठाचार्य महाभारत के मान्य टीकाकार हैं। उनका हम भी समादर करते हैं (कवीश्वर जैसे पूर्वाग्रही भले हीन करें)। महाभारत युद्ध और भीष्म-निर्वाण के सम्बन्ध में उन्होंने जो कुछ लिखा है उससे स्पष्ट है कि वे अठारह दिनों तक लगातार युद्ध मानते हैं। तात्पर्य यह है कि दैनिक युद्धावहार के अतिरिक्त अवकाश नहीं मानते। चौदहवें दिन रात्रि युद्ध भी मानते हैं। वे ज्येष्ठा को ऐन्द्र नक्षत्र और मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष को तेरह दिनों का पक्ष मानते हैं। युद्धान्त 'श्रवण' नक्षत्र में ही उन्हें मान्य है। वलभद्र वचन को ही केन्द्र विन्दु बनाकर उन्होंने युद्धारम्भ सम्बन्धी विचार भी किया है। तिथि के अनुगुण नक्षत्र निर्धारण की दृष्टि भी उनकी परिमार्जित है।

क्योंकि युद्धारम्भ सम्बन्धी तिथि का भारत सावित्री ने स्पष्ट उल्लेख किया है और उसने भी शुक्ल १३ से कृष्ण अमावास्या तक कुल १८ दिनों में ही १८ युद्ध माना है, अतः नीलकण्ठ ने उसका समादर किया है।

लेकिन भारत-सावित्री के वचनों में परस्पर विसंगति न हो और महाभारत के अनुसार युद्धान्त श्रवण नक्षत्र में हो, तदनुगुण तिथियों की उपलब्धि हो, इसलिए भारत-सावित्री का शोधन करना उनके लिए आवश्यक हो गया श्रीनीलकण्ठाचार्य को उपलब्ध 'भारत-सावित्री' के अनुसार युद्धारम्भ शुक्ल त्रयोदशी में होता है—'शुक्लपक्षे त्रयोदशी, प्रवृत्तं भारतं युद्ध' और युद्धान्त अमावास्या में—'अमायामर्धरात्रेस्तु राजा दुर्योधनो हतः'। उसके अनुसार भीष्मपतन कृष्ण-अष्टमीमें होता है तथा द्रोण-निधन त्रयोदशी में—'अर्जुनेन हतो भीष्मो माघमासेऽसिताष्टमी', 'त्रयोदश्यां तु मध्याह्ने भारद्वाजो निपातितः'। ऐसी स्थिति में शुक्ल त्रयोदशी से अमावास्या तक १८ दिन युद्ध काल होने पर भी कृष्णाष्टमी में भीष्म का मारा जाना तथा त्रयोदशी में द्रोणाचार्य का मारा जाना और 'दिनानिदश भीष्मेणभारद्वाजेन पञ्च च' युद्ध के दशवें और पन्द्रहवें दिन क्रमशः भीष्म-द्रोण का मारा जाना' इन वचनों में विसंगति परिलक्षित होती है; क्योंकि शुक्ल त्रयोदशी से अष्टमी और त्रयोदशी क्रमशः १० और १५ वें स्थान पर न होकर ११ वें और १६ वें स्थान पर है। अब रही बात चतुर्दशी से युद्धारम्भ और अमा में युद्धान्त मानने पर तो कुल १७ दिनों तक ही युद्ध सिद्ध होगा, ऐसी स्थिति में अमावास्या शब्द का अर्थ इष्टि दिन हने के कारण प्रतिपदा समझने योग्य है—तत्राप्यमावास्याशब्द इष्टि दिने प्रतिपद्येव प्रयुक्तो वेगितव्यः'।

अब तिथि शोधन के पश्चात् नक्षत्र शोधन भी कर्तव्य है। मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्दशी के उपयुक्त भरणी नक्षत्र न होकर ज्येष्ठा में मार्गशीर्ष की अमावास्या और श्रवण में युद्धान्त को देखते हुए मृगशिरा ही उपयुक्त है। मृगशिरा में युद्धारम्भ होने पर ही श्रवण में युद्धान्त सम्भव है, न कि भरणी में युद्धारम्भ होने पर; क्योंकि भरणी से मूल अठारहवें स्थान पर है जब कि श्रवण इक्कीसवें स्थान पर। इस तरह, "यम दैवते'इति भरणी नग्राह्या, किन्तु युग्लदैवतं मृगशीर्षमेव ग्राह्यम्' यह कथन भी उपयुक्त ही है। इसी तरह 'मघा' में युद्धारम्भ भी अनुपयुक्त है। ऐसा मानने पर रेवती में युद्धान्त सम्भव है न कि श्रवण में। मघा से रेवती अठारहवें स्थान पर है जब कि श्रवण तेरहवें स्थान पर।

नक्षत्र और तिथि का शोधन हो जाने पर भी महीने का शोधन अत्यावश्यक है।

"हेमन्ते प्रथमे मासि शुक्लपक्षे त्रयोदशी।
प्रवृत्तं भारतं युद्धं नक्षत्रे यमदैवते ॥"६४॥

इस सावित्री के अनुसार हेमन्त प्रथम मास में युद्धारम्भ मान्य है। 'अर्जुनेन हतो भीष्मो माघमासेऽसिताष्टमी' में स्पष्ट ही माघ मास का उल्लेख है। "जहाँ माघ से आषाढ़ तक उत्तरायण तथा श्रावण से पौष तक दक्षिणायन की प्रथा है, वहाँ पौष–माघ में हेमन्त, फाल्गुन-चैत्र में शिशिर, वैशाख-ज्येष्ठ में वसन्त और आषाढ़-श्रावण में ग्रीष्म, भाद्र-आश्विन में वर्षा एवं कार्तिक-मार्गशीर्ष में शरद् मानने की भी प्रथा है। ऐसी स्थिति में हेमन्त के प्रथम मास में अर्थात् पौष शुक्ल त्रयोदशी मृगशिरा या चतुर्दशी आर्द्रा में युद्धारम्भ तथा माघ अमावास्या श्रवण में युद्धान्त मानने में क्या आपत्ति है?"

किन्तु ऐसी स्थिति में यही कहा जा सकता है कि माघ शुक्ल में भीष्म जी का देहत्याग महाभारत को अभीष्ट है, वह तभी सम्भव है, जब मार्गशीर्ष शुक्ल में युद्धारम्भ और पौष कृष्णाष्टमी में भीष्म पतन हो। इसी अभिप्राय से मार्गशीर्ष और पौष में हेमन्त मानकर गणना उपयुक्त है और मुख्य पक्ष भी यही है। हाँ, कहीं भीष्म-पतन सम्बन्धी वचन का ऐसा तात्पर्य मानें कि 'अर्जुन के द्वारा पौष कृष्ण सप्तमी या अष्टमी में गिराये गये भीष्मजी ने माघ शुक्लाष्टमी में (अकार का च्छेद न करके) देहत्याग किया, तब बात दूसरी है। अन्यथा माघ का शोधन आवश्यक है, इसी दृष्टि से कहा है— **अत्र पौषेऽपि माघशब्दो मकरायनाभिप्रायेण तदानीं तत्सम्भवाद् असिताष्टमीतिच्छेदः।'**

इस तरह महाभारत के अनुगुण भारत-सावित्री के शोधन की प्रक्रिया सर्वथा शास्त्रीय है।

• ऐसा होने पर भी भीष्म के स्वर्गारोहण सम्बन्धी वचनों की सार्थकता नहीं सध पायी है। 'पञ्चाशन्नगरोत्तमे' यह वचन इस प्रसंग में अछूता ही रह गया है। यदि माघ शुक्लाष्टमी अनिवार्य रूप से भीष्म निर्वाण की तिथि नीलकण्ठ को मान्य होती तो 'वाक्यशेष' की प्रक्रिया का आलम्बन लेकर भीष्म निर्वाण की संगति इस प्रकार सध सकती थी—

'मासमात्र" का पूर्व रीति से ३०—१८=१२ युद्धकाल के अतिरिक्त

बारह दिन अर्थ करना उपयुक्त है। अब क्योंकि पौष कृष्ण अष्टमी से माघ शुक्ल अष्टमी तक छियालीस दिन होते हैं ; इसलिये **'अष्ट पञ्चाशतं रात्र्यः'** का कूटार्थ **'अष्ट पञ्चाशतं रात्र्यः, द्वादशन्यूनाइति शेषः'** ग्रहण करना चाहिये। अर्थात् अट्ठावन घटे बारह (५८ में १२ कम हुए तो ४६) बराबर छियालीस (५८—१२=४६)।

इस तरह पौष कृष्ण अष्टमी से पौष शुक्ल प्रतिपदा तक युद्धकाल में पितामह के नौ दिन शरशय्या पर हुए। पौष शुक्ला द्वितीया से पौष शुक्ला त्रयोदशी तक बारह दिन शुद्धिकाल में शरशय्या पर हुए। पुनः पौष शुक्ला चतुर्दशी से माघ कृष्ण तृतीया तक धर्मराज के राज्याभिषेक काल में भीष्माचार्य के पाँच दिन शरशय्या पर हुए। अब ९+१२+५=२६ दिन कुल हुए। अतः ४६—२६=२० दिन जीवन के शेष रहे।

तृतीया से पूर्व राज्याभिषेकादि अत्यावश्यक कृत्यों में लग जाना स्वाभाविक था। भीष्माचार्य से मिलकर पुनः रात्रि विश्राम के उद्देश्य से हस्तिनापुर लौटते समय स्फुट चन्द्रोदय का उल्लेख देखते हुए माघ कृष्ण चतुर्थी के आगे बढ़ना, अधिक रात्रि की क्लिष्ट कल्पना में हेतु होने के कारण अनुपयुक्त है। इस तरह, माघ कृष्ण चतुर्थी को भगवान् श्रीकृष्ण ने भीष्माचार्य से उनके छप्पन दिन शेष रहने का वचन कहा। अतः **'षड्विंशत् न्यूनाः षट् पञ्चाशतं'** ऐसा भाव ग्रहण करने पर ५६—३६=२० दिन शेष रहे।

अब मुख्य प्रश्न यह उपस्थित होता है कि बीस दिनों में आदि (उपदेश प्रारम्भ के एक दिन पूर्व) और अन्त (भीष्म के देहत्याग का दिन) छोड़कर अठारह दिन रहे। इनमें कितने दिन उपदेश श्रवण में और कितने दिन हस्तिनापुर में लगाना चाहिये ?

वाच्यार्थ में **'पञ्चाशतं षट्'** अर्थात् छप्पन दिन शेष रहते हैं और **'पञ्चाशत्'** पचास दिन हस्तिनापुर में व्यतीत होते हैं। अतः छप्पन से आदि-अन्त के दो दिन घटा देने पर चौवन दिन शेष रहते हैं। चौवन दिनों में माघ कृष्ण पञ्चमी सहित पाँच दिन उपदेश में और नवमी को रात्रि-विश्राम हस्तिनापुर में मान लेने पर माघ कृष्ण नवमी से माघ शुक्ल सप्तमी तक चौदह रात्रियाँ हस्तिनापुर में मान लेने पर माघ कृष्ण नवमी से माघ शुक्ल

सप्तमी तक चौदह रात्रियाँ हस्तिनापुर में व्यतीत होती हैं और माघ शुक्लाष्टमी में भीष्म का निर्वाण सिद्ध होता है।

अतः 'पञ्चाशत् नगरोत्तमे' के साथ 'षट् त्रिंशत् न्यूना इति शेषः' का अध्याहार करने पर ५०—३६=१४ रात्रियाँ हस्तिनापुर में व्यतीत होती हैं।

शुक्लादि एवं कृष्णादि मास में शुक्लपक्ष में कोई अन्तर न होने पर भी कृष्णपक्ष में एक महीने का अन्तर होता है। इस दृष्टि से शुक्लादि मार्गशीर्षकृष्ण अष्टमी से शुक्लादि माघ शुक्लाष्टमी तक तथा शुक्लान्त या कृष्णादि पौष कृष्ण अष्टमी से शुक्लान्त या कृष्णादि माघ शुक्लाष्टमी तक छियालीस दिन ही सिद्ध होते हैं।

३. सनत्कुमार संहिता

मत-निरूपण

सनत्कुमार संहिता के कार्तिक शुक्ल एकादशी माहात्म्य में 'भीष्म-पञ्चक' का उल्लेख है। उसके अनुसार शरपञ्जर पर सोये हुए भीष्मजी ने पाण्डवों सहित श्रीकृष्ण के सम्मुख कार्तिक शुक्ल एकादशी से पूर्णिमा तक कुल पाँच दिनों तक राजधर्म, मोक्षधर्म और दानधर्मों का उपदेश दिया। भगवान् श्रीकृष्ण ने उनके इस उपदेश को सुनकर कहा—"भीष्म ! आप धन्य हैं, धन्य हैं। आपने विविध धर्मों का हमें उपदेश किया है। कार्तिक की एकादशी को आपने जल की याचना की है। अर्जुन ने बाण के वेग से गङ्गा प्रकट कर आपको जल पिलाया है। जिससे आपके अङ्ग-प्रत्यङ्ग तुष्ट हुए हैं। इसलिये आज (एकादशी) से पूर्णिमा तक सभी लोक श्रद्धा-भक्ति प्रयास पूर्वक आपको अर्घ्यदान के द्वारा तृप्त करें। आपकी तृप्ति के लिए दिये गये जल से हमें भी सन्तुष्टि लाभ होगी।।"

"कार्तिकस्यामले पक्षे स्नात्वा सम्यग्यतव्रतः।
एकादश्यां तु गृह्णीयाद्व्रतं पञ्चदिनात्मकम्।।
शरपञ्जरसुप्तेन भीष्मेण तु महात्मना।
राज-धर्ममोक्षधर्मा दानधर्मास्ततः परम्।।
कथिताः पाण्डुदायादैः कृष्णेनापि श्रुतास्तथा।
ततः प्रीतेन मनसा वासुदेवेन भाषितम्।।

धन्य धन्योऽसि भीष्मत्वं धर्माः संश्राविता्स्त्वया ।
एकादश्यां कार्तिकस्य याचितं च जलं त्वया ।।
अर्जुनेन समानीतं गाङ्गं बाणस्य वेगतः ।
तुष्टानि तव गात्राणि तस्मादद्यादिनावधि ।
पूर्णान्तं सर्वलोकास्त्वां तपर्यन्त्वर्घ्यदानतः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मम संतुष्टिकारकम् ।।"

(सनत्कुमार संहिता २०।१-६)

महाभारत भीष्मपर्व में ११९ वें अध्याय में श्रीभीष्म पितामह के शरशय्या लाभ का वर्णन है । १२० वें अध्याय में अर्जुन द्वारा उन्हें बाणों की तकिया (उपधान) देने का उल्लेख है । पुनः रात्रि बीतने के पश्चात् प्रातः उन्हें धनुर्धर धनञ्जय द्वारा दिव्य जल प्रदान करने का वर्णन १२१ वें अध्याय में है । कार्तिक शुक्ल एकादशी के दिन अर्जुन ने भीष्मजी को जल दिया, अतः उससे एक रात्रि पूर्व कार्तिक शुक्ल दशमी में भीष्म पतन मान्य होगा । ऐसी स्थिति में युद्धारम्भ कार्तिक शुक्ल १ में मान्य होगा । कार्तिक शुक्ल ११ से पूर्णिमा तक 'भीष्म-पञ्चक' के उपलक्ष्य में युद्ध विराम (अवकाश) मान्य है । ऐसी स्थिति में शुक्लादि मासानुसार कार्तिक कृष्ण १ मे तथा शुक्लान्त मासानुसार मार्गशीर्ष १ से ग्यारहवें दिन का युद्धारम्भ होने के कारण कार्तिक या मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी में युद्धान्त मान्य होगा । कृत्तिका में कार्तिकी मानने पर पूर्वा फाल्गुनी में तथा रोहिणी में कार्तिक पूर्णिमा मानने पर उत्तरा फाल्गुनी में युद्धान्त सिद्ध होगा ।

मत-विमर्श

सनत्कुमार संहिता की उक्त रीति से मीमांसा करने पर यह सिद्ध होता है कि युद्धान्त मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी पूर्वा फाल्गुनी या उत्तराफाल्गुनी में और युद्धारम्भ कार्तिक शुक्ल १ विशाखा या अनुराधा में हुआ । क्योंकि 'अनुराधा' 'विशाखा' के ठीक बाद है और विशाखा के अधिपति इन्द्र एवं अग्नि हैं, अतः उसे ऐन्द्र नक्षत्र भी कहा जा सकता है, श्रीकृष्ण के अनुसार अमावास्या से युक्त ऐन्द्र नक्षत्र में युद्धारम्भ प्राप्त है, इधर अनुराधा में बलभद्रजी की तीर्थयात्रा और कृतवर्मादिका दुर्योधन पक्ष में सम्मिलित होना भी महाभारत से (शल्य० ३६. ९५) प्राप्त है, अतः कार्तिक अमावास्या में 'सैन्य-शिक्षण' 'समय (नियम)-निर्धारण' जिसका कि वर्णन महाभारत भीष्म पर्व अध्याय १ में है, मान्य है । युद्धारम्भ कार्तिक शुक्ल १ अनुराधा में

मान्य है। ऐसा मानने पर भीष्म पतन कार्तिक शुक्ल १० उत्तरा भाद्रपदा में सिद्ध होता है। कार्तिकी रोहिणी में सिद्ध होती है। ग्यारहवें दिन का युद्धारम्भ मार्गशीर्ष कृष्ण १ मृगशिरा में और युद्धान्त मार्गशीर्ष कृष्ण ८ उत्तराफाल्गुनी में सिद्ध होता है। उत्तराफाल्गुनी के पश्चात् श्रवण १० वें स्थान पर है। इस तरह 'श्रवण' नक्षत्र में युद्धान्त असम्भव है। साथ ही महाभारत में युद्धान्त के पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर का हस्तिनापुर में जब राज्याभिषेक सम्पन्न हो गया, तब वे भीष्मजी के पास उपदेश सुनने आये, न कि युद्धकाल में ही।

युद्धारम्भ कार्तिक शुक्ल १ अनुराधा में मानने पर सैन्य-निर्याण पुष्य में सिद्ध करने के लिए कार्तिक कृष्ण सप्तमी तिथि सिद्ध होगी। अर्थात् कार्तिक कृष्ण सप्तमी पुष्य में सैन्य निर्याण और बलभद्र मिलन मान्य होगा। अभिप्राय यह कि कार्तिक कृष्ण को १३ दिनों का पक्ष मानने के लिए कृष्ण पंचमी के पश्चात् १ तिथि का और उससे पूर्व १ तिथि का क्षय मानकर कार्तिक कृष्ण सप्तमी में सैन्य निर्याण उसके पश्चात् १ तिथि और एक नक्षत्र क्षय मानकर विशाखा में अमावास्या मान्य होगी। आश्विन शुक्ल १३ रेवती में श्रीकृष्ण का उपप्लव्य नगर के लिए प्रस्थान मान्य होगा।

उक्त गणना इन दृष्टियों से महाभारत के अनुरूप नहीं है क्योंकि—

१. महाभारत के अनुसार युद्धान्त 'श्रवण' में होना चाहिए न कि उत्तराफाल्गुनी में।

२. भीष्म-पतन के बाद ही तत्काल उनसे पाण्डवों का पाँच दिनों तक धर्मोपदेश लाभ करना, महाभारत के विरूप है।

३. आठवें, नवें दिनका युद्ध शुक्ल अष्टमी और नवमी में होने के कारण 'सायंकाल युद्ध में कुछ न दिखाई पड़ने' का महाभारतीय उल्लेख चरितार्थ नहीं होता है। चौदहवें दिन का युद्ध कृष्ण चतुर्थी में होने के कारण 'त्रिभागशेषोत्तररात्रि में चन्द्रोदय वर्णन' चरितार्थ नहीं हो पाता है।

४. आश्विन शुक्ल १३ रेवती में श्रीकृष्ण का उपप्लव्य नगर से हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान होने के कारण महाभारत का 'शरदन्ते हिमागमे'

यह वचन चरितार्थ नहीं हो पाता है, क्योंकि आश्विन शुक्ल १३ तक हेमन्त ऋतु का आगमन अनुपयुक्त है।

५. शुक्लादि मासानुसार कार्तिक अमावास्या से और शुक्लान्त मासानुसार मार्गशीर्ष अमावास्या से पूर्व युद्धारम्भ महाभारत के विरुद्ध है। क्योंकि जव दोनों सेनाएँ आमने-सामने खडी थीं, युद्धारम्भ के लिए रात्रि बीतने की प्रतीक्षा थी तब हस्तिनापुर में कृष्ण द्वैपायन वेद-व्यास ने धृतराष्ट्र से विविध उत्पातों का वर्णन किया है उसी सन्दर्भ में उन्होंने कार्तिक पूर्णिमा के पश्चात् कृष्ण चतुर्दशी (जिस में अमावास्या का योग था) का भी उल्लेख किया है जिसमें भयंकर अपशकुन हो चुके हैं, ऐसा कहा है—

"अलक्ष्यः प्रभयाहीनः पौर्णमासीं च कार्तिकीम्।
चन्द्रोभूदग्निवर्णश्च पद्मवर्णनभस्तले ॥"

(भीष्मपर्व २।२३)

"मांसवर्षं पुनस्तीव्रमासीत्कृष्ण चतुर्दशीम् ॥"

(भीष्मपर्व ३. ३३)

उक्त स्थल में 'अभूत्', 'आसीत्' का प्रयोग भूतकाल का द्योतक है।

इस तरह मार्गशीर्ष अमावास्या से पूर्व युद्धारम्भ महाभारत के विरूप है।

• उक्त पञ्चविध हेतुओं से सनत्कुमार संहिता के अनुसार युद्धारम्भ भीष्म पतन और युद्धान्त महाभारत के विरुद्ध है। ऐसी स्थिति में यही मानना चाहिये कि सनत्कुमार संहिता कल्पभेद से मान्य है।

'महाभारत युद्ध को लेकर कल्पभेद की वात नहीं बन सकती', ऐसा मानना भी अनुचित है। क्योंकि महाभारत के अनुसार युद्धकाल उपस्थित होने पर श्रीवलराम तीर्थयात्रा के उद्देश्य से चले और गदायुद्ध के समय बयालीसवें दिन लौट आये, जब कि श्रीमद् भागवत के अनुसार गदायुद्ध के समय पहुँचने तक उनके कई महीने बीत चुके थे। नैमिषारण्यमें सूतवध के पश्चात् बारह महीने की शेष यात्रा का भागवत में उल्लेख है— 'चरित्वा द्वादश मासास्तीर्थस्नायी विशुद्धयसे।' (भागवत १० ७८. ४०)। इसी तरह परीक्षित् निधन, कुन्ती-विदुरादि निधन के सम्बन्ध में महाभारत और भागवत की कथाओं में पर्याप्त अन्तर है और दोनों की प्रामाणिकता भी

प्रसिद्ध है, अतः कल्पभेद की कथा ही मान्य है। तद्वत् यहाँ भी समझना चाहिये।

'पञ्चाशतं षट् च कुरुप्रवीर', 'पञ्चाशन्नगरोत्तमे' इन महाभारत वचनों के अनुसार ५६—५०=५ दिनों तक पाण्डवों ने पितामह से विविध धर्मों का उपदेश प्राप्त किया। 'सनत्कुमार संहिता' के अनुशीलन से भी इतने अंश का पोषण प्राप्त होता है—'व्रतं पञ्चदिनात्मकं ......राजधर्मा-मोक्षधर्मादानधर्मास्तथा परं कथिताः।' साथ ही भीष्मस्वर्गारोहण से संतु-लित युद्धारम्भ की प्रामाणिकता के सन्दर्भ में भीष्मवध के पश्चात् अवकाश का सूत्रपात होता है। इतने अंशों में अगत्या अवकाश अनिवार्य होने की स्थिति में प्रस्तुत सन्दर्भ उपोद्बलक भी हो सकता है किन्तु पीछे की युक्तियों के अनुसार ही उसका सामञ्जस्य करना उचित है।

४. अज्ञातकर्तृक महाभारत युद्धकाल निर्णय :

मतनिरूपण[६]

इस मत के आधार मुख्यरूप से महाभारत के निम्नलिखित श्लोक हैं—

(१) "कौमुदे मासि रेवत्यां शरदन्ते हिमागमे।
स्फीतसस्ययुते काले कल्पः कल्पवतां वरः॥"
(महा० उद्योग० ८३. ७)

(२) "सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति।
संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम्॥"
(महा० उद्योग० १४२।१८)

(३) "लोहाभिसारो निर्वृत्तः कुरुक्षेत्रमकर्दमम्।
पुष्टास्तेऽश्वाभृता योधा श्वो युध्यस्व सकेशवः॥"
(महा० उद्योग० १६०. ९३)

---

६. सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से ज्येष्ठा भाद्रपद पूर्णिमा वि० सं० २०३५ की सारस्वती सुषमा में प्रकाशित अज्ञात कर्तृक लेख।

(४) "यथा स भगवान् व्यासः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ।
तथैव सहितः सर्वे समाजग्मुर्महीक्षितः ।।
मघाविषयगः सोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत ।
दीप्यमानाश्च सम्पेतुर्दिवि सप्तमहाग्रहाः ।।'
(महा० भीष्म० १७. २)

(५) "चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै ।
पुष्येण सम्प्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः ।।
शिष्ययोर्वै गदायुद्धं द्रष्टुकामोऽस्मि माधव ।
(शल्य० ३४ ५)

उलूक वचन 'लोहाभिसारः' (लोहाभिसारः शस्त्राणां नीराजनादिकं, तेषु मन्त्रेण देवतावाहनादिकञ्च– नैल०) की अचिर निवृत्ति को जानकर अज्ञात कर्तृक लेख में आश्विन में अधिक मास की कल्पना की गई है। शरदन्त हिमागम से यद्यपि कार्तिक शुक्ल का बोध होता है और कौमुद का अर्थ कोजागरी (आश्विन-पूर्णिमा) करने पर आश्विन शुक्ल का बोध होता है, तथापि विषमता की निवृत्ति अधिक मास की कल्पना से हो जाती है।

'सप्तमाच्चापिदिवसादमावास्या भविष्यति। संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम् ।' (उद्योग० १४२।१८) ऐसा भगवान् श्रीकृष्ण ने कर्ण को असफल शान्तिवार्ता के पश्चात् हस्तिनापुर से उपप्लव्य नगर के लिए लौटते समय कार्तिक कृष्ण षष्ठी के समय कहा था। वह दिन तो बीत ही रहा था, अतः सप्तमी से लेकर सात दिन गिन कर आठवें दिन अमावास्या में इन्द्र और अग्नि देवता सम्बन्धी विशाखा नक्षत्र है, इन्द्र की प्रधानता के कारण उसी को शक्र देवता कहा गया है।

'मघा विषयगः' (भीष्म० १७. २) इस संजय वचन के अनुसार 'मघा' नक्षत्र में युद्धारम्भ होता है। इसी तरह 'श्रवणे पुनरागतः' (शल्य० ३३. ५) इस वलभद्र वचन के अनुसार युद्धान्त का अनुमान होता है।

इस प्रकार अज्ञात कर्तृक इस गणना के अनुसार द्वितीय आश्विन शुक्ल शुद्ध द्वादश्यनन्तर त्रयोदशी रेवती नक्षत्र में श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान मान्य है, कार्तिक कृष्ण षष्ठी पुष्य में उभयसेना का कुरुक्षेत्र के लिए निर्याण, श्रीकृष्ण और पाण्डवों से वलभद्र जी का मिलन,

रुक्म्यागमन सिद्ध है,कार्तिक कृष्ण सप्तमी आश्लेषा में उभय सेनाकी कुरुक्षेत्र प्राप्ति तथा दुर्योधन द्वारा उत्तेजित करने के अभिप्राय से उलूक का पाण्डवों के समीप दूत बनकर आगमन मान्य है। कार्तिक कृष्ण अष्टमी मघा में गीताजयन्ती और युद्धारम्भ मान्य है। पुनः कार्तिक कृष्ण दशमी उत्तरा–फाल्गुनी में द्वितीय युद्ध, कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी स्वाति में तृतीय युद्ध, कार्तिक शुद्ध प्रतिपदा अनुराधा में चतुर्थ युद्ध, कार्तिक शुक्ल तृतीया मूल में पाँचवें दिन का युद्ध, कार्तिक शुक्ल ४ पूर्वाषाढ़ में छठे दिन का युद्ध, कार्तिक शुक्ल षष्ठी श्रवण में सातवाँ युद्ध, कार्तिक शुक्ल सप्तमी धनिष्ठा में आठवाँ कार्तिक शुक्ल नवमी पूर्वाभाद्रपद में नवाँ युद्ध हुआ। कार्तिक शुक्ल द्वितीय दशमी रेवती में दशम युद्ध के दिन भीष्म पतन हुआ। मार्गशीर्ष कृष्ण द्वितीया आर्द्रा में ग्यारहवाँ युद्ध हुआ।

बस इसी अपूर्ण विवरण के साथ ग्रन्थ समाप्त हुआ है। इस ग्रन्थ की प्रक्रिया को देखते हुए मार्गशीर्ष शुक्ल तृतीया पर्यन्त महाभारत युद्ध मानना चाहिये। 'श्रवण नक्षत्र पर्यन्त युद्ध हुआ' यह प्रसिद्ध ही है।

लेखक ने कार्तिक कृष्ण नवमी पूर्वा फाल्गुनी, कार्तिक कृष्ण एकादशी हस्त और कार्तिक कृष्ण द्वादशी 'चित्रा' में, कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी शेषा–नन्तर अमावास्या 'विशाखा' में, कार्तिक शुक्ल द्वितीया ज्येष्ठा में, कार्तिक शुक्ल पञ्चमी उत्तराषाढ़ा में, कार्तिक शुक्ल अष्टमी शतभिषा में, कार्तिक शुक्ल दशमी उत्तर भाद्रपद में युद्ध बन्द माना है। कार्तिक शुक्ल ११ अश्विनी से पूर्णिमा मृगशिरा तक भीष्मपितामह के सौहार्द में पाण्डव सेना द्वारा युद्ध विराम माना है। मार्गशीर्ष कृष्ण प्रतिपद मृगशिरसोऽवशेष में, मार्गशीर्ष कृष्ण तृतीया पुनर्वसु में, मार्गशीर्ष चतुर्थी पुष्य में और मार्गशीर्ष कृष्ण पञ्चमी आश्लेषा में भी युद्ध विराम माना है। एकादशी व्रत, पारण, ग्रहण, स्वजन संहार से प्राप्त शोक और सनत्कुमार संहिता के अनुसार 'भीष्म पंचक' आदि के उपलक्ष्य में उक्त विविध अवकाशों की कल्पना लेखक ने की है।

(अज्ञातकर्तृकः)

महाभारतयुद्धकालनिर्णयः

श्रीगणेशाय नमः

अथ कस्मिन्मासे कस्यां वा तिथौ महाभारतयुद्धप्रारम्भस्तत्समा–

प्तिर्वेत्यत्र भगवतः कृष्णद्वैपायनस्य कांश्चिच्छ्लोकानुदाहृत्य व्याख्यास्यामः। तथा हि—

'कौमुदे मासि रेवत्यां शरदन्ते हिमागमे।
"स्फीतसस्ययुते काले कल्पः कल्पवतां वरः॥ इति॥

अस्यार्थः। कौमुदी कोजागर पूर्णिमा तया युक्तः कौमुद आश्विनो मासः तस्य रे'वत्यां शुद्ध द्वादश्यनन्तर त्रयोदश्याम्। शरदन्ते हिमागम इति। यद्यपि शरदन्तो हिमागमश्च कार्त्तिकान्ते सम्भवति तथापि तत्र संवत्सरे आश्विनाधिक्याद् [१०] द्वितीयाश्विनशुद्धप्रतिपदि तुलासंक्रमणत्वात् कन्यातुलयोः [११] शरद्रूपत्वात् तद्भागस्य जातप्रायत्वाद् द्वितीयाश्विनस्य कार्त्तिकस्थानापन्नत्वाद् आश्विनान्त एव शरदन्तत्वोक्तिः।

यत्तु सर्वज्ञ नारायण–नीलकण्ठाभ्याम्–कुमुदानि सन्त्यास्मिन्निति व्युत्पत्तिम्युपगम्य कौमुदे कार्त्तिके मासि रे'वत्यां शुद्ध द्वादश्यामिति व्याख्यातम्, तन्न।

'लोहाभिसारो निर्वृत्तः कुरुक्षेत्रमकर्दमम्' इत्युलूक वाक्याद् देवीपक्षीय प्रतिपदमारभ्य दशमी पर्यन्तं क्रियमाणस्य लोहाभिसारकर्मणोऽचिर निर्वृत्तित्वप्रतीतेर्विरोधान्तरस्य प्रदर्शयिष्यमाणत्वाच्च। इदं च पाण्डवराज्यप्रत्यायनाय कुरून् प्रति प्रस्थितस्य भगवतः प्रस्थान दिनम्। ततो

---

१०. '१८८५ शकवत्सरे' आश्विनोऽधिकमास आसीदिति श्रूयते। महाभारतीययुद्धवर्षे आश्विनस्याधिकमासे प्रमाणमन्वेषणीयं वर्तते।

११. चैत्रमासाद् वर्षारम्भे सम्मते चैत्रमासे च मीनराशौ भास्करे चरति सति आश्विनमासे कन्याराशिरायाति। चैत्रमासे वसन्तस्यारम्भः, आश्विनमासे च शरदः, एतेन कन्या तुलयोर्भास्करे वर्तमाने शरद् ऋतुः प्रवर्तते। 'शिशिर वसन्तावुदगयनस्थौ' (महा० २ २. ३४) इति वचनानुसारेणोत्तरायणस्यारम्भः शिशिरात् प्रवर्तते' एतेनापि गणनया कन्या तुलयोः शरदृतुर्भवतीति ज्ञायते।

नवम दिने प्रतिपदः क्षयः कृष्णषष्ठ्यां पुष्ययुतायामगृहीतानुनये दुर्योधने भगवतः परावृत्य पाण्डवान् प्रत्यागमनम् ।

'प्रयाध्वं वै कुरुक्षेत्रं पुष्योऽद्येति पुनः पुनः' इति दुर्योधन वाक्यात् तस्यामेव ससैन्यस्य दुर्योधनस्य कुरुक्षेत्रं प्रति युद्धाय प्रयाणम् । तस्यामेव सन्ध्यायामुपलव्यक्रमप्रत्यासन्नैः पाण्डवैः सह समागम्य भगवतादुर्योधनाभिप्राय-निवेदनम् । गृहीताभिप्रायाणां च तेषां कुरुक्षेत्रं प्रति युद्धाय निर्याणम्, तदैव वलभद्रागमनं तत्तीर्थ यात्रा च ।

'पुष्येण सम्प्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः' इति गदापर्वणि बलभद्र वाक्यात् रुक्म्यागमनमपि तदैव-बलभद्रगमनानन्तरम् [१२] 'एतस्मिन्नेव काले तु' इत्यादिनारुक्म्यागमनस्योद्योगे, उक्तत्वात् ।

'उपप्लव्य शब्दश्चशत्रुराज्यावस्कन्दनाय तत्क्षणनिर्मित उपकार्या-प्राये परित्यागसमय विनाशनयोग्ये प्रदेशे रूढो विज्ञेयः । ततः सप्तम्यामा-श्लेषानक्षत्रे उभयोः सेनयोः कुरुक्षेत्रप्राप्तिः । उलूकस्य च पाण्डवोत्तेजनाय-दूत्येन प्रेषणं भीष्मेण च दुर्योधनं प्रति रथातिरथसंख्यानम्, तदनन्तरदिनेऽ-ष्टम्यात्—'प्रभातायां तु शर्वर्यां पुनरेव सुतस्तव [१३] इत्यादिना सूर्योदयात् पूर्वमेव भीष्मादीन्प्रति दुर्योधनस्य पाण्डवसैन्यप्रमापणप्रश्नोऽर्जुनं प्रति च युधिष्ठिरस्य कुरुसैन्यप्रमापण प्रश्नः ।

ततः सूर्योदयानन्तरम् 'ततः प्रभाते विमले धार्तराष्ट्रेण चोदिताः' [१४] इत्युद्योगपर्वणि सञ्जय वाक्यान् 'मघा विषयगः सोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत' इति भीष्मपर्वणि तद्वाक्याच्च मघानक्षत्रयोगे उभयोः सेनयोर्युद्धार्थं संनाहः । दोषदर्शनात् स्वजनवधपराङ्मुखस्य चार्जुनस्य विश्वरूपप्रदर्शनादिना पुनः प्रोत्साहन युद्धप्रारम्भो भङ्गश्च युधिष्ठिरस्य सैन्यस्य ।

सन्ध्यायां नवम्यां पूर्वफाल्गुनी नक्षत्रे भीष्म पराक्रमदर्शनादसम्भा-वितात्मजयस्य युधिष्ठिरस्य वासुदेवादिभिर्मन्त्रविचारणादयुद्धम् ।

दशम्यामुत्तर फल्गुन्यां द्वितीय युद्धम् ।

---

१२. महा० उद्योग० १५८।१, २

१३. उद्योग० १९३- १

१४. उद्योग० १९५. १

तत एकादश्यां द्वादश्यां च क्रमाद् हस्तचित्रयोः सैन्यद्वयप्रधान भूतानां भीष्मयुधिष्ठिरप्रभृतीनामुपवासपारणयोर्व्यासक्तत्वादयुद्धम्। कृष्णैकादश्युपवासस्य गृहस्थविषयत्वाभावेऽपि-शायिनी बोधिनी मध्ये या कृष्णैकादशी भवेत्। सैवोपोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचन ॥

इति वचनान्तरात् तथात्वावगमः।

त्रयोदश्यां स्वातिनक्षत्रे तृतीय युद्धम्। चतुर्दशीशेषानन्तरमभावास्यायां विशाखानक्षत्रेऽमाश्राद्धदीपोत्सवव्यासङ्गादयुद्धम्।

"सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति।
संग्रामो युज्यतां तस्यां तामाहुः शक्रदेवताम् ॥

इति षष्ठ्यां कुरुभ्यः परावर्तमानेन भगवता कर्णं प्रति तद्दिनस्य जात प्रायत्वात् सप्तमीमारभ्य सप्त दिनानि गणयित्वाऽष्टमदिनेऽमावास्यायामिन्द्राग्निदेवत्यस्य द्विदेवत्यस्यापिशक्रदेवताकत्वोक्तेः।

यत्तु नीलकण्ठेन शक्रदेवताकं ज्येष्ठानक्षत्रमिति व्याख्यातम्, तन्न। पुष्याज्ज्येष्ठाया एकादशीत्वेन सप्तमाच्चापीति वचनस्योक्तिसम्भवात्। केषांच्चिन्नक्षत्राणां क्षयकल्पनाद्यन्तविपर्यासकल्पना वा पुनर्बुद्ध्यारोहं नाङ्गीकुरुतः।

ननु सूर्योपराग निमित्त एव युद्धाभावः किमर्थमिह नोक्तः। किं तत्र प्रमाणमितिचेत्—

"चतुर्दशीं पञ्चदशीं भूतपूर्वां च षोडशीम्।
चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासि त्रयोदशीम् ॥
अपर्वणि ग्रहेणैतौ प्रजाः संक्षययिष्यतः ॥[१५]

इति धृतराष्ट्रं प्रति व्यासवाक्यम्। अस्यार्थः—ह्रासे चतुर्दशीं भूतपूर्वां चन्द्रसूर्यौ ग्रस्तौ साम्ये पञ्चदशीम्, वृद्धौ षोडशीमिदानीं त्वपर्वण्येकमास्यतह्रासवशात्—

त्रयोदशी ग्रहेणैतौ प्रजाः संक्षयिष्यतः। इति सर्वत्र "कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' (पा० अ० २. ३. ५) द्वितीया, सप्तम्या व्यत्ययाद्वा। अप-

---

१५. भीष्म० ३. २८, २९

वत्वं चौत्पातिकत्वात् पर्वणोऽप्रशस्तत्वाद् 'अपशवो वा अन्ये गोअश्वेभ्यः' इत्यत्रेव नञोऽप्रशस्तार्थकत्वात् सूर्याचन्द्रमसोरुभयोर्ग्रहणाभिधानत्वममावास्यायां चन्द्रमसः सूर्यप्रवेशमात्राभिप्रायेणेति सम्प्रदायः। अन्ये पुनरेवं व्याचक्षते-अमावास्यायामेव सूर्योदयात् प्राक् चतुर्दशी शेषे दृश्यमानायाश्चन्द्रकलाया ग्रासइह विवक्षितः इति। अपरे तु इहैकमासीत्युक्त्या याऽस्मादेव पूर्वस्मिन् शुक्लपक्षे त्रयोदश्यामन्तरेणैव क्षयं चन्द्रग्रहणमुत्तरपक्षत्रयोदश्यां च सूर्यग्रहणं ततश्चापर्वणीत्युक्तिर्यथा श्रुतैवेति व्याचक्षते—इदमपर्वणि ग्रहणं द्विविधम्-राहुकृतं त्वष्ट्र कृतं च। तथा च कठ श्रुतिः "यत्रापर्वणि राहुग्रहणं तत्र नरपतेर्वधमादिशेद्" इति।

रामायणे आरण्य काण्डे—[१६]

"सकबन्धः सपरिघः स्वर्भानुश्च दिवाकरम्।
जग्राह कालपर्यन्तमपर्वणि महाग्रहः॥इति॥

सभापर्वणिच—[१७]

'राहुरग्रसदादित्यमपर्वणि महाग्रहः' इति। तत्र यदा सूर्यचन्द्रमसो राहुणा सहैकराशिगतत्वं सप्तमराशिगतत्वं वा तदा राहुकृतम्, अन्यदा तु त्वष्ट्रकृतम्। यदुक्तं ज्योतिःपराशर विष्णुधर्मोत्तरयोः—

अपर्वणि शशाङ्कार्कौ त्वष्टानाम महाग्रहः।
आवृणोति तमः श्यामः सर्वलोकविपत्तये॥

इति किंवैक इति चेद् उच्यते—चतुर्दशीं पञ्चदशीमिति समनन्तर प्रदर्शितवाक्यादेवास्य पक्षस्य त्रयोदशतिथ्यात्मकत्वनिश्चयात्तदीयामावास्यायाश्चतुर्दशीशेषानन्तरभावित्वनिरूपणादुपरागकालस्य प्रतिपत्सन्धेर्द्वितीयसूर्योदयकाले सत्त्वेन पूर्वदिने पुण्यकालाभावात्। ग्रस्तोदयवशात् प्रतिपदि प्रातरेव स्नानदानादिकं विधायानन्तरं युद्ध प्रारम्भे दोषो नास्तीत्यन्यदेतत्। त्वष्ट्रकृतोपरागवशाद् दिवा वाऽमावास्यां (यायां) सूर्यादर्शनकल्पनेऽपि शास्त्रीयोपरागाभावात् पुण्यकालाभावः। अस्तु वोपरागनिमित्तोऽपि तद्दिने युद्धाभावो न तु तदुत्तरप्रतिपद्यपि युद्धाभावकल्पना युक्ता,

---

१६. २८।१०, अत्रकश्चित् पाठभेदः।

१७. सभा० ७१. २६

अतश्चतुर्थं युद्धमनुराधायुतायां शुद्धप्रतिपदि। द्वितीयायां ज्येष्ठानक्षत्रे भ्रातृवधसन्तप्तस्य दुर्योधनस्यानुत्साहादयुद्धम्। रात्रौ च भीष्मसमीपे-गमनम्।

तृतीयायां मूलनक्षत्रे पञ्चम दिन युद्धम्।
चतुर्थ्यां पूर्वाषाढ़ नक्षत्रे षष्ठदिन युद्धम्॥

पञ्चम्यामुत्तराषाढ़नक्षत्रे भीमसेनेन गाढ़प्रहारैर्जर्जरीकृतशरीरस्य दुर्योधनस्यानुत्साहादयुद्धम्। भीष्मेण विशल्यकरण्यौषधदानाद्रुपा-करणम्।

षष्ठ्यां श्रवण नक्षत्रे सप्तमयुद्धम्।

सप्तम्यां धनिष्ठानक्षत्रेऽष्टमयुद्धम्। अष्टम्यां शतभिषजि भ्रातृवध-संतप्तस्येरावद्वधविषण्णां पाण्डवानां चायुद्धम्। दुर्योधनस्यरात्रौ पुनर्भीष्म-समीपे गमनम्।

पूर्वाभाद्रपदासु नवम्यां नवम युद्धम्। उत्तर भाद्रपदासु दशम्यां भीष्मपराक्रमदर्शनाज्जयाशापराङ्मुखस्य युधिष्ठिरस्य वासुदेवेन सह पुनर्मन्त्रविचारो रात्रौ भीष्मान्तिके गमनम्, तद्वधोपायश्च।

वृद्धिवशाद् द्वितीयदशम्यां रेवती नक्षत्रे दशमयुद्धम्, भीष्मपतनं च।

"एकादश्यां कार्त्तिकस्य याचितं च जलं त्वया।
अर्जुनेन समानीता गङ्गा बाणस्य वेगतः॥
तुष्टानि तव गात्राणि तस्मादद्य दिनावधि।
पूर्णान्तं सर्वलोकास्त्वां तर्पयन्त्वर्घदानतः॥"

इति सनत्कुमार संहिता वाक्यादेकादश्यादिदिन पञ्चकं भीष्मस्या-तृप्तिजलदानव्यासक्तत्वादर्जुनस्यायुद्धम्। तदेवमश्विन्यादिमृगशिरेऽन्तं पञ्चसु नक्षत्रेष्वतिक्रान्तेषु मार्गशीर्ष कृष्ण प्रतिपदि मृगशीर्षे शेषे द्रोणाभिषेकः। युधिष्ठिरस्य ग्रहणे प्रतिज्ञानं च द्रोणस्य।

द्वितीयायामार्द्रायुतामेकादशं युद्धम्। तृतीयायां पुनर्वस्वोर्युधिष्ठि-राग्रहणखिन्नस्य द्रोणस्यानुत्साहादयुद्धम्। अर्जुनस्य संग्रामाद् दूरेऽपनयनाय संशप्तकोद्योजनं तेषां शपथाश्च। चतुर्थीपञ्चम्योः पुष्याश्लेषायुतयोर्या-

वद्दूरमपनीतोर्जुनः प्रत्यावृत्य युधिष्ठिरं रक्षितुं न शक्नुयात् तावद्दूरे यन्त्रादिप्रधानसैन्यस्य प्रथमतः प्रस्थापनम् । १८

मत-विमर्श

लेखक ने 'शरदन्ते हिमागमे कौमदेमासि रेवत्यां' का अर्थ आश्विन शुक्ल त्रयोदशी रेवती किया है। इसमें शरदन्त और हिमागम को मुख्य न मानकर 'कौमुद मास और रेवती नक्षत्र को ही मुख्य माना है। इसी दिन भगवान् श्रीकृष्ण हस्तिनापुर के लिए पधारे हों तभी रेवती से नवें स्थान पर आश्लेषानक्षत्र में उलूक का 'लोहाभिसारो निर्वृत्तः' यह वचन सार्थक होगा। आश्विन की नवरात्रि लोहाभिसार के लिए विहित है। अब क्योंकि लेखक ने रेवती में शुक्ल त्रयोदशी माना है, अतः धनिष्ठा में महा-नवमी सिद्ध होती है। लोहाभिसार की पूर्णता धनिष्ठा में स्वीकार करके पुनः धनिष्ठा के तेरह दिन बाद 'उलूक'का लोहाभिसारो निर्वृत्तः' यह वचन इस अर्थ में प्रयुक्त हो सकता है कि 'कुछ ही दिन हुए हैं, लोहाभिसार सम्पन्न हुआ है, अब तो यह कुरुक्षेत्र कीचड़ आदि से रहित सर्वथा युद्धोप-युक्त है। अतः पाण्डवो ! विलम्ब मत करो, कल ही युद्धारम्भ कर दो।' अर्थात् नवरात्रि के पश्चात् चौदहवें दिन 'लोहाभिसार की समाप्ति के कुछ ही दिन बाद' कहा जा सकता है। अतः भले ही शरद् का अन्त और हिम का आरम्भ कार्तिकमें होता हो और रेवती नक्षत्र को देखते हुए कार्तिक शुक्ल द्वादशी या त्रयोदशी में 'शरदन्ते हिमागमे········रेवत्यां' यह वचन सार्थक होता हो, परन्तु 'लोहाभिसारः' इस वचन के अनुगुण कौमुद का अर्थ 'कोजागरी पूर्णिमा वाला मास' अर्थात् आश्विन शुक्ल ग्रहण करना उपयुक्त है, साथ ही अधिक मास की कल्पना के द्वारा 'शरदन्त और हेमन्तावगमन' वाला वचन सार्थक किया जा सकता है। अर्थात् शरदन्त हिमागम आश्विन शुक्ल में हो सकता है, अधिमास होने से। आश्विन शुक्ल त्रयोदशी में भगवद्यान माना जा सकता है, लोहाभिसार की निवृत्ति के अति निकट केवल चार दिन बाद होने से। कार्तिक कृष्णाष्टमी में युद्धारम्भ हो सकता है 'लोहाभिसारो निर्वृत्तः' इस वचन के अनुरूप होने से, लेकिन कार्तिक शुक्ल

१८. एतावतैवापूर्णविवरणेन ग्रन्थः समाप्तिं गतः एतद्ग्रन्थ प्रक्रियानुमानेन मार्गशीर्ष शुक्ल तृतीयापर्यन्तं महाभारतयुद्धं स्यात्। श्रवणनक्षत्रं यावत् तस्य प्रवर्तमानत्वात्।

या मार्गशीर्ष में युद्धारम्भ नहीं हो सकता, लोहाभिसारोत्सवरूप महानव रात्रि के बहुत दिन बाद होने से।

द्वितीय आश्विन शुक्ल त्रयोदशी में भगवान् श्रीकृष्ण को उपप्लव्य से हस्तिनापुर भेजने के पीछे लेखक का यही अभिप्राय व्यक्त होता है।

युद्धारम्भ के सम्बन्ध में लेखक का ऐसा दृष्टिकोण परिलक्षित होता है कि यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण का 'सप्तमाच्चापि.......संग्रामो युज्यतां.......' यह वचन युद्धारम्भ का ही द्योतक है, परन्तु 'मघा विषयगः सोमः' इस सञ्जय वचन से भगवद् वचन बाधित होता है। अर्थात् पुष्य के बाद दूसरे स्थान पर मघा है। मघा के बाद छठे स्थान पर विशाखा है। विशाखा ऐन्द्र नक्षत्र के रूप में हमने (लेखक ने) माना है। पुष्य नक्षत्र में श्रीकृष्ण ने विशाखा में युद्धारम्भ की घोषणा की। पुष्य के बाद आठवें स्थान पर विशाखा में युद्धारम्भ करने पर संजय का वचन बाधित होता है। अब क्योंकि सञ्जय अतीत का अनुवादक है, जबकि श्रीकृष्णकथन भविष्य का सूचक। इतिहास अतीत का सहिष्णु होता है। भविष्यवाणी के अनुसार यदि घटना घटित न हो तो भविष्यवाणी को घटना के अनुगुण ही लगाना उपयुक्त होता है। युद्धारम्भके सम्बन्ध में 'सञ्जय का वचन ही' मान्य होना चाहिये। साथ ही ऐन्द्र नक्षत्र ज्येष्ठा ही है। विशाखा अग्नि और इन्द्र सम्बन्धी होने से युग्म है। फिर भी अग्नि और इन्द्रमें इन्द्र की प्रधानता है। 'सप्तमाच्चापि दिवसात्' इस भगवद् वचन के वह (विशाखा) सन्निकट है। पुष्य के बाद आठवें स्थान पर होने के कारण विशाखा को ही ऐन्द्र नक्षत्र मानना चाहिए न कि ज्येष्ठा को। ज्येष्ठा तो विशाखा के पश्चात् दशवें स्थान पर है। इस तरह चतुर्दशी शेषानन्तर अमावास्या जो कि ऐन्द्र नक्षत्र विशाखा से युक्त है, वह कार्त्तिक में होने योग्य है। कार्तिक अमावास्या विशाखा का द्योतक ही 'सप्तमाच्चापिदिवसादमावास्या भविष्यति' यह वचन है। 'चतुर्दशीं पञ्चदशीं भूतपूर्वां चषोऽशीम्। इमां तु नाभिजामवास्यां त्रयोदशीम्' इस श्लोक के अनुसार कार्तिक कृष्ण तेरह दिनों का पक्ष मान्य है।

क्योंकि पुष्य से बयालीसवें स्थान पर श्रवणोत्तर श्रवण है। बलदेव वाक्यानुसार उसी में गदायुद्ध रूप युद्धान्त मान्य है। परन्तु वह श्रवण तो सञ्जय वचनानुसार युद्धारम्भ मघा नक्षत्र से मघा सहित मघोत्तर चालीसवें स्थान पर है। कार्तिक कृष्ण दशमी की वृद्धि मानकर एकतालीसवें स्थान

पर है। अव क्योंकि कुल मिलाकर अठारह दिनों तक ही युद्ध होना है, अतः बीच-बीच में अवकाश की कल्पना अनिवार्य है। किन्तु महाभारत में इस प्रकार के अवकाश का कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं है; अतः एकादशी व्रत-पारण-ग्रहणादि के निमित्त अवकाश निर्धारण हो सकता है। ग्रन्थान्तर सिद्ध भीष्मपञ्चक के उपलक्ष्य में भीष्मवध के पश्चात् अवकाश माना जा सकता है। महाभारत में भीष्म पतन के पश्चात् सायं अर्जुन ने पितामह को वीरोचित बाणोपधान प्रदान किया। सभी राजाओं ने भीष्म का दर्शन किया। रात्रि बीतने पर कव युद्धारम्भ किया, इसका उल्लेख नहीं है। अपितु सभी राजा पितामहके पास आये, अर्जुनने बाण-गङ्गा से उन्हें सन्तुष्ट किया। पुनः सभी अपने-अपने निवास-स्थान में लौट गये (भीष्म० १२१. १; १२२. ३६) ऐसा ही वर्णन है। इस गतिविधि से अवकाश की सम्भावना होती है। द्रोणाभिषेक,कर्णाभिषेक शल्याभिषेकके उपलक्ष्यमें अवकाशका अनुमान वढ़ जाता है। अतिरिक्त अवकाश की कल्पना युधिष्ठिर, अर्जुन, दुर्योधन, भीष्मादि द्वारा स्वजनवध और पराजय की आशंकादि के कारण की गयी है। (किन्तु है यह सब निर्मूल कल्पना मात्र)

यद्यपि अज्ञात कर्तृक उक्त निबन्ध में चतुर्थी, पञ्चमी पुष्य-आश्लेषा तक का उल्लेख प्राप्त है तथापि **'पुष्येण सम्प्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः' इति गदापर्वणि बलभद्रवाक्यात्'** - इत्यादि वाक्यों के अनुशीलन से यह ध्वनित होता है कि लेखक को श्रवण नक्षत्र में ही युद्धान्त अभीष्ट है। प्रतिवन्धवशात् निबन्ध पूर्ण न हो सका या पूर्ण रूप से उपलब्ध न हो सका। प्रकाशित अंश में मघा से श्रवण तक का अनुल्लेख है। आश्लेषा के पश्चात् मघा से श्रवण तेरहवें स्थान पर है। मार्गशीर्ष कृष्ण द्वितीया आर्द्रा तक ग्यारहवें युद्ध का उल्लेख है। इस तरह मार्गशीर्ष कृष्ण ६ मघा से मार्गशीर्ष शुक्ल ३ श्रवण तक कुल १३ दिनों में ७ युद्ध अवशिष्ट हैं। १३—७=६ अवकाश की कल्पना भगदत्त वध, अभिमन्युवध, द्रोणवध, दुःशासन-वृषसेन -कर्णवध और शल्यवध के उपलक्ष्य में की जा सकती है।

किन्तु श्रीनीलकण्ठाचार्य के अनुसार कौमुद का अर्थ कार्तिक है, रेवती के योग से कार्तिक शुक्ल द्वादशी की सिद्धि होती है। शरदन्त और हिमागम की दृष्टि से भी कौमुद का अर्थ कार्तिक ही उपयुक्त परिलक्षित होता है। भगवान् श्रीकृष्ण के उपप्लव्य नगर से रहित हस्तिनापुर के लिए

प्रस्थान के सन्दर्भ में 'कौमुदेमासि रेवत्यां शरदन्ते हिमागमे' (उद्योग० ८१।७) के स्थान में 'कार्त्तिके मासि रेवत्यां शरदन्ते हिमागमे' ऐसा पाठान्तर भी है जो स्पष्ट कार्तिक मास ही वताता है।

श्रीनीलकण्ठ ने जो कार्तिक शुक्ल द्वादशी में भगवद्यान, कार्तिकी के वाद मार्गशीर्ष कृष्ण पञ्चमी में सैन्य निर्याण और तत्पश्चात् मार्गशीर्ष शुक्ल में युद्धारम्भ माना है, वह इस व्यास वचन के अनुरोध से ही—

"अलक्ष्यः प्रभयाहीनः पौर्णमासीं च कार्तिकीम्।
चन्द्रोभूदग्निवर्णश्च पद्मवर्णे नभस्तले।।
(भीष्मपर्व २. २३)

उक्त व्यास-वचन में कार्तिक पूर्णिमा में चन्द्र के अलक्ष्य, प्रभाहीन और अग्निवर्ण होने का वर्णन है, वह युद्धारम्भ से पहले का है। 'अभूत्' यह अतीत का द्योतक है। ऐसी स्थिति में कार्तिक पूर्णिमा से पहले युद्धारम्भ मानना अनुपयुक्त है।

वाक्यशेष में कृष्ण चतुर्दशी का व्यास जी ने उल्लेख किया है—

"मांसवर्षं पुनस्तीव्रमासीत् कृष्णचतुर्दशीम्।"
(भीष्म० ३. ३२)

उक्त स्थल में कार्त्तिक पूर्णिमा के पश्चात् कृष्ण चतुर्दशी का निर्देश है। साथ ही उस दिन के विरूप चन्द्र के लिए आसीत्' शब्द का प्रयोग है, जो कि अतीत का द्योतक है। शुक्लादि मासानुसार कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी का और शुक्लान्त मासानुसार मार्गशीर्ष कृष्ण चतुर्दशी का ही संकेत है। ऐसा सिद्ध होता है। कृष्ण चतुर्दशी भी अमावास्या के लिए प्रयुक्त है; क्योंकि 'महाभारत युद्ध में भी राहु ने चतुर्दशी को पञ्चदशी (अमावास्या) बना दिया' ऐसा श्रीकृष्ण का वचन है—

चतुर्दशी पञ्चदशी कृतेयं राहुणा पुनः (शल्य० ३४. ६) सप्तमाच्चापिदिवसादमावास्या भविष्यति' (उद्योग० १४२।१८) यह भगवद्वचन भी मार्गशीर्ष अमावास्या का ही द्योतक है।

इस तरह सैन्यनिर्याण कार्तिकी के पश्चात् ही सिद्ध होता है और युद्धारम्भ मार्गशीर्ष कृष्ण चतुर्दशी से पूर्व नहीं सिद्ध होता।

साथ ही पुष्य से ठीक सातवें स्थान पर जिस प्रकार ज्येष्ठा नक्षत्र नहीं है, वैसे ही विशाखा भी। पुष्य के बाद आठवें स्थान पर विशाखा है, जब कि दशवें स्थान पर ज्येष्ठा। 'ऐन्द्रं तेजस्वि नक्षत्रं ज्येष्ठामाक्रम्य तिष्ठति' इस व्यास-वचन से स्पष्ट ही ज्येष्ठा ऐन्द्र नक्षत्र मान्य है। ऐसी स्थिति में **'सप्तमात्'** का अर्थ सप्ताह के कुछ ही दिन बाद समझना उपयुक्त है।

लेखक ने कार्तिक अमावास्या विशाखा से एक दिन पूर्व सातवाँ युद्ध माना है और पर्व के उपलक्ष्य में अमावास्या में युद्ध विराम माना है। किन्तु अमावास्या से पूर्व युद्धारम्भ मानने पर और अमावास्या के दिन अवकाश मान लेने पर **'संग्रामो युज्यतां तस्यां'** (उद्योग० १४२. १८) यह भगवद्-वचन सर्वथा उपेक्षित हो गया है।

फिर अनुराधा नक्षत्र में यादवों सहित कृतवर्मा का दुर्योधन पक्ष में सम्मिलन, श्रीबलराम का तीर्थयात्रा प्रारम्भ और श्रीकृष्ण सहित सात्यकि का पाण्डव पक्ष में सम्मिलन भी इसी तथ्य का अनुमापक है कि अनुराधा से पूर्व युद्धारम्भ नहीं हुआ। उक्त लेख में मघा में युद्धारम्भ का उल्लेख है। मघा से आठवें स्थान पर अनुराधा है। अनुराधा से पूर्व तो कृतवर्मादि का स्व-स्वपक्ष में सम्मिलित होना ही असिद्ध है, फिर युद्धारम्भ का तो प्रश्न ही कहाँ है ? अनुराधा में उक्त कृत्यों का उल्लेख महाभारत में इस प्रकार है—

"ततो मन्युपरीतात्मा जगाम यदुनन्दनः।
तीर्थयात्रां हलधरः सरस्वत्यां महायशाः॥
मैत्रनक्षत्रयोगे स्म सहितः सर्वयादवैः।
आश्रयामास भोजस्तु दुर्योधनमरिंदमः॥
युयुधानेन सहितो वासुदेवस्तु पाण्डवान्।
रौहिणेये गते शूरे पुष्येण मधुसूदनः॥"

(शल्य० ३५. १३–१५)

नैल०—मैत्रनक्षत्रयोगे अनुराधायाम् (१४)

पुष्येण हि पाण्डवेभ्यः प्रयाणमनुराधातस्तीर्थयात्रार्थमिति विवेकः (१५)

रही शकुनि पुत्र उलूक के सन्देश की बात ! 'लोहाभिसारो निर्वृत्तः' में प्रयुक्त 'निर्वृत्तः' शब्द का तात्पर्य 'अत्यन्त सन्निकटता' ही है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। 'देवीपक्षीयप्रतिपदमारभ्य दशमीपर्यन्तं क्रियमाणस्य लोहाभिसारकर्मणोऽचिरनिर्वृत्तत्वप्रतीतेः' इस वचन के अनुसार आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से दशमी तक लोहाभिसार कृत्य की सम्पन्नता मान लेने पर भी युद्धारम्भ मार्गशीर्ष शुक्ल से पूर्व सिद्ध नहीं होता है। विस्तार पूर्वक ऐसा पहले कहा जा चुका है। प्राप्त प्रसंग में इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार है—

लोहाभिसारो निर्वृत्तः कुरुक्षेत्रमकर्दमम्।
समः पन्था भृतास्तेऽश्वाः श्वो युध्यस्व सकेशवः ॥
(उद्योग० १६१. ११)

"लोहे के अस्त्र-शस्त्रों को बाहर निकालकर उन्हें तैयार करने आदि का कार्य पूरा हो गया है और नवरात्र के वार्षिक पूजन के पश्चात् युद्धारम्भ निमित्तक पूजनादि भी निवृत्त हो गया। कुरुक्षेत्र की कीचड़ सूख गयी है, मार्ग सम हो गया है और अश्व भी खूब हृष्ट-पुष्ट हैं, अतः कल सवेरे ही कृष्ण के साथ आकर (हमसे) युद्ध करो।"

युद्ध के उपयुक्त समय का संकेत श्रीकृष्ण वचन से भी प्राप्त है—

"ब्रूयाः कर्ण इतो गत्वा द्रोणं शान्तनवं कृपम्।
सौम्योऽयं वर्तते मासः सुप्राप सेन्धनः ॥
सर्वौषधिवनस्फीतः फलवानल्पमक्षिकः।
निष्पङ्को रसवत्तोयो नात्युष्णशिशिरः सुखः ॥"
(उद्योग० १४४–१६, १७)

"कर्ण ! तुम यहाँ से जाकर आचार्य द्रोण, शान्तनुनन्दन भीष्म और कृपाचार्य से कहना कि 'यह सौम्य (सुखद) मास चल रहा है। इसमें पशुओं के लिए घास और जलाने के लिए काष्ठ आदि वस्तुएँ सुगमता से मिल सकती हैं॥ सब प्रकार की औषधियों तथा फल-फूलों से वन की समृद्धि बढ़ी हुई है, धान के खेतों में खूब फल लगे हुए हैं, मक्खियाँ बहुत कम हो गयी हैं, धरती पर कीचड़का नाम नहीं है। जल स्वच्छ एवं सुस्वादु प्रतीत होता है, इस सुखद समय में न तो अधिक गर्मी है और न अधिक सर्दी ही॥

इस तरह प्राप्त प्रसंग में 'लोहाभिहारो (लोहाभिसारो) निर्वृत्तः (निवृत्तः)' का अभिप्राय नवरात्रि के भी व्यतीत हो जाने से है। आश्विन की नवरात्रि भी बीत चुकी है। युद्ध के सर्वथा उपयुक्त समय है। ऐसा कहने में ही उलूक का तात्पर्य्य है।

भीष्म-द्रोण-कर्ण और शल्य के नेतृत्वकाल में लगातार युद्ध की ही प्रामाणिकता और दैनिक अवहार के अतिरिक्त अवकाश की स्पष्ट अप्रामाणिकता **'श्वो योत्स्यामः परैः सह'** (भीष्मपर्व ६४.७०), **'तस्य त्वहानि चत्वारि क्षपा चैकास्यतो गता। तस्प चाह्नस्त्रिभागेन क्षयं जग्मुः पतत्रिणः॥'** (द्रोण० १९१ ९) और **'कौरवान् समरे राजन् प्रतियुद्ध्यस्व भारत॥ पञ्चमे दिवसे तात पृथिवी ते भविष्यति।'** (द्रोण० १८३. ६४,६५) इन वचनों के द्वारा पहले सिद्ध की जा कुकी है। ये ऐसे निर्णायक वचन हैं कि जिनके द्वारा युद्ध का निरन्तर चलते रहना ही सिद्ध होता है न कि बीच में किसी एक दिन का भी अवकाश।

कहीं लगातार तो कहीं दो-दो दिन और कहीं-कहीं पाँच-पाँच दिन युद्ध विराम स्वीकार करना, मघा से श्रवणोत्तर श्रवण तक एक तिथि को (कार्तिक कृष्ण दशमी की) वृद्धि मानकर लगभग ४१ दिनों में कुल १८ दिन युद्ध मानना और लगभग २३ दिन विराम, यह कथमपि उचित नहीं लगता।

इस गणना के अनुसार युद्ध के आठवें, नवें और ग्यारहवें दिन क्रमशः कार्तिक शुक्ल सप्तमी, नवमी और मार्गशीर्ष कृष्ण द्वितीया सिद्ध होती है। इन दिनों के युद्ध में सायं अन्धकार का जो उल्लेख महाभारत में है वह इस गणना के अनुसार सर्वथा व्यर्थ और मिथ्या भी सिद्ध होता है जो कथमपि उचित नहीं है।

५. प्रा० ग० वा० कवीश्वर

मतनिरूपण

ग० वा० कवीश्वर लेखक 'महाभारत युद्ध के कालगणनात्मक रहस्य' [१९] ने युद्धारम्भ श्रीकृष्ण वचन के अनुसार और युद्धान्त श्रीबलराम-वचन के अनुसार माना है। इन्होंने 'चित्रा' को **'इन्द्रस्य चित्रा'** (तैत्तिरीय

---

१९. सन् १९७२; ३४ जानकीनगर, इन्दौर—१, म० प्र०

संहिता, ४-४-१० ; तैत्ति० ब्रा० १५१) के अनुसार ऐन्द्र नक्षत्र माना है। युद्ध घोषणा नक्षत्र 'पुष्य' से चित्रा (एक नक्षत्र की वृद्धि मानकर) सातवें स्थान पर है। 'सप्तमाच्चापिदिवसादमावास्या भविष्यति' इस वचन के अनुसार मार्गशीर्ष अमावास्या चित्रा में युद्धारम्भ और 'पुष्येण सम्प्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः' (शल्य० ३४, ६) इस बलभद्रवचन के अनुसार युद्धारम्भ के पैंतीसवें दिन पौष शुक्ल पञ्चमी श्रवण में युद्धान्त माना है। शल्यवध के दूसरे दिन दुर्योधनवध और सौप्तिक संहार माना है।

इनके मत का उद्धरण और चित्रण इस प्रकार है—

महाभारत के कालगणनात्मक कूटों के मूल में इस तथा अन्य भी सम्बन्धित रहस्यों के सुसंगत गूढ़ उपयोग से अब स्पष्ट हो रहा है कि यह पूरा प्रचण्ड महाकाव्य एक ही अति प्रतिभा सम्पन्न महापुरुष की, फिर उसका वास्तविक नाम, धाम आदि कुछ भी हो, रचना होनी चाहिये ; न कि दो या तीन लेखकों की, जैसा आम तौर पर माना जाता है। क्या कौरव-पाण्डव युद्ध वास्तव में एक ऐतिहासिक घटना थी और यदि थी, तो क्या उसका कालानुक्रम महाभारत काव्य में मूल घटना के अनुसार ही बताया है या महाकवि द्वारा सहेतुक या 'अज्ञानवश' परिवर्तित किया गया है, इसका निश्चित उत्तर तो तभी दिया जा सकेगा, जब इस विषय पर अन्य कोई पर्याप्त ठोस आधार उपउब्ध होगा। (पृष्ठ २९, ३०)

महाभारत विश्व साहित्य में एक अद्वितीय ग्रन्थ है। इसकी रचना के विषय में एक मनोरंजक दंतकथा है। इसके रचयिता महर्षि व्यास माने जाते हैं। जब उन्होंने इस महाकाव्य का पूरा कथानक मन में तैयार कर लिया तब काव्य रूपमें उसको प्रत्यक्ष लिखने वास्ते उन्होंने साक्षात् श्रीगणेश जी से अनुरोध किया। गणेश ने शर्त लिखी कि उनकी लेखनी, अर्थात् महर्षि कवि की काव्य रचना, अविरत चलती रहना चाहिये। उत्तर में महाकवि ने भी शर्त रखी कि लिखने वाले गणेश जी ने प्रत्येक श्लोक उसका वास्तविक सुसंगत अर्थ समझने के बाद ही लिखना चाहिये। इस विलक्षण सन्दर्भ में महर्षि व्यास ने अपनी काव्य रचना में स्थान-स्थान पर ऐसे गहनकूट श्लोक (१८८०, ८१) करना प्रारम्भ किया कि उनका गूढ़ार्थ समझने में विद्या की देवता गणेश को भी कुछ समय रुकना पड़ता और उतने में महाकवि आगे के कई श्लोक तैयार कर रखते। इस प्रकार रचना और लेखक का

क्रम अविरत चलता रहा। इस 'दन्तकथा' २० में सार हो या न हो, यह तो सर्व प्रसिद्ध है कि महाभारत काव्य में उसके महान् रचयिता ने आह्वान-पूर्वक कई दुर्गम गूढ़ श्लोक रखे हैं, जिनका वास्तविक आशय खोजने के प्रयास विद्वानों द्वारा सदियों से किये जा रहे हैं (पृष्ठ १)

इस मत में कार्तिक शुक्ल द्वादशी या त्रयोदशी रेवती नक्षत्र में श्रीकृष्ण का शान्तिवार्ता के उद्देश्य से उपप्लव्य नगर से हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान मान्य है। मार्गशीर्ष कृष्ण सप्तमी पुष्य' में उपप्लव्य नगर में श्रीकृष्ण लौट आते हैं। उसी दिन बलराम जी तीर्थयात्रा प्रारम्भ करते हैं। मार्गशीर्ष कृष्ण चतुर्दशी 'हस्त' में वेदव्यास संजय को दिव्यदृष्टि प्रदान कर धृतराष्ट्र के युद्धवार्ताहरके रूप में नियुक्त करते हैं। 'आश्लेषा' से उत्तरा-फाल्गुनी' तक एक नक्षत्र की वृद्धि मानकर मार्गशीर्ष अमावास्या चित्रा में प्रथम युद्ध होता है। यही गीताजयन्ती की तिथि भी है।

मार्गशीर्ष शुक्ल द्वितीया में दूसरा युद्ध, चतुर्थी में चौथा युद्ध, अष्टमी में पाँचवाँ युद्ध, दशमी में छठा युद्ध, द्वादशी में सातवाँ युद्ध, चतुर्दशी में आठवाँ युद्ध, माना है।

पौष कृष्ण प्रतिपदा में नवाँ युद्ध, तृतीया में दसवाँ युद्ध 'भीष्म पतन' होता है। पौष कृष्ण पंचमी में ग्यारहवाँ युद्ध, सप्तमी में बारहवाँ युद्ध माना है।

लेखक ने अमावास्या में चन्द्रमा अनुराधा नक्षत्र में सिद्ध करने के लिए पौष कृष्ण में एक तिथि के क्षय की कल्पना कर अष्टमी का क्षय माना है।

२०—यहाँ श्रीकवीश्वर जी ने श्रीगणेश-व्यास संवाद को 'दन्त कथा' लिख कर प्रथमग्रास में ही मक्षिकापात कर दिया। इतना भी विचार नहीं किया कि जिस महाभारत को ये ऐतिहासिक तथ्य सिद्ध करना चाहते हैं, उसी महाभारत में लिखा संवाद 'दन्तकथा' कैसे हो सकता है? यदि वही 'दन्तकथा' सिद्ध हो जायगा तो सारा महा-भारत 'दन्तकथा' क्यों नहीं सिद्ध होगा? फिर उस पर निबन्ध लिखना भी क्या उचित होगा? 'उस दन्तकथा में सार हो या न हो?' ऐसा लिखना निरा अज्ञान ही है। साथ ही जब दन्तकथा ही है तब उसके लेखक महान् कैसे?

पौषकृष्ण दशमी में तेरहवाँ युद्ध, अभिमन्यु वध माना है। पौषकृष्ण द्वादशी में लड़ाई का चौदहवाँ दिन माना है । इसी दिन जयद्रथवध और रात्रियुद्ध भी माना है। पोष कृष्ण त्रयोदशी में पन्द्रहवाँ युद्ध और द्रोणवध माना हे। पौष अमावास्या अनुराधा में सोलहवाँ युद्ध माना है।

पौष शुक्ल द्वितीया में सत्रहवाँ युद्ध और कर्णवध माना है। पौषशुक्ल चतुर्थी मध्याह्न में शल्यवध माना है। इसे साढ़े सत्रहवाँ युद्ध माना है। पौषशुक्ल पंचमी श्रवण में लडाई का अठारहवाँ दिन माना है। इसी दिन आधा दिन भीम-दुर्योधन गदायुद्ध और बलराम यात्रा की समाप्ति मानी है।

शेष मध्य के दिनों में अवकाश माना है।

पौष पूर्णिमा मृग नक्षत्र में न होकर आर्द्रा में हो, इसके लिए पंचमी की वृद्धि मान कर पौष शुक्ल द्वितीय पंचमी में सामूहिक दाहक्रिया मानी है।

पौष शुक्ल षष्ठी से माघ शुक्ल पंचमी तक अर्थात् तीस दिनों तक 'मासमात्रं बहिः पुरात्' (शान्ति० १।२) के अनुसार पाण्डवों द्वारा अशौच पालन माना हैं।

माघ शुक्ल षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी में पाण्डवों का हस्तिनापुर में प्रवेश और निवास माना है। युधिष्ठिर का राज्याभिषेक भी मान्य है।

माघ शुक्ल दशमी में युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण द्वारा भीष्म से धर्मोपदेश की विनती और माघ शुक्ल एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी एवं पूर्णिमा में भीष्म द्वारा महान् धर्मोपदेश माना है।

इस तरह पौष कृष्ण तृतीया से माघ पूर्णिमा की रात्रि तक भीष्मजी की शरशय्या की ५८ वीं रात्रि की समाप्ति मानकर पूर्णिमा को उषःकाल में तीन मुहूर्त रात्रि शेष रहते महात्मा भीष्म का प्राणोत्क्रमण माना है। 'त्रिभागशेषः' का इनके मत में यही अर्थ है। (पृष्ठ ५०-५२।

(१) गीताजयन्ती उक्त मत की पुष्टि में लेखक ने निम्न प्रकार की युक्तियाँ दी हैं—'सप्तमाच्चापि दिवसात्' (उद्योग० १४६. १७) यह श्रीकृष्ण की युद्धारम्भ सम्बन्धी घोषणा है। महाभारत के अनुसार उस दिन 'पुष्य' नक्षत्र सिद्ध होता है। घोषणा दिनसे वह अमावास्या सात रोज बाद

आनेवाली थी। पूर्णिमान्त मास पद्धति से वह अमावास्या मार्गशीर्ष की और अमावास्यान्त पद्धति से कार्तिक की ही कही जावेगी। दोनों पद्धतियों में शुक्लपक्ष में भेद नहीं आता; किन्तु कृष्णपक्ष में एक माह का फरक हो जाता है। उस अमावास्या को कौरव-पाण्डव युद्ध वस्तुतः प्रारम्भ नहीं हुआ, ऐसा महाभारत में कहीं भी लिखा नहीं है ऐसा ये मानते हैं। युद्धारम्भ के ही दिन अर्जुन को गीता का उपदेश दिया गया, यह तो निर्विवाद है। अतः स्पष्ट है कि स्वयं श्रीकृष्ण वचनानुसार गीतोपदेश अमावास्या को ही किया गया। (पृ० ५-६)

(२) **बलराम की तीर्थयात्रा**—इसके बाद बलरामकी तीर्थयात्राके दिनों की समस्या लीजिए। कौरव-पाण्डवों के आपसी स्वजन युद्ध से बलराम अत्यन्त रुष्ट थे। उन्होंने श्रीकृष्ण को उस युद्ध में किसी प्रकार से भी सहभागी न होने के लिए समझाने का प्रयास किया। किन्तु श्रीकृष्ण यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से लड़ना नहीं चाहते थे, फिर भी अर्जुन का सारथ्य करना उन्होंने मान्य कर लिया था। श्रीकृष्ण ने बलरामकी बात न मानने पर बलराम तत्काल सरस्वती नदी के किनारे के आस-पास तीर्थयात्रा पर चले गये। वह तीर्थयात्रा उसी दिन प्रारम्भ हुई जिस रोज श्रीकृष्ण हस्तिनापुरमें युद्धारम्भ तिथि घोषित कर तुरन्त पाण्डवों के पास उपप्लव्य नगर में वापिस चले आये थे। बलराम की पाण्डवों से तथा श्रीकृष्ण से उस दिन उपप्लव्य में ही भेंट हुई थी। महाभारतकार स्पष्ट कहते हैं कि वह तीर्थ यात्रा पुष्य नक्षत्र पर ही प्रारम्भ हुई थी और बयालीसवें दिन युद्ध के अन्तिम रोज भीम-दुर्योधन गदायुद्ध के समय समाप्त हुई, जब चन्द्रमा श्रवण नक्षत्र में था। इस सम्बन्ध में स्वयं बलराम का यह वचन है—'**चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च**..... **द्रष्टुकामोऽस्मि माधव**' (शल्यपर्व ३४ ६, ७) यात्रा के ये बयालीस दिन अभी तक कूट बने हुए थे। यात्रा अमावास्या के सात दिन पूर्व प्रारम्भ हुई थी (पृष्ठ ६, ७)। उन सात दिनों में हम यदि युद्ध काल के अब पैंतीस दिन जोड़ते हैं तो यात्रा की समाप्ति गदायुद्ध के समय बराबर बयालीसवें दिन पर होती है; जैसा कि स्वयं उनका शल्यपर्व में वचन है। नक्षत्रों का हिसाब भी बिलकुल ठीक बैठता है। पुष्य से श्रवण पन्द्रहवें स्थान पर है। अतः सत्ताईस नक्षत्रों का एक चक्कर प्रथम पूर्ण कर दूसरे चक्कर में श्रवण पुष्य से ठीक बयालीसवें स्थान पर आता है। (पृष्ठ २२)

(३) **पैंतीस दिनों का युद्ध काल**—यह ठीक है कि महाभारत में कई

स्थानों पर युद्ध दिन अठारह बताये हैं। किन्तु उसमें रहस्य यह है कि वह प्रत्यक्ष लड़ाई का काल है। युद्ध काल की पूरी तिथियों की गणना करने के लिए इनके दरम्यान एक-एक अवकाश दिन जोड़ना आवश्यक है। अठारह दिनों के बीच ऐसे अवकाश दिन सत्रह होंगे। चौदहवें रोज लड़ाई रातभर भी चलती रही और वह रात्रि समाप्त होते ही बिना अवकाश दिन के सीधी पन्द्रहवें रोज में प्रवेश कर गई। अन्ततोगत्वा उस दिन द्रोणाचार्य का रणभूमि में निधन हो गया। ऊपर स्पष्ट किये अनुसार उन में एक अपवाद भी था। अतः सोलह अवकाश दिन मिलकर कुल चौंतीस होंगे। पुनः शल्य-वध के दूसरे रोज गदायुद्ध हुआ। इस तरह प्रत्यक्ष लड़ाई के अन्तिम अठा-रहवें रोज का विभाजन दो दिनों में करने की खूबी से पूरा युद्धकाल फिर अन्तिम रूप से पैंतीस दिनों का होता है। (पृ० २२, १७)

इस प्रकार युद्धारम्भ की अर्थात् गीताजयन्तीकी, तिथि स्वयं श्रीकृष्ण के वचनानुसार उक्त अमावास्या ही है। उस अमावास्या से (अवकाश दिन मिलाकर) उन्नीसवें दिन भीष्म पतन हुआ, जिस रोज आगामी कृष्णपक्ष की तृतीया थी। उसके बाद उसी पक्ष में प्रत्यक्ष लड़ाई के चौंदहवें दिन, जिसकी तिथि कृष्ण द्वादशी थी, शाम को जयद्रथ वध हुआ। इसी रोज उत्तर रात्रि में, आगामी सूर्योदय के करीब तीन मुहूर्त्त पूर्व, चन्द्रोदय बराबर सिद्ध होकर वह कूट भी हल हो जाता है। (पृ० २३)

(४) नक्षत्र—युद्धारम्भ के, अर्थात् गीतोपदेश के दिन चन्द्रमा किस नक्षत्र में था ? इसकी भी विद्वानों द्वारा काफी चर्चा होती आ रही है। स्वयं महाकवि ने इसका एक महत्त्वपूर्ण संकेत रख छोड़ा है। श्रीकृष्ण की युद्धा-रम्भ तिथि की घोषणा में उस अमावास्या को 'शक्रदेवताम्' कहा है। अर्थात् उस अमावास्या के नक्षत्र की देवता इन्द्र थी। प्राचीन भारतीय साहित्य में प्रत्येक नक्षत्र की देवता दी गई है। न उद्योगपर्व में, न पूरे महाभारत में अन्यत्र भी, ज्येष्ठा का इस सम्बन्ध में कोई उल्लेख है। बात इतनी ही है कि उद्योगपर्व का जो ऊपर उद्धृत किया श्लोक है उसमें श्रीकृष्ण उस अमावास्या को 'शक्रदेवताम्' (उद्योग० १ २।१) बताते हैं। और, ज्येष्ठा एक ऐसा नक्षत्र है, जिसकी देवता इन्द्र है। अतः विद्वानों का अनुमान है कि उस अमावास्या को ज्येष्ठा नक्षत्र ही होगा। किन्तु यह तो निर्विवाद है कि हस्तिनापुर में जिस दिन श्रीकृष्ण ने यह घोषणा की थी उस दिन से उक्त अमावास्या सात दिन बाद थी। घोषणा के रोज पुष्य नक्षत्र था, यह भी

महाभारत में स्पष्ट कहा गया है। पुष्य से ज्येष्ठा १० स्थान आगे है। तो क्या सात रोज में चन्द्रमा नक्षत्र मण्डल में दस स्थान लाँघ लेगा ? यह तभी सम्भव होगा जब हम सात रोज में ही तीन नक्षत्र लोप की असम्भव कल्पना मान लेंगे। (पृ० २४, २५)

फिर वास्तव में महाकवि द्वारा संकल्पित युद्धारम्भ नक्षत्र कौन-सा था ? वह चित्रा था। इसमें कूट यह है कि ज्येष्ठा तथा चित्रा दोनों की ही देवता इन्द्र बताई गई है (तैत्तिरीय संहिता ४-४-१० ; तैत्तिरीय ब्राह्मण १-५-१)। पुष्य से चित्रा छः स्थान दूर है ; अतः घोषणा दिन और युद्धारम्भ के बीच के सात दिनों में एक नक्षत्र वृद्धि मानकर (जो पूर्णतया सम्भव है) अमावास्या को चित्रा नक्षत्र आता है (पृ० २६)।

(५) तिथिनिर्णय—श्रीकृष्ण वचन **'अमावास्या भविष्यति'** के अनुसार युद्धारम्भ के दिन अमावास्या थी। इधर **"ततः सैन्येषु भग्नेषु मथितेषु च सर्वशः। प्राप्ते चास्तं दिनकरे न प्राज्ञायत किंचन ॥** (भीष्म० ४९।५२)" इस वचन के अनुसार सूर्यास्त होते ही किसी को कुछ भी नहीं दिखाई देता था; अर्थात् घोर अन्धकार छा गया था। क्या यह मार्मिक संकेत अमावास्या को सिद्ध तथा शुक्ल एकादशी (या त्रयोदशी) का पूर्णतया खण्डन नहीं करता ? इसके बाद लड़ाई के दूसरे, तीसरे, चौथे तथा पाँचवें रोज भी सूर्यास्त के बाद लड़ना बन्द हो गया; किन्तु वहाँ महाभारतकारने अन्धकारका वर्णन नहीं किया है। अर्थात् चन्द्रोदय तो होगा, किन्तु उसका प्रकाश इतना नहीं होगा कि उसमें लड़ाई चलायी गयी। छठे रोज भी सूर्यास्त के बाद अन्धकार का उल्लेख नहीं है ; किन्तु लड़ाई कुछ समय और चालू रहने का सर्व प्रथम उल्लेख मिलता है। **मुहूर्तास्तमिते सूर्ये चक्रुर्युद्धं सुदारुणम्'** (भीष्म० ७९.६०) सूर्यास्त होने के बाद एक मुहूर्त्त तक भयंकर युद्ध (योद्धाओं ने) किया।' सातवाँ रोज लीजिए। उस दिन भी सूर्यास्त के बाद लड़ाई कुछ समय और चालू रही, जिसके वर्णन में अन्धकार का वर्णन नहीं है। यह गणना भी शुक्ल द्वादशी का समर्थन करती है।

इस प्रकार लड़ाई के विभिन्न दिनों के सूर्यास्त के ये मार्मिक संकेत तिथि निर्णय की दृष्टि से विशेष महत्त्व के हैं। आठवें दिन के युद्ध स्थगन के उल्लेख में संजय धृतराष्ट्र से कहता है—

परस्परं समासाद्य तव तेषां च संयुगे।
तेषु श्रान्तेषु भग्नेषु मृदितेषु च भारत।।
(भीष्मपर्व ९६. ७८)

रात्रिः समभवत् तत्र नापश्याम ततोऽनुगान्।
ततोऽवहारं सैन्यानां प्रचक्रुः कुरुपाण्डवाः ।।७९।।
रजनीमुखे सुरौद्रे तु वर्तमाने महाभये।
अवहारं ततः कृत्वा सहिताः कुरुपाण्डवाः।
न्यविशन्त यथाकालं गत्वा स्वशिबिरन्तदा ।।८०।।

यहाँ कहे अनुसार उस समय संजयादि योद्धाओं को अपने अनुचर-यानी योद्धाओं के लिए धनुष बाणादि की अतिरिक्त सामग्री लेकर उनके पीछे-पीछे चलने वाले सेवक दिख नहीं रहे थे। तो क्या इस समय सब दूर अन्धेरा छा गया था ? किन्तु हमारी गणना के अनुसार तो उस रात्रि को शुक्ल चतुर्दशी थी। फिर यह विरोध कैसा ?

यहाँ प्रारम्भ में ही उल्लेखनीय एक बात यह है कि इन श्लोकों में 'नापश्याम ततोऽनुगान्' के स्थान पर महाभारतके कुछ पोथियोंमें नापश्याम ततोरणम्' ऐसा भी पाठभेद है। पूनाकी भांडारकर सस्था ने उसीको प्रमाणित माना है। किन्तु उसका सीधा अर्थ यही होगा कि उससमय योद्धाओंको रणक्षेत्र भी दृश्यमान न हो रहा था (इतना घोर अन्धकार छा गया था) और यह वर्णन शुक्ल चतुर्दशी के स्पष्टतया विरोध में है। अतः 'नापश्याम ततोऽनुगान्' पाठ का विशेष रूप से विचार करके देखें।

इस संबन्ध में सर्वप्रथम तथ्य यह है कि छठे तथा सातवें दिनों के समान, इस आठवें दिन भी लड़ाई सूर्यास्त के बाद कुछ समय पर चालू रही थी। भगदत्त-घटोत्कच संग्राम सूर्यास्त के बाद ही हुआ इस में सन्देह नहीं। घटोत्कच ने भगदत्त पर जो त्रिशूल फेंका था वह 'विस्फुलिंगमालाभिः समन्तात् परिवेष्टितः' (भीष्म० ८५ ६०) यानी 'अग्निस्फुल्लिगों की माला से चारों ओर घिरा हुआ' दिख रहा था। ऐसी चिनगारियाँ सूर्यास्त के बाद ही दृश्यमान हो सकती हैं। फिर यह संग्राम चलते 'रात्रिः समभवत् तत्र' ऐसा कहा है, जिससे भी उसका सूर्यास्तोपरान्त होना सिद्ध होता है। यद्यपि घटोत्कच भगदत्त संग्राम इस प्रकार सूर्यास्त के बाद हुआ था, फिर भी उसके वर्णन में अन्धकार का कोई उल्लेख नहीं मिलता। अर्थात् पूर्व के दो-दिनों के

समान यहाँ भी स्वाभाविक ही चन्द्रप्रकाश सूचित होता है। जैसा कि हमने देखा ही है, जहाँ अन्धकार होता है वहाँ महाकवि उसका स्पष्ट उल्लेख करते हैं।

किन्तु यदि सूर्यास्त के बाद उस रोज लड़ाई चालू थी और चन्द्र-प्रकाश भी था तो कुछ समय बाद 'नापश्याम ततोऽनुगान्' कैसा कहा ?

महाभारत ने यह भी लिख रखा है कि उस युद्ध में कौरव-सेना रणक्षेत्र के पश्चिम भाग में स्थित थी।

"ते समेत्य यथान्यायं धार्तराष्ट्रा महाबलाः।
कुरुक्षेत्रस्य पश्चार्धे व्यवातिष्ठन्त दंशिताः॥"
(उद्योगपर्व १९५. ११)

"वहाँ पहुँचने पर शूर कौरव-सेना शस्त्रों से सुसज्ज होकर कुरुक्षेत्र के पश्चिम भाग में यथोचित रीति से स्थित हुई।"

इसी का मतलब यह होता है कि लड़ते समय कौरव सेना का मुँह पूर्व दिशा की ओर होता था। इस सबका ठीक विचार करने पर संजय के उन उद्गारों का निम्न आशय स्पष्ट होता है। (शुक्ल चतुर्दशी के) उस रात्रि प्रारम्भ काल में स्वच्छ चन्द्रप्रकाश सामने से हमारे ऊपर आ रहा था और इसलिये हमारी स्वयं की ही छाया हमारे पीछे हमारे अनुचरों पर गिरकर वे हमें ठीक प्रकार से नहीं दिखने लगे। और वह छाया भी एक दो व्यक्तियों की नहीं, अपितु अगणित हाथी, रथ आदि से युक्त पूरी विशाल सेना की। इस प्रकार 'नापश्याम ततोऽनुगान्' यह सूक्ष्म वर्णन कौरव सेना की पीछे गिरने वाली छाया सूचितकर, आठवें दिन की शुक्ल चतुर्दशी से पूर्णतया सुसंगत है। और इस प्रबन्ध में व्यक्त होने वाले महाभारत युद्ध के कुल कालगणनात्मक रहस्य एवं युद्धारम्भ घोषणा से भीष्मनिधन तक की सारी तिथि गणना यदि ठीक है तो लड़ाई के आठवें दिन के वर्णन में 'नापश्याम ततोरणम्' यह महाभारतकार का मूल पाठ होने का सम्भव बहुत ही कम होकर, 'नापश्याम ततोऽनुगान्' ही मूल पाठ होना चाहिये।

नवें रोज कृष्णपक्ष की प्रतिपदा थी। इस रोज के वर्णन में सूर्यास्त के बाद संध्या 'घोरा' प्रतीत हो रही थी, ऐसा दो बार कहा है—सन्ध्या-समभवत्घोरा नापश्याम ततोरणम्', 'तस्मिन् रात्रिमुखे घोरे' (भीष्मपर्व

१०७।१, १०)। स्पष्ट है कि कृष्णपक्ष की उस प्रतिपदा को सूर्यास्त वाद का समय चन्द्रप्रकाश के अभाव में 'घोर' प्रतीत हो रहा था [२१]।

इसी प्रकार लड़ाई के ग्यारहवें रोज सूर्यास्त पर सम्पूर्ण अन्धकार छा गया था तमसा चाभिसंवृते' (द्रोण० १६.४९) यह कृष्ण पञ्चमी थी, जिससे यह वर्णन बराबर लागू होता है। अन्त में लड़ाई का चौदहवाँ दिन देखिये। महर्षि व्यास ने इसी रात्रि के उत्तरार्ध में सूर्योदय के तीन मुहूर्त्त पूर्व चन्द्रोदय होना वताया है (द्रोणपर्व १८६ १)। कृष्ण द्वादशी का चन्द्रोदय करीब उसी समय। पौषशुक्ल द्वितीया लड़ाई के सत्रहवें दिन कर्णवध हुआ इस रोज सूर्यास्त वाद श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा युधिष्ठिर मृत कर्ण को प्रत्यक्ष देखने हेतु फिर रणभूमि पर गये। उस समय उन्होंने 'दीपों के प्रकाश में' वह शव देखा (कर्ण० ९६ ३८)। अर्थात् अत्यन्त क्षीण चन्द्रप्रकाश था, जो द्वितीया का समर्थन करता है। (पृ० ३२-३७, ५२)।

(६) अवकाश—तेरहवें रोज कौरव सेना के अति जटिल चक्रव्यूह से बाहर निकलने का असफल प्रयास करते हुए वीर बालक अभिमन्यु का जयद्रथ, द्रोण आदिने मिलकर वध किया। उस दिन सूर्यास्त पर ही युद्ध स्थगित हुआ। रणभूमि से लौटने पर अर्जुन को अभिमन्युवध का अत्यन्त दुःखद समाचार मिला। बदले की भावना से व्याप्त होकर उसने तत्काल प्रतिज्ञा की कि लड़ाई के अगले ही रोज सूर्यास्त के पूर्व वह जयद्रथ का वध करेगा अन्यथा स्वयं अग्निप्रवेश करेगा। गुप्तचरों द्वारा उसकी तुरन्त सूचना मिल-कर जयद्रथ ने दुर्योधन के पास जाकर किसी भी परिस्थिति में पूर्ण संरक्षण का आश्वासन प्राप्त किया। इसके बाद वे दोनों ही उसी सम्बन्ध में सेनापति द्रोण के पास गये। उस समय रात्रिकाल था। इधर 'दुःख शोक से ग्रस्त होकर सर्प समान लम्बी साँस लेते हुए, श्रीकृष्ण एवं अर्जुन को उस रात्रि नींद नहीं आई' (द्रोण० ७७. १)। इस रात्रि के वाद सूर्योदय के समय वे दोनों सन्तप्त थे तथा अनेक अशुभ शकुन हो रहे थे (द्रोण० ७७।२-८)। इस समय अर्जुन ने श्रीकृष्ण से निवेदन किया कि वे जाकर सुभद्रा तथा उत्तरा का सान्त्वन करें। अतः श्रीकृष्ण अर्जुन के शिबिर में गये और

२१—यहाँ श्रीकवीश्वर अपनी मिथ्या वातों को सिद्ध करने के अभिनिवेश में यह भूल जाते हैं कि कृष्णपक्ष की प्रतिपदा में रात्रि होते ही पूर्णिमा जैसा प्रकाश होता है न कि घोर अन्धकार।

सुभद्रा से कहा कि 'कल तुम सुनोगी कि रण में जयद्रथ का शिर काट कर सम्मन्त पञ्चकक्षेत्र के बाहर फेंक दिया गया है। शोक छोड़ दे तथा रोना बन्द कर ।।' (द्रोण० ७७. ११, १८-२०)।

अब यहाँ अत्यन्त महत्त्व का प्रश्न यह है कि इसमें श्रीकृष्ण द्वारा उल्लेखित रात, जिसके बीतने पर जयद्रथवध होने वाला था, कौनसी थी ? ऊपर के विस्तृत विवरण से पाठकों को ज्ञात हो ही गया है कि अभिमन्यु वध तथा अर्जुन-प्रतिज्ञा के पश्चात् एक रात्रि तो निकल ही चुकी थी, स्पष्टतः श्रीकृष्ण द्वारा उल्लेखित वह रात्रि उस अवकाश दिन की थी, जिस दिन के प्रातःकाल में श्रीकृष्ण का सुभद्रा से यह सम्भाषण हो रहा था। सुभद्रा, द्रौपदी, उत्तरा आदि का सान्त्वन कर श्रीकृष्ण फिर अर्जुन के पास आये और वहाँ से वे तथा अन्य राजा लोग अपने-अपने शिविरों में चले गये। यदि वह भी प्रत्यक्ष लड़ाई का ही दिन होता तो इस सम्भाषण के बाद श्रीकृष्ण तथा अर्जुन आदि सब योद्धा अपने शिबिरों में जाते या सीधे रणक्षेत्र की ओर ? उक्त घटनाओं के बाद फिर एक रात्रि और आई, जिसमें श्रीकृष्णने अर्जुन की शय्या के पास भगवान् शंकर की पूजा की सामग्री रखवाकर उसको शान्त चित्त से सो जाने को कहा तथा वे स्वयं भी सो गये (७९. ६, ७)। इस (द्वितीय) रात्रि के पूर्वार्ध में श्रीकृष्ण को नींद लगी ; किन्तु मध्यरात्रि में वे जाग उठे और अर्जुन की प्रतिज्ञा का तीव्र स्मरण होकर उस विषय में सारथि दारुक से उनका काफी समय तक सम्भाषण होता रहा। (७९।२०, २१)। इधर अर्जुन को भी उस रात्रि में निद्रा आकर उस ने एक 'स्वप्न' देखा, जिसमें श्रीकृष्ण उसके पास आये। इसी स्वप्नावस्थामें श्रीकृष्णने अर्जुनको महा प्रतापी पाशुपतास्त्र प्रदान किया (अध्याय ८०, ८१)। हर्षित होकर श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों तत्काल शिबिर में लौटे। इसके बाद फिर द्वितीय सूर्योदय व प्रातःकाल भी आया। सेना उस समय लड़ाई के लिए तयार हो रही थी। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर के पास आकर अर्जुन को प्रतिज्ञा पूर्ति का आश्वासन दिया।

लड़ाई के सत्रहवें दिन कर्णवध हुआ। प्रमुख कौरव योद्धा उस पूर्व रात्रि में रणभूमि से करीब आठ कोस दूर हिमालय पर्वत पर विश्राम के लिए गये। (शल्य० ५. ४८, ४९, ५०, ५१)। राजाओं ने दुर्योधन से प्रस्ताव किया कि युद्ध आगे चलाने के लिए कर्ण के स्थान पर प्रथम किसी योग्य व्यक्ति को सेनापति नियुक्त किया जावे। अश्वत्थामा ने शल्य का नाम

प्रस्तावित किया। दुर्योधन तथा अन्य उपस्थित राजाओं ने उसका सहर्ष अनुमोदन किया। शल्य ने भी उसकी सम्मति देकर आत्म विश्वास के साथ शत्रु विनाश का आश्वासन दिया। इसके अनन्तर शल्य का विधिवत् अभिषेक किया गया। हिमालय का विश्राम स्थान कुरुक्षेत्र से सोलह मील दूर था। यदि वह अभिषेक तथा हर्षनाद वहीं होता तो युधिष्ठिर को उसकी जानकारी गुप्तचरों से मिलती न कि स्वयं के कानों से 'सैन्यस्य तव तं शब्दं श्रुत्वाराजा युधिष्ठिरः' राजा युधिष्ठिर ने उस शब्द को सुना। इस अभिषेक के बाद एक और रात्रि गई थी, जिसमें कौरव योद्धा प्रसन्न चित्त थे; जहाँ उसकी पूर्व रात्रि में वे अस्वस्थ एवं उद्विग्न थे। रात्रि बीतने के बाद अरुणोदय पर ही युद्ध पुनः प्रारम्भ हो गया (८. ४५)। यदि वह रात्रि वही होती तो यह संभव नहीं था।

शल्य को अभिषेक होने पर कौरव सेना के महान् हर्षनाद सुनते ही युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से तत्काल विचार विनिमय किया। उत्तरमें श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को अन्तिम विजय के लिए आश्वस्तकर स्वयं युधिष्ठिर को ही लड़ाई में शल्य का वध करने का परामर्श दिया। इस मार्ग दर्शन के बाद श्रीकृष्ण 'सायंकाल' में अपने शिबिर लौटे 'जगाम शिबिरं सायं पूज्यमानोऽथ पाण्डवैः' (७. ४२)। निष्कर्ष अनिवार्य है कि यह युधिष्ठर श्रीकृष्ण संवाद बीच के अवकाश दिन पर ही हुआ था। (पृ० ३८–४७)।

'अद्य', 'श्वः', 'ततः' इन शब्दों को देखकर पाठक सहज ही आज, आगामीकाल और तदुपरान्त अर्थ लेते हैं। किन्तु यह सब केवल महापुरुष द्वारा निर्मित भ्रम है। 'अद्य' का मतलब यहाँ लड़ाई पुनः प्रारम्भ होते ही या लड़ाई के अगले दिन है। 'ततः' का अर्थ 'प्रथम घटना के बाद द्वितीय घटना के बीच कुछ समय गया' ऐसा है। 'श्वः' का वास्तविक अर्थ 'लड़ाई का आगामी दिवस, बीच में अवकाश दिवस छोड़कर हो सकता है। जिस प्रकार किसी शासकीय कार्यालय की दृष्टि से शनिवार का कल (आगामी) रविवार ही होना आवश्यक न होकर आगामी दिन अर्थात् सोमवार भी हो सकता है (पृ० ४८)।

शल्यपर्व में बलराम की तीर्थयात्रा का विस्तृत वर्णन है। उनमें वे जिन तीर्थस्थानों पर गये उनके भी क्रमशः पूरे नाम दिये हैं। प्रभास, चमसोद्भेद उदपान, विनशन आदि से प्रारम्भ कर करीब छत्तीस तीर्थों का वहाँ उल्लेख है। इस यात्रा के अन्तिम चरण में बलराम वृद्ध कन्याक्षेत्र नामक स्थान पर

आये थे, तब वहाँ उन्होंने शल्यवध का समाचार सुना, 'तत्रस्थश्चापि शुश्राव-हतं शल्यं हलायुधः' (५२. २६)। उन्होंने कारपावन में उसके बाद एक रात्रि बिताई—'तत्रोष्यैकां तु रजनीं यतिभिर्ब्राह्मणैः सह। मित्रावरुणयोः पुण्यं जगमाश्रममच्युतः' (५४, १४)। 'वहाँ एक रात्रि व्यतीत कर बलराम ब्राह्मण तथा मुनियों के साथ मित्रावरुण के पावन आश्रम को गये।' इस रात्रि का उल्लेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके बाद वे कारपावन से मित्रावरुण तीर्थ गये। जहाँ यमुना में स्नान कर वे ऋषियों से धार्मिक कथा सुन रहे थे। तब नारद मुनि ने आकर भीम-दुर्योधन गदायुद्ध देखने चलने के लिए उन्हें प्रेरित किया, जो उस समय आरम्भ होने वाला ही था। इस पर बलराम जी तुरन्त अपनी तीर्थयात्रा समाप्त कर गदायुद्ध स्थान पर पहुँचे। तत्पश्चात् उस प्रातःकाल के समय में उनकी उपस्थिति में गदायुद्ध प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार शल्यवध और गदायुद्ध के बीच एक रात्रि गई थी। अर्थात् शल्यवध के दूसरे रोज गदायुद्ध हुआ, न कि उसी रोज। लेकिन पुणे की भांडारकर अनुसन्धान द्वारा प्रकाशित महाभारत की आवृत्ति में रात्रि बीतने का जिस-में उल्लेख है उस पंक्ति को शंकास्पद माना गया है। महाभारत की कुछ पोथियों में तो उक्त पंक्ति छापी ही नहीं गयी है। 'शल्यवध के दूसरे रोज गदायुद्ध हुआ' यह रहस्य भाष्यकारों के ध्यान में आता तो अवकाश दिनों की बात अलग रखने पर भी, पूरा युद्ध काल में अठारह दिनों के बजाय कम-से-कम उन्नीसदिन गिनते।

स्पष्ट है कि शल्यवध के रोज अपराह्णमें भीम-दुर्योधन गदायुद्ध होने का प्रश्न ही नहीं उठता। फिर उसी शल्यपर्व के प्रथम अध्याय के बारहवें श्लोक में गदायुद्ध के विषय में 'अथापराह्णे तस्याह्नः' कैसे कहा है? वस्तुतः 'अपराह्ण' का प्रयोग महर्षि व्यास ने दिन के अपराह्ण प्रहर के आशय में न कर 'अपर+अहन्' अर्थात् दूसरा दिन इस अर्थ में किया है अर्थात् उस (शल्यवध के) रोज के दूसरे दिन। (पृष्ठ १८–२२)।

(७) **भीष्म निधन**—अन्त में भीष्मनिधन तिथि के महान् कूटका भी सीधा हल प्रस्तुत है। अमावास्या को ही युद्धारम्भ मानकर आगामी कृष्ण तृतीया को (जो प्रत्यक्ष लड़ाई का दसवाँ दिन था) शाम के समय भीष्म का पतन हुआ। तभी से उनकी भयानक शरशय्या प्रारम्भ हुई। आइये, उस कृष्ण तृतीया से हम ठीक अट्ठावन रात्रि गिनकर देखें—

१३ रात्रि, उस कृष्ण पक्ष की शेष
१५ रात्रि, अगले शुक्ल पक्ष की शेष (पौषमास)
१५ रात्रि, अगले कृष्ण पक्ष की
१५ रात्रि, अगले शुक्ल पक्ष की (माघमास)

५८

वस्तुतः प्रथम कृष्ण पक्ष में एक तिथि लोप होने से उसकी शेष रात्रि घटकर बारह ही थी ; जब कि उसकी पूर्ति में बाद के शुक्ल पक्ष में एक तिथिकी वृद्धि होकर वहाँ रात्रि संख्या बढ़कर सोलह थी। किन्तु स्पष्ट है कि उससे रात्रियों की कुल अट्ठावन संख्या में कोई फरक नहीं आता। इससे हम सीधे माघ शुक्ल पूर्णिमा की रात्रि के समाप्ति समय पर पहुंचते हैं। यही अगली कृष्ण प्रतिपदा के पूर्व के उषःकाल का पवित्र समय था, जब महात्मा भीष्माचार्य की प्राण ज्योति अनन्त ईश्वर तत्त्व में सदा के लिए विलीन हो गई। उस समय महीना माघ का था तथा पक्ष ठीक शुक्ल ; जैसा कि महाभारत में कहा है। अब रहा सवाल महाकवि द्वारा प्रयुक्त 'त्रिभाग शेष' शब्द का। उसका वास्तविक आशय इतना ही है कि उस समय शुक्ल पक्ष के अर्थात् उसकी अन्तिम तिथि पूर्णिमा के रात्रि के केवल तीन 'मुहूर्त्त' शेष थे। 'भाग' का अर्थ केवल मुहूर्त्त है, जो एक दिन में तीस होते हैं, अर्थात् एक मुहूर्त्त अड़तालीस मिनटों का होता है (पृष्ठ २७)।

मत-विमर्श

महाभारत को आद्योपान्त किसी एक ही लेखक की जो कि अति प्रतिभा सम्पन्न लेखक थे, रचना मानना उचित ही है। पर महाभारत में ही सन्निहित उस रचयिता के नाम-धाम सम्पन्न विस्तृत चरित्र का वर्णन है। कौरव-पाण्डवों के वंशधर का तथा स्वयं कौरव-पाण्डवों का अत्यन्त प्रामाणिक और सुस्पष्ट उल्लेख है, जिसे इतिहास कहा गया है। इस ऐतिह्य तथ्य के प्रति संशय व्यक्त करना तथा महाभारत में ही सन्निहित महाभारत लिखने की कथा को 'दन्तकथा' कहना, यह सब पाश्चात्त्य शिक्षा-दीक्षा का ही प्रबल प्रभाव और ज्वलन्त प्रमाण है। अतः कवीश्वर जी पहले से भ्रम में पड़ कर सारी बातें भ्रम में ही लिख गये हैं।

(१) नक्षत्र निर्णय विभ्रम पूर्ण—क्योंकि गणना में मत भेद डालने वाला प्रसंग 'चित्रा' को ऐन्द्र नक्षत्र मानकर अमावास्या से युद्धारम्भ मानना

है; अतः पहले इसी विषय पर विचार प्रस्तुत करना उचित है। यह सत्य है कि श्रीभगवान् ने **'सप्तमाच्चापि दिवसात्'** (उद्योग० १४२. १८) अर्थात् 'आज सहित आज के सातवें दिन या आज के बाद सातवें दिन ऐन्द्र नक्षत्र से युक्त अमावास्या होगी', ऐसा कहा था। महाभारत के ही अनुशीलन से यह सिद्ध है कि भगवान् इस कथन के बाद हस्तिनापुर से उपप्लव्य नगर लौट आये। पुनः युधिष्ठिरादि के साथ सम्भाषण कर रात्रि बीतने पर 'पुष्य' नक्षत्र में कुरुक्षेत्र के लिये सैन्य-निर्याण का निर्णय लेकर सो गये। दोनों सेनाओं ने ही रात्रि बीतने पर 'पुष्य' नक्षत्र में प्रस्थान किया। ऐसा होने पर भी दुर्योधन वाक्य जिसे कि श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को सुनाया था,[२२] वह हस्तिनापुर से श्रीकृष्ण के उपप्लव्य के लिए लौट आने के दिन भी पुष्य नक्षत्र सिद्ध करता है। **'सप्तमाच्चापि दिवसात्'** (उद्योग० १ २. १८) इस घोषणा के पश्चात् सात दिन गिनने पर 'स्वाति' नक्षत्र में अमावास्या का योग सधता है जो कि वायु देवताक है न कि शक्र (इन्द्र) देवताक। पुष्य की वृद्धि मानकर प्रथम पुष्य में घोषणा का और द्वितीय पुष्य से सातवें स्थान पर अवस्थित चित्रा में अमावास्या का योग सिद्ध होता है। अथवा भविष्यत्-गति से दुर्योधन द्वारा प्रयुक्त पुष्य से सातवें स्थान पर स्थित चित्रा में अमावास्या का योग सिद्ध होता है। चित्रा के विश्वकर्मा देवता हैं न कि इन्द्र। क्योंकि महाभारत का सूक्ष्म अनुशीलन करने पर वह कृष्ण पक्ष तेरह दिनों का सिद्ध होता है; अतः दो तिथियों का क्षय स्वाभाविक है, ऐसी स्थिति में एक नक्षत्र की वृद्धि मानना उपयुक्त नहीं लगता। विशाखा जो कि पुष्य से नवें स्थान पर है और पुष्य के पश्चात् आठवें स्थान पर है, उसके अग्नि और इन्द्र दोनों ही देवता हैं; जब कि ज्येष्ठा जो कि पुष्य के ग्यारहवें स्थान पर है और पुष्योत्तर दशवें स्थान पर उसके केवल इन्द्र देवता हैं। पुनः शरदन्त हिमागम रेवती नक्षत्र जो कि श्रीकृष्ण के उपप्लव्य से हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान दिवस था, उस दिन कृत्तिका में कार्त्तिकी मानने पर कार्तिक शुक्ल द्वादशी और रोहिणी में कार्त्तिकी मानने पर कार्तिक शुक्ल एकादशी सिद्ध होती है। कृत्तिका में कार्त्तिकी मानने पर मार्गशीर्ष कृष्ण जो कि तेरह दिनों का पक्ष होना था, उसकी अमावास्या ठीक विशाखा में सिद्ध होती है न कि चित्रा में। रोहिणी में कार्त्तिकी मानने पर अमावास्या अनुराधा में सिद्ध होती है न कि चित्रा में। अनुराधा नक्षत्र विशाखा और ज्येष्ठा के बीच में है। विशाखा में मार्गशीर्ष की अमावास्या

२२. उद्योग १५०।३ प्रयाध्व वै कुरुक्षेत्रं पुष्योऽद्येति पुनः पुनः ॥'

मानने पर रोहिणी में मार्गशीर्ष की पूर्णिमा सिद्ध होती है। अनुराधा में मानने पर मृगशिरा में जब कि ज्येष्ठा में मानने पर आर्द्रा में। मृगशिरा या आर्द्रा में मार्गशीर्ष की पूर्णिमा अधिक प्रशस्त है। इधर ज्येष्ठा केवल इन्द्र देवता सम्बन्धी नक्षत्र है, अतः उसी में मार्गशीर्ष की अमावास्या मानना उपयुक्त है।

'इन्द्रस्य चित्रा' (तैत्ति० ब्रा० १ ५.१) के अनुसार चित्रा को ऐन्द्र नक्षत्र मानने पर यद्यपि पुष्य से सातवें स्थान पर स्थित चित्रा में मार्गशीर्ष की अमावास्या मानी जा सकती है, परन्तु ऐसा मानने पर तो भरणी में मार्गशीर्ष की पूर्णिमा मान्य होगी, जिसके क्रमशः तीसरे और चौथे स्थान पर मृगशिरा और आर्द्रा है। इस तरह एक तो तिथि के अनुगुण नक्षत्र की प्राप्ति में अड़चन है, दूसरी ओर त्वष्टा ही चित्रा का अधिपति है न कि इन्द्र। ऐश्वर्यशाली होने से ही त्वष्टा के लिए इन्द्र शब्द का गौण प्रयोग हुआ है। 'इन्द्रो ज्येष्ठामनु नक्षत्रमेति' इस श्रुति ने मुख्यतः ज्येष्ठा को ही ऐन्द्र नक्षत्र माना है। 'इन्द्रस्य चित्रा' अर्थवाद होने के कारण भी उसका स्वार्थ में तात्पर्य हो ही नहीं सकता।

त्वष्टा ही वस्तुतः चित्राका अधिदेव मान्य है–त्वष्टा नक्षत्रमभ्येतिचित्राम्।' श्रुति ने विशाखा को ही द्विदैवत्यनक्षत्र माना है—'इन्द्राग्नियोर्विशाखे।' ऐसी स्थिति में ज्येष्ठाके अतिरिक्त जो चित्रा और शतभिषक् इन्द्रदेव माने गये हैं वे त्वष्टा और वसिष्ठके अर्थ में ही'–त्वष्टा नक्षत्रमभ्येति चित्राम्', 'नक्षत्राणां शतभिषग्वसिष्ठः'। कृत्तिका के अग्नि और ज्येष्ठा के इन्द्र स्वतन्त्र देवता हैं, जबकि, विशाखा के इन्द्र और अग्नि दोनों। 'प्रजापतेः रोहिणी' कहने के बाद 'इन्द्रस्य रोहिणी' इस श्रुति में प्रयुक्त रोहिणी शब्दका अर्थ ज्येष्ठा ही है। इस तरह परमैश्वर्यशाली होने के कारण त्वष्टा को इन्द्र कहा गया है, वस्तुतः चित्रा ऐन्द्र नक्षत्र न होकर त्वष्टा सम्बन्धी नक्षत्र ही है।

यह कहना भी भ्रम ही है कि सम्पूर्ण महाभारत में ज्येष्ठा के अधिदेव रूप में इन्द्र का कहीं भी कथन नहीं है। स्वयं ग्रन्थकार वेदव्यास ने ही जब रात्रि बीतते ही युद्धारम्भ होने वाला था, तब हस्तिनापुर में धृतराष्ट्र के प्रति विविध उत्पातों का वर्णन करने के प्रसंग में ज्येष्ठा नक्षत्र का उसके अधिदैव इन्द्र के सहित उल्लेख किया है। महाभारत में कहीं केवल नक्षत्र का तो कहीं केवल देवता का उल्लेख है, परन्तु नक्षत्र सहित अधिदेव का

वर्णन इस सन्दर्भ में केवल इस अभिप्राय से है कि कोई श्रीकृष्ण के 'तामाहुः शक्रदेवताम्' (उद्योग० १४२. १८) इस वचन का अन्यथा अर्थ न लगा ले—

"श्वेतोग्रहः प्रज्वलितः सधूम इव पावकः।
ऐन्द्रं तेजस्वि नक्षत्रं ज्येष्ठामाक्रम्य तिष्ठति ॥"

(भीष्मपर्व ३. १६)

'केतु नामक उपग्रह धूमयुक्त अग्नि के समान प्रज्वलित हो, इन्द्र देवता सम्बन्धी तेजस्वि ज्येष्ठा नक्षत्र पर जाकर स्थित है।"

'महाभारत में कहीं भी ज्येष्ठा को इन्द्र का नक्षत्र नहीं कहा गया है.' यह श्रीकवीश्वर का कथन भ्रम ही नहीं, अपितु धूलि प्रक्षेप भी है; क्योंकि 'ऐन्द्रं तेजस्वि नक्षत्रं ज्येष्ठामाक्रम्य तिष्ठति' में ज्येष्ठा को ऐन्द्र नक्षत्र कहा गया है।

यदि चित्रा को ही हठात् ऐन्द्र नक्षत्र मानें या कहीं विशाखा को ही कोई मान लें तो श्रीकृष्ण सहित सात्यकि का पाण्डव पक्ष में और कृतवर्मा सहित यादवों का पुष्योत्तर अनुराधा नक्षत्र में कौरवपक्ष में सम्मिलित होने वाली बात की कोई सार्थकता ही नहीं सध सकेगी। विशाखा के पश्चात् और ज्येष्ठा से पूर्व अनुराधा में यह सम्मिलन इसी अभिप्राय से हो सकता है कि ज्येष्ठा से पूर्व ऐन्द्र नक्षत्र युक्त अमावास्या नहीं थी, जिसमें युद्धारम्भ की घोषणा श्रीकृष्ण द्वारा की गयी थी।

इस तरह (१) नक्षत्र के अनुगुण आद्योपान्त तिथि की उपलब्धि की दृष्टि से, (२) महाभारत में युद्धारम्भ सन्दर्भ में ही स्वयं वेदव्यास के द्वारा ही ज्येष्ठा को ऐन्द्र नक्षत्र घोषित किये जाने से और (३) सैन्य निर्याण नक्षत्र पुष्य के पश्चात् अनुराधा में श्रीकृष्णादि द्वारा अपने-अपने पक्ष में सम्मिलित होने की दृष्टि से--'ज्येष्ठा' ही ऐन्द्र नक्षत्र सिद्ध है।

ऐसी स्थिति में 'सप्तमाच्चापिदिवसादमावास्याभविष्यति' में प्रयुक्त सप्तमात् के साथ 'च' और 'अपि' के योग से 'सप्तमात्' का अर्थ ठीक सातवें दिन न होकर सात दिन बाद ही सिद्ध होता है।

(२) अवकाश विमर्श—

चौदहवें दिन के रात्रि युद्ध में जब कर्ण की शक्ति से घटोत्कच मारा

गया, प्राणों को संकट में डालकर शोकग्रस्त धर्मराज युधिष्ठिर कर्ण से युद्ध करने जा रहे थे, तब दिव्यशक्ति सम्पन्न दिव्यदर्शी वेदव्यास ने प्रकट होकर उनसे कहा—'पञ्चमे दिवसे तात पृथिवी ते भविष्यति'='हे तात! पाँचवें दिन पृथिवी तेरी हो जायगी' (द्रोण० १८३. ६५)।

कवीश्वरके मतमें कृष्ण द्वादशोको रात्रि युद्ध था तथा शुक्ल पंचमीको गदायुद्ध। अतः पाँच दिनों के स्थान पर नौ दिनों की सिद्धि कैसे सम्भव हो सकती है? अतः यह निर्विवाद सत्य है कि जब उसके बाद लगातार युद्ध हो और बिना अवकाश के अठारहवें दिन युद्ध की समाप्ति हो, तभी श्रीवेद-व्यास भगवान् का उक्त वचन सार्थक हो सकता है।

जिस तरह चौदहवें दिन के रात्रि युद्ध का और सौप्तिक संहार का भी पुष्पिका में रात्रियुद्ध के रूप में उल्लेख हुआ है, उसी तरह यदि भारत सावित्री के अनुसार गदायुद्ध रात्रि में हुआ होता तो पुष्पिका में उसका उल्लेख भी 'रात्रियुद्ध' के रूप में ही होता। अथवा दुर्योधन का पता लग जाने पर गदायुद्ध से पूर्व एक रात्रि बीती होती तो उसका उल्लेख भी अवश्य होता।

सन्दर्भ का आद्योपान्त अनुशीलन करने पर यह सिद्ध होता है कि दुर्योधन, भीम, युधिष्ठिर और अश्वत्थामा ने प्रतिज्ञा पूर्वक सर्वत्र 'अद्य' (आज) का ही प्रयोग किया है 'अद्य वः सरथान्' (शल्य० ३२।१८); 'अद्यानृण्यं गमिष्यामि' (शल्य० ३२. १९) आदि दुर्योधन वाक्य हैं। अद्य क्रोधं विमोक्ष्यामि' (शल्य० ३३. ३३), 'अद्य कीर्त्तिमयीं मालां (शल्य० ३३. ३५; ५६.१८) आदि भीम वाक्य हैं। इतना ही नहीं, द्वैपायन सरोवर में छिपे हुए दुर्योधन का पता चल जाने पर उसने तो 'इसी मुहूर्त्त में युद्ध का निश्चय लिया है'—'अस्मिन् मुहूर्त्ते (भीष्म० ३२. ७१)। तो क्या 'अद्य' और 'अस्मिन् मुहूर्त्ते' का अर्थ भी 'रात्रि बीतने पर कल करना उपयुक्त है? स्वप्न में भी नहीं। 'अद्य', 'इदानीं', 'अस्मिन् मुहूर्ते आदि अवकाशघातक शब्दों का 'दूसरे तीसरे दिन' अर्थ मानना केवल हास्यास्पद ही है। रवि-वारादि का उदाहरण भी भ्रममात्र है, क्योंकि वहाँ अवकाश पहले से सिद्ध है, किन्तु यहाँ तो पहले से अवकाश साधक प्रमाण न होने से इन्हीं का झूठा अर्थ मानकर अवकाश मानना और अवकाश मानने पर इनका अथ सिद्ध होना अन्योन्याश्रयादि घोर दोष हैं।

साथ ही युद्धारम्भ और दुर्योधन के धराशायी होने तक 'सायंकाल' का ही उल्लेख है—

"एवं तद्भवद् युद्धं घोररूपमसंवृतम् ॥
परिवृत्तोऽह्नि क्रूरं वृत्रवासवयोरिव ।"
(शल्य० ५७ ३७. ३७½)

"इस प्रकार दिन की समाप्ति के समय, उन दोनों वीरों में प्रकटरूप में वृत्रासुर और इन्द्र के समान क्रूरतापूर्ण एवं भयंकर युद्ध होने लगा ॥"

दुर्योधनवध सूर्यास्त के सन्निकट हुआ। उसी घायल दशा में उसने रात्रि बिता दी दुर्योधन के धराशायी होने पर श्रीकृष्ण ने सायंकाल का ही उल्ले ा किया है—

"कृतकृत्याश्च सायाह्ने निवासं रोचयामहे ।
साश्वनागरथाः सर्वे विश्रमामो नराधिपाः ॥"
(शल्यपर्व ६१. ६९)

"हमलोगों का कार्य पूर्ण हो गया, अतः सायंकाल के समय विश्राम करने की इच्छा हो रही है। राजाओ ! हमलोग घोड़े, हाथी एवं रथ सहित विश्राम करें।"

"दुर्योधनोऽपि राजेन्द्र शोणितेन परिप्लुतः ।
तां निशां प्रतिपेदेऽथ सर्वभूतभयावहाम् ॥"
(शल्य० ६५. ४५)

"राजेन्द्र ! रक्त में सने हुए दुर्योधन ने सम्पूर्ण भूतों के मन में भय उत्पन्न करने वाली वह रात वहीं व्यतीत की ॥"

इतना ही नहीं, दुर्योधनवध का समाचार वार्तिकों से सुनकर जब कृतवर्मा और कृपाचार्य सहित अश्वत्थामा उसी दिन सर्व पाञ्चालों के वध की प्रतिज्ञा कर घोर जंगल में प्रवेश कर गये, तब सूर्यास्त हो रहा था— **सूर्यास्तमनवेलायां'** (सौप्तिक० २. १८), **'शर्वरी समपद्यत'** (सौप्तिक संहार २४)। अश्वत्थामा ने आधी रात तक सौप्तिक संहार कर दिया— **'तस्या रजन्यास्त्वर्धेन'** (सौप्तिक ८. ३२)। फिर उषः काल में दुर्योधन से मिला। सौप्तिक संहार का समाचार सुनकर सुयोधन ने प्रसन्नता पूर्वक

देहत्याग किया। दुर्योधन से मिलकर संजय हस्तिनापुर की ओर चला—'प्रत्यूषे काले शोकार्ता:'।

ऐसी स्थिति में मध्याह्न में शल्यवध होने के कारण अपराह्ण में (सायं के सन्निकट) गदायुद्ध के आरम्भ में आपत्ति की आशंका ही कहाँ है ?—

"मध्याह्ने प्रत्यपायाम निर्जिताजातशत्रुणा ॥
न संधातुमनीकानि न च राजन् पराक्रमे।
आसीद् बुद्धिर्हते शल्ये भूयो योधस्य कस्यचित् ॥"

(शल्य० १८।४, ४½)

"राजन् ! अजातशत्रु युधिष्ठिर से पराजित हो दोपहर के समय हम लोग युद्ध से भाग चले थे। शल्य के मारे जाने से किसी भी योद्धा के मन में सैनिकों को संगठित करने तथा पराक्रम दिखाने का उत्साह नहीं होता था ॥"

'ततः शल्यो महाराज कृत्वा कदनमाहवे।
ससैन्योऽथ स मध्याह्ने धर्मराजेन घातितः ॥

(शल्य० १. १०)

अथापराह्णे तस्याह्नः परिवार्य सुयोधनः।
ह्रदादाहूय युद्धाय भीमसेनेन पातितः ॥"

(शल्य० १. १२)

दुर्योधन का पता शल्यवध के दिन ही चल गया। दुर्योधन ने रात्रि बीतने पर युद्ध करने इच्छा व्यक्त की। लेकिन धर्मराज युधिष्ठिर ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। फलतः देवर्षि नारद से प्रेरित बलरामजी के शुभागमन पर स्वर्गप्रद कुरुक्षेत्र में युद्धारम्भ हुआ।

जब पाण्डवों को दुर्योधन का पता नहीं चल पाया था और संजय के द्वारा कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा को दुर्योधन का पता चल गया तब उन्होंने युद्ध के लिए प्रेरित किया। दुर्योधन ने रात्रिभर विश्राम की भावना व्यक्त की—

"विश्रम्यैकां निशामद्य भवद्भिः सहितो रणे।
प्रतियोत्स्यामहं शत्रूञ्श्वो न मेऽस्त्यत्र संशयः ॥"
(शल्य० ३०. १८)

"आज एक रात विश्राम करके कल सबेरे रणभूमि में आप लोग के साथ रहकर मैं शत्रुओं के साथ युद्ध करूँगा, इसमें संशय नहीं है ॥"

युधिष्ठिर के प्रति भी सुयोधन ने विश्राम की भावना व्यक्त की, लेकिन युधिष्ठिर ने 'यहीं और अभी' युद्ध करने के लिए उद्यत किया--

"त्वं चाश्वसिहि कौन्तेय ये चाप्यनुगतास्तव।
अहमुत्थाय वः सर्वान् प्रतियोत्स्यामि संयुगे ॥"
(शल्य० ३१।४१)

"कुन्तीकुमार! तुम भी कुछ देर तक विश्राम कर लो। तुम्हारे अनुगामी सेवक भी सुस्ता लें। फिर मैं उठकर समरांगण में तुम सब लोगों के साथ युद्ध करूँगा ॥"

आश्वस्ता एव सर्वेस्म चिरं त्वां मृगयामहे।
तदिदानीं समुत्तिष्ठ युध्यस्वेह सुयोधन ॥
(शल्य० ३१. ४२)

युधिष्ठिर ने कहा—'सुयोधन! हम सब लोग तो सुस्ता ही चुके हैं। बहुत देर से तुम्हें खोज भी रहे हैं। इसलिए अब तुम उठो और अभी यहीं युद्ध करो ॥"

ऐसी स्थिति में "तत्पश्चात् रात्रि बीतने पर उस प्रातःकाल के समय में बलराम जी की उपस्थिति में गदायुद्ध प्रारम्भ हुआ' यह कथन मूल के सर्वथा विरुद्ध ही है। जब कि मूलमें 'अपराह्ण' का और 'साय'' का सुस्पष्ट उल्लेख है। 'अपर+अहन्' ऐसा पदच्छेद कर 'दूसरे दिन' अर्थ कर लेने पर भी 'साय'' का अर्थ भी क्या दूसरे दिन प्रातःकाल' करना न्याय संगत है? 'अपराह्ण' शब्द जो कि सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में केवल दिन के तीसरे भाग में ही रूढ़ है, उसका 'दूसरे दिन' अर्थ करना धूलिप्रक्षेप की पराकाष्ठा है।

पते की बात तो यह है कि यदि सचमुच में गदायुद्ध दूसरे दिन हुआ होता तो गदापर्व का शल्यपर्व के अन्तर्गत उल्लेख कथमपि न होता।

इस तरह (१) 'पंचमे दिवसे तात पृथिवी ते भविष्यति' (द्रोण० १८३.६५) रात्रि युद्ध के समय चौदहवें दिन श्रीवेदव्यास की भविष्य वाणी की सार्थकता तभी सम्भव है जब दुर्योधन वध शल्यवध के दिन ही मान्य हो (२) यदि शल्यवध के दिन के युद्ध को साढ़े सत्रहवाँ माना जायगा तब तो चौदहवें दिन के रात्रि युद्ध को साढ़े चौदहवाँ और सौप्तिक संहार को साढ़े अठारहवाँ युद्ध मानना होगा।

(३) धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा मध्याह्न में शल्यवध (शल्य० १९।४, ५) तत्पश्चात् सहदेव द्वारा शकुनि और शकुनि पुत्र उलूकवध का (शल्य०२८। ३२३, ६२, ६३।, दुर्योधन के पश्चात् दुर्योधन से अभिषिक्त अश्वत्थामा का सूर्यास्त होते वन में प्रवेश का (सौप्तिक० १. २४, २६) और कृतवर्मा एवं कृपाचार्य से रंजित शंकर से शक्ति प्राप्त अश्वत्थामा द्वारा आधी रात तक सौप्तिक संहार का सुस्पष्ट एक ही दिन में उल्लेख शल्यवध के दिन ही दुर्योधन वध को सिद्ध करता है। (४) शल्यवध के अन्तर्गत ही गदापर्व की स्थिति भी इसी तथ्य को सिद्ध करती है कि शल्यवध के दिन ही दुर्योधनवध हुआ।

क्योंकि 'शुश्राव शल्यं संग्रामे निहतं पाण्डवैस्तदा।' (शल्य० ५२.२७) इस वचन में पाण्डवों द्वारा शल्य मारा गया' ऐसा बलराम ने सुना, फिर भी 'तत्रोष्यैकां तु रजनीं यतिभिर्ब्राह्मणैः सह' (शल्य० ५४. १४) उन्होंने कारपावन नामक तीर्थ में एक रात्रि व्यतीत की, इसलिये शल्यवध के बाद दूसरे दिन गदायुद्ध की भावना बनना स्वाभाविक है। परन्तु महाभारत के बहुत-से संस्करणों में एक रात्रि पूर्व शल्यवध के श्रवण का उल्लेख नहीं है। आगे देवर्षि नारद ने जो बलदेव जी को शल्यवध की सूचना और गदायुद्ध के लिए भीम और दुर्योधन की तत्परता की सूचना दी है (शल्य० ५४। २५-३४) उसमें रात्रि बीतने का कोई उल्लेख नहीं है, यदि दुर्योधन का शल्यवध के दिन पता नहीं चलता दूसरे दिन पता चलता तब तो रात व्यतीत होने की कल्पना सार्थक मानी जाती, परन्तु रात्रि बीतने पर पता चलने पर दुर्योधन द्वारा यह कहा जाना संभव न होता कि 'तुम और तुम्हारे सैनिक विश्राम कर लें हम भी विश्राम कर लें, फिर युद्ध करेंगे' अतः उक्त पक्तिको प्रक्षिप्त मानना ही उचित है। अथवा अमोघदर्शी भगवान् के द्वारा प्रेरित युधिष्ठिर को शल्यवध के लिए रात्रि बीतने पर तत्पर देख, 'अब श्रीकृष्ण से प्रेरित और कुपित पाण्डव शल्य को मार ही डालेंगे' इस अभि-

प्राय से शल्यवध की सूचना श्रीवलभद्र को प्राप्त हुई, ऐसा मानना चाहिये। ऐसा मानने पर ही शल्यवध के दिन ही दुर्योधन का पता चलना और गदा-युद्ध में मारा जाना सार्थक सिद्ध होगा।

इस तरह उन्नीस दिनों तक युद्ध की बात और द्रोणनिधन से दुर्योधन निधन तक अवकाश युक्त युद्ध की बात निःसार सिद्ध होती है।

इसी सन्दर्भ में यह भी समझ लेना चाहिये कि द्रोणाचार्य नेतृत्व में लगातार युद्ध हुआ—

"तस्य त्वहानि चत्वारि क्षपा चैकास्यतो गता।
तस्य चाह्नस्त्रिभागेन क्षयं जग्मुः पतत्त्रिणः॥"

(द्रोण० १९१. ८)

अतः अभिमन्यु वध के बाद जयद्रथ वध से पूर्व अवकाश मानना अर्जुन की अमोघ प्रतिज्ञा को और संजय के उक्त वचन को मिथ्यासिद्ध करना है। जो किसी प्रकार उचित सिद्ध किया ही नहीं जा सकता।

• यदि एक-एक दिन विराम देकर ही युद्ध होता तब तो चौदहवें दिन कृपालु अर्जुन के अनुरोध से रात्रि युद्ध को विराम देने के पश्चात् सभी सैनिक अपने-अपने शिविरों में लौट जाते न कि संग्रामभूमि में ही दो घड़ी सोने के बाद चन्द्रोदय के प्रकाश में युद्ध करने लगते। अतः द्रोण के नेतृत्व में एक-एक दिन का युद्ध विराम सिद्ध होना सर्वथा असम्भव है।

साथ ही यह भी बताना चाहिये कि जब जयद्रथवध से कुपित दुर्योधन द्वारा रात्रि युद्ध की घोषणा पाण्डवों को मान्य हुई तब अभिमन्युवध से सन्तप्त अर्जुन द्वारा रात्रि बीतने पर युद्ध क्यों असम्भव हुआ?

अभिमन्युवध, जो कि द्रोणाचार्य के नेतृत्व में तेरहवें दिन हुआ, उसके बाद चौदहवें दिन अवकाश इसलिए भी सम्भव नहीं था, क्योंकि अर्जुन ने रात्रि बीतने के बाद दूसरे ही दिन सूर्यास्त तक जयद्रथवध की घोर प्रतिज्ञा कर ही ली थी—

"धर्मादपेता ये चान्ये मया नात्रानुकीर्तिताः।
ये चानुकीर्तितास्तेषां गतिं क्षिप्रमवाप्नुयाम्॥

यदि व्युष्टामिमां रात्रिं श्वो न हन्यां जयद्रथम् ।
इमां चाप्यपरां भूयः प्रतिज्ञां मे निबोधत ॥
यद्यस्मिन्नहते पापे सूर्योऽस्तमुपयास्यति ।
इहैव सम्प्रवेष्टाहं ज्वलितं जातवेदसम् ॥"
(द्रोणपर्व ७३।४५–४७)

'ऊपर जिन पापियों का नाम मैंने गिनाया है तथा जिन दूसरे पापियों का नाम नहीं गिनाया है, उनको जो दुर्गति प्राप्त होती है, उसी को शीघ्र ही मैं भी प्राप्त करूँ; यदि यह रात्रि बीतने पर कल जयद्रथ को न मार डालूँ ॥'

'अब आप लोग मेरी यह दूसरी प्रतिज्ञा भी पुनः सुन लें। यदि इस पापी जयद्रथ को मारे जाने से पहले ही सूर्यदेव अस्ताचल को पहुंच जायेंगे तो मैं यहीं प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा ॥'

● विचारक स्वयं ही विचार करें कि 'यदि व्युष्टामिमां रात्रिं श्वो न हन्यां', "यदि इस रात्रि के बीतने पर कल न मारूँ" इस वाक्य में 'इमां'= 'इस' पद की सार्थकता उस रात्रि के बीत जाने पर पुनः दूसरी रात्रि के बीत जाने पर जयद्रथवध मानने पर या चौदहवें दिन का युद्ध मानने पर भला क्या सध सकती है, कथमपि नहीं।

अभिमन्युवध के दिन ही अर्जुन की प्रतिज्ञा मानना और एक दिन युद्ध बन्द रखना, श्रीकृष्णार्जुन दोनों को मिथ्याभाषी सिद्ध करना है। भगवान् कृष्ण ने उसी रात्रि देवी सुभद्रा से कहा—

"यत् पार्थेन प्रतिज्ञातं तत् तथा न तदन्यथा ।
चिकीर्षितं हि ते भर्तुर्न भवेज्जातु निष्फलम् ॥
यदि च मनुजपन्नगाः पिशाचा
रजनिचराः पतगाः सुरासुराश्च ।
रणगतमभियान्ति सिन्धुराजं
न स भविता सह तैरपि प्रभाते ॥"
(द्रोण० ७७।२५, २६)

"अर्जुन ने जिस बात के लिए प्रतिज्ञा कर ली है, वह उसी रूप में

पूर्ण होगी। उसे कोई पलट नहीं सकता। तुम्हारे स्वामी जो कुछ करना चाहते हैं, वह कभी निष्फल नहीं होता ॥"

"यदि मनुष्य, नाग, पिशाच, निशाचर, पक्षी, देवता और असुर भी रणक्षेत्र में आये हुए सिन्धुराज जयद्रथ की सहायता के लिए आ जायँ तो भी वह कल उन सहायकों के साथ ही जीवन से हाथ धो बैठेगा ॥"

वीर अर्जुन की प्रतिज्ञा के अनुरूप ही उसी रात श्रीभगवान् का उक्त वचन होना चाहिये, तभी पार्थ की प्रतिज्ञा सत्य सिद्ध होगी।

अर्जुन की प्रतिज्ञा से संत्रस्त स्वयं जयद्रथ का वचन भी इसमें प्रमाण है—

"मामसौ पुत्रहन्तेति श्वोऽभियाता धनञ्जयः।
प्रतिज्ञातो हि सेनाया मध्ये तेन वधो मम॥
तां न देवा न गन्धर्वा नासुरोरगराक्षसाः।
उत्सहन्तेऽन्यथा कर्तुं प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः॥"
(द्रोण० ७५. १३, १४)

'राजन्! मुझे अपने पुत्र का घातक समझ कर अर्जुन कल सबेरे मुझ पर आक्रमण करने वाला है, क्योंकि उसने अपनी सेना के बीच में मेरे वध की प्रतिज्ञा की है॥'

'सव्यसाची अर्जुन की प्रतिज्ञा को देवता, गन्धर्व, असुर, नाग और राक्षस भी अन्यथा नहीं कर सकते॥'

प्रतिज्ञा के अनन्तर ही अर्जुन ने गाण्डीव धनुष की टंकार से, श्रीकृष्णार्जुन के दिव्य शङ्खघोष से तथा वीरों के सिंहनाद से संत्रस्त कौरव गुप्तचरों द्वारा पार्थ की जयद्रथवध सम्बन्धी प्रतिज्ञा सुनने से पूर्व यह समझ कर कि अभिमन्युवध के समाचार से क्रुद्ध अर्जुन रात्रि में ही युद्ध के लिए निकल पड़ेंगे, युद्ध की तैयारी करने लगे। (द्रोणपर्व ७५।६–८)।

इतना ही नहीं, जब संग्राम भूमि में श्रीकृष्णार्जुन शिबिर की ओर जा रहे थे, तब अभिमन्यु वध से प्रसन्न घमण्डमें धृतराष्ट्र के पुत्रों का उन्होंने सिंहनाद सुना। अभिमन्युवध का ज्ञान न होने पर भी पार्थ का हृदय धड़क-धड़क कर विधाता की ओर से उसे किसी अनर्थ की सूचना दे रहा था।

इधर युयुत्सु को कौरव वीरों की भर्त्सना करते श्रीकृष्ण ने सुना। परन्तु उन्होंने अर्जुन को उस समय कुछ नहीं बताया। केवल इतना कहा कि तुम्हारे अपशकुन का फल कोई और ही अमंगल हो सकता है, भाइयों की ओर से तुम निश्चिन्त रहो।'

बाद में जब अर्जुन ने शिविर में अभिमन्यु को नहीं देखा और सभी भाइयों को अत्यन्त व्यथित देखा तथा श्रीकृष्ण ने भी युयुत्सु द्वारा कौरवों को उपालम्भ (उलाहना) का समाचार कह सुनाया, तब अर्जुन ने कहा—

❋ "किमर्थमेतन्नाख्यातं त्वया कृष्ण रणे मम।
अधाक्षं तानहं क्रूरांस्तदा सर्वान् महारथान्॥"
(द्रोण० ७२. ६४, ६४½)

"श्रीकृष्ण! आपने रणक्षेत्र में ही यह बात मुझसे क्यों नहीं बता दी? मैं उसी समय उन समस्त क्रूर-महारथियों को जलाकर भस्म कर डालता॥"

• उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि जो अर्जुन युद्धभूमि में अभिमन्यु वध का समाचार सुन लेते तो शत्रुओं को उसी समय युद्ध में भस्म कर देते तथा जिनके कष्ट और क्रोध का स्मरण कर कौरव रात्रि युद्ध की सम्भावना से संत्रस्त एवं सतर्क हो गये थे, ऐसी स्थिति में सत्यप्रतिज्ञ वे अर्जुन क्या एक दिन युद्ध को विश्राम देकर निज प्रतिज्ञा भंगकर जीवित रह सकते थे, कदापि नहीं। अतः जिसे प्रा० कवीश्वर युद्ध विराम या अवकाश का स्पष्ट उल्लेख बताते हैं, वह युद्ध का ज्वलन्त सन्देश है।

यहाँ यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि 'तां निशां दुःखशोकार्तौ" (द्रोण० ७७. १) इस वचन से उस रात्रिका संक्षिप्त और सामान्य परिचय मिलता है। आगे सायंकाल से रात्रिभर की घटनाओं का क्रमिक वर्णन है। 'निद्रां नैवोपलेभाते वासुदेवधनञ्जयौ' (द्रोण० ७७. १) यह पंक्ति यह सिद्ध करती है कि रात्रिभर श्रीकृष्ण और अर्जुन सोये नहीं, आगे दोनों के शयन का वर्णन मिलता है, अतः पहले श्लोक को ज्यों-का-त्यों प्रमाण मानकर 'आगे की घटना दूसरे दिन और दूसरी रात की हैं ऐसा श्रीकवीश्वर सिद्ध करना चाहते हैं। वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। यह तो महाकवि की काल सम्बन्धी कूटशैली है, जिसका भेदन कूट-भेदी मीमांसा प्रक्रिया से ही सम्भव है। यहाँ श्रीकृष्णार्जुन के रात्रिभर न सोने में 'देवो सुभद्रा को सान्त्वना

प्रदान करने तक यह संकोचक प्रमाण है। अर्थात् शोक सन्तप्त होने के कारण श्रीकृष्णार्जुन रात्रि में अधिक समय तक जागे ही रहे। अर्जुन की प्रार्थना पर (द्रोण० ७७. ११) जब श्रीभगवान् बहन सुभद्रा को सान्त्वना दे चुके, तब दोनों वीर सोये।

ध्यान रहे, 'ब्रह्मसूत्र आनन्दमय' की व्याख्या भगवत्पाद शङ्कराचार्य की शैली में प्रस्तुत करते हुए 'न्यायरक्षामणि:' कार श्रीमदप्पय्यदीक्षितेन्द्र ने 'ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठा' (तै० २ ५. १) में 'प्रतिष्ठा' पद के साथ 'पुच्छं' की संगति साधते हुए "बहुतको बाध की अपेक्षा तो यही उचित है कि प्रथम श्रुत वाक्य के केवल एक पद 'पुच्छ' मात्र में लक्षणा स्वीकार करें" ऐसी मीमांसा प्रस्तुत की है—

"बहुबाधस्यान्याय्यत्वात् आनन्दमयवाक्यस्यैव पुच्छपदमात्रलक्षणा-साध्यं ब्रह्मप्राधान्यमभ्युपगन्तुं युक्तम्। वरं ह्यनेकवाक्यवैयर्थ्यात् प्रथमश्रुत-स्यापि वाक्यस्य एकपदमात्रलक्षणासाध्यमन्यथाकरणम्।"

'उपसंहारगत वहुप्रमाणानुरोधेन प्रथमश्रुतस्याप्यानन्दमयवाक्यस्य ब्रह्मप्राधान्यं समर्थितम्"— ऐसे स्थलों में उपसंहारगत बहु प्रमाण के अनुरोध से प्रथम निर्दिष्ट वचनको भी उत्तर प्रधान माना जाता है। (द्रष्टव्य जै० सू० १।४) इस मीमांसा सरणी से परिचित महानुभावों को उक्त तथ्य स्वीकार करने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं होगी। महाभारत में ही संजय ने पहले राजा धृतराष्ट्र से 'हतो भीष्मः' (भीष्म० १३. ३), 'भीष्म मारे गये' ऐसा ही कहा ; पुनः 'शरतल्पगतः शेते' (भीष्म० १३. ४), 'शरशय्या पर सो रहे हैं' ऐसा कहा। यहाँ 'शेते' यह उत्तरवचन 'हतः' इस पूर्व वचन का संकोचक है, ऐसा सर्वसम्मत सिद्धान्त है।

• 'प्रतिज्ञावाली रात्रि के बीत जाने पर पुनः दूसरी रात्रि के बीत जाने पर युद्ध हुआ' ऐसा मानना अनुचित है। ऐसा मानने पर तो प्रतिज्ञा-वाली रात्रि में ही अर्जुन के प्रति श्रीकृष्ण की यह सूचना सर्वथा अनुपयुक्त सिद्ध होगी—'अर्जुन ! तुम्हारी प्रतिज्ञा से भयभीत जयद्रथ की प्राणरक्षा की प्रार्थना स्वय दुर्योधन ने द्रोणाचार्य से की है और उसकी रक्षा का पूरा प्रवन्ध भी कर लिया गया है, रथ भी सजा दिये गये हैं। कल के युद्ध में कर्ण, भूरिश्रवा, अश्वत्थामा, दुर्जयवीर वृषसेन, कृपाचार्य और भद्रराज शल्य ये— छः महारथी उसके आगे रहेंगे।'

*"स राजा स्वयमाचार्यो भृशमत्रार्थितोऽर्जुन ।
संविधानं च विहितं रथाश्च किल सज्जिताः ।।
कर्णो भूरिश्रवा द्रौणिर्वृषसेनश्च दुर्जयः ।
कृपश्च भद्रराजश्च षडेतेऽस्य पुरोगमाः ।।"
(द्रोण० ७५. २५, २६)

ध्यान रहे, तेरहवें दिन का युद्धान्त सन्ध्या के समय हुआ—

"तस्मिन्नहनि निर्वृत्ते घोरे प्राणभृतां क्षये ।
आदित्येऽस्तं गते श्रीमान् सन्ध्याकाल उपस्थिते ।।
व्यपयातेषु वासाय सर्वेषु भरतर्षभ ।।"
(द्रोण० ७२।१, १½)

"भरतश्रेष्ठ ! प्राण धारियों का संहार करने वाले उस भयङ्कर दिन के बीत जाने पर जब सूर्यदेव अस्ताचल को चले गये और सन्ध्याकाल उपस्थित हुआ, उस समय समस्त सैनिक शिविर में विश्राम के लिए चल दिये ।"

'तां निशां दुःखशोकार्तौ' (द्रोण० ७७. १) इस वचन से उस रात्रि का संक्षिप्त परिचय मिलता है। आगे सायंकाल से रात्रि भर की घटनाओं का क्रमिक वर्णन है। 'निद्रां नैवोपलेभाते वासुदेवधनञ्जयौ' (द्रोण० ७७.१) यह पंक्ति यह सिद्ध करती है कि रात्रिभर श्रीकृष्ण और अर्जुन सोये नहीं, आगे दोनों के शयन का वर्णन मिलता है, अतः पहले श्लोक को ज्यों-का-त्यों प्रमाण मानकर 'आगे की घटना दूसरे दिन और दूसरी रात की है,' ऐसा श्रीकवीश्वर सिद्ध करना चाहते हैं। वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। यह तो महा कवि की काल सम्बन्धी कूटशैली है। अतः यहाँ श्रीकृष्णार्जुन के रात्रिभर न सोने में—'देवी सुभद्रा को सान्त्वना प्रदान करने तक' यह संकोचक प्रमाण है। अर्थात् शोक सन्तप्त होने के कारण श्रीकृष्णार्जुन रात्रि में अधिक समय तक जागे ही रहे। अर्जुन की प्रेरणा से (द्रोण० ७७. ११) जब श्रीभगवान् बहन सुभद्रा को सान्त्वना दे चुके, तब दोनों वीर सोये।

कवीश्वर का इस सन्दर्भ में यह भी कहना है कि अभिमन्युवध के बाद जयद्रथवध की प्रतिज्ञा वाली रात्रि के पश्चात् अवकाश दिन में सूर्योदय के समय जब श्रीकृष्णार्जुन सन्तप्त थे, तब अनेकों अपशकुन हो रहे थे; जिसका विवेचन द्रोणपर्व (७१२०) में विस्तार पूर्वक है।

इस पर हमारा यह कहना है कि ग्रन्थकारने समय निर्धारण के लिये दो संकेत प्रदान किये हैं। 'सकबन्धस्तथाऽऽदित्ये परिधिः समदृश्यत' (द्रोण० ७७. ३) इस प्रथम निर्देश से यह निर्णय होता है कि दिन का समय था, रात्रि का नहीं। 'नरनारायणौ क्रुद्धौ ज्ञात्वा देवाः सवासवाः' (द्रोण० ७७.२) 'नर-नारायण (अर्जुन और श्रीकृष्ण) के क्रुद्ध होने...........' इस द्वितीय सन्देश से यह निश्चय होता है कि अभिमन्युवध का समाचार सुनकर भयंकर प्रतिज्ञा कर श्रीकृष्णार्जुन द्वारा क्रुद्ध होकर शंख बजाने के समय सायकाल था, उसी समय सूर्यकबन्ध (मस्तक हीन शरीराकृति) से घिर गया, त्रिलोकी संत्रस्त हुई। वाहन मल-मूत्र करने और रोने लग गये। समुद्र क्षुब्ध हो गये। भूत-प्रेतादि नाचने लगे।

अथवा सूर्य में कबन्ध का दृष्टिगोचर होना रात्रि में भी सम्भव है जैसे दिन न होने पर भी रात्रि में सोये हुए व्यक्ति को स्वप्न में दिन की घटनाओं का आभास होता है।

अथवा जिस समय श्रीकृष्णार्जुन विजय सूचक शुभ शकुनों को अनु-भव करते हुए युद्धभूमि में पहुंचे, सूर्योदय का समय उपस्थित हो रहा था। दोनों वीरों ने क्रुद्ध होकर शंख बजाये। उस समय भी अपशकुन प्रकट होने लगे। आकाश से भयंकर गर्जना के साथ सहस्रों जलती हुई उल्काएँ गिरने लगीं और सारी पृथिवी काँपने लगी। 'श्रुत्वा महाबलस्योग्रां प्रतिज्ञां सव्यसा-चिनः' (द्रोण० ७७. ८) (अर्जुन की प्रतिज्ञा सुनकर) यह लक्षण भी दोनों समय घटित होता है। अर्जुन को अत्यन्त प्रसन्न होकर युद्धभूमि में प्रवेश करते देखकर भी सभी उनकी प्रतिज्ञा को जान सकते हैं। रात्रियुद्ध की आशंका से युद्ध के लिए उद्यत होते समय गुप्तचरों से भी पार्थ की प्रतिज्ञा सुनकर सभी त्रस्त हो सकते हैं। युद्धकाल उपस्थित होने पर अपशकुनों का स्पष्ट वर्णन द्रोणपव ८४।२५ ; ८८। -६ में है।

'सायाह्ने', 'ततो निशाया दिवसस्य चाशिवः शिवारुतैः सन्धिरवर्त-ताद्भुतः। कुशेशयापीडनिभेदिवाकरे विलम्बमानेऽस्तमुपेत्य पर्वताम्.' 'प्रियां तनुं भानुरुपैति पावकम्' (द्रोण० ५०।१-४), 'ततः सन्ध्यामुपास्यैव वीरौ वीरावसादने' (द्रोण० ७२. ८) आदि उक्तियों से अर्जुन की प्रतिज्ञा का समय सायाह्न सिद्ध होता है, प्रातः कदापि नहीं।

परन्तु 'तां निशां दुःख शोकार्तौ" (द्रोण० ७७. १) से प्रतिज्ञावाली

रात्रि का पहले संक्षिप्त परिचय देकर 'नर-नारायणौ क्रुद्धौ ज्ञात्वा देवाः सवासवाः।', 'श्रुत्वा महाबलस्योग्रां प्रतिज्ञां सव्यसाचिनः ॥' (द्रोण० ७७। २–८) तक युद्धभूमि में श्रीकृष्णार्जुन के प्रयाण का निर्देश कर महाकवि ने अभिमन्युवध वाली रात्रि का विस्तार पूर्वक वर्णन करने की इच्छा से आगे का प्रसंग उपस्थापित करते हुए 'अथ कृष्णं............' (द्रोण० ७७ ९) कहा है, ऐसा मानना ही समीचीन है।

श्रीभीष्माचार्य के नेतृत्व में रात्रि विश्राम के वाद युद्ध का सर्वत्र उल्लेख भी अवकाश युक्त युद्ध की कल्पना के सर्वथा विरुद्ध ही है—

"ततोऽवहारः सैन्यानां तव तेषां च भारत।
अस्तं गच्छति सूर्योऽभूत् संध्याकाले च वर्तति ॥"
(भीष्म० ५४. ४३)

'भारत ! इस प्रकार सूर्य के अस्ताचल को चले जाने पर सन्ध्या के समय आपकी और पाण्डवों की सेनाएँ लौट आयीं ॥'

"प्रभातायां च शर्वर्यां भीष्मः शान्तनवस्तदा।
अनीकान्यनुसंधाने व्यादिदेशाथ भारत ॥" (भीष्म० ५६. १)

'भारत ! जब रात बीती और प्रभात हुआ तब शान्तनुनन्दन भीष्म ने अपनी सेनाओं को युद्ध भूमि में चलने का आदेश दिया ॥'

"इति ब्रुवन्तः शिबिराणिजग्मुः सर्वे गणा भारत ये त्वदीयाः ॥
उल्कासहस्रैश्च सुसम्प्रदीप्तैर्विभ्राजमानैश्च यथा प्रदीपैः।
किरीटिवित्रासित सर्वयोधा चक्रे निवेशं ध्वजिनी कुरूणाम् ।"
(भीष्म० ५९।१३८, १३९)

'भारत ! उपर्युक्त बातें कहते हुए आपके समस्त सैनिक सहस्रों जलती हुई मशालें तथा प्रकाशमान दीपों के उजाले में अपने-अपने शिबिर में गये। कौरव सेना के सम्पूर्ण सैनिकों पर अर्जुन का त्रास छा रहा था। इसी अवस्था में उस सेना ने रात्रि विश्राम किया।'

"व्युष्टां निशां भारत भारतानामनीकिनीनां प्रमुखे महात्मा।
ययौ सपत्नान् प्रतिजातकोपो वृतः समग्रेण बलेन भीष्मः ॥"
(भीष्म० ६०. १)

'भारत ! जब रात बीती और प्रभात हुआ, तब भारत वंशियों की सेना के अग्रभाग में स्थित हुए महामना भीष्म समग्र सेना से घिरकर शत्रुओं से युद्ध करने के लिए चले । उस समय उन के मन में शत्रुओं के प्रति बड़ा क्रोध था ।

चतुर्थ दिन के युद्ध में भीष्माचार्य के निम्नलिखित वचन से उनके नेतृत्व में अवकाश युक्त युद्ध का स्पष्ट ही खण्डन होता है—

"तन्न मे रोचते युद्धं पाण्डवैर्जितकाशिभिः ।
घुष्यतामवहारोऽद्य श्वो योत्स्यामः परैः सह ।।"
(भीष्म० ६४. ७७)

'इसलिये विजय से देदीप्यमान इन पाण्डवों के साथ इस समय युद्ध करना मुझे रुचता नहीं । आज युद्ध का विराम घोषित कर दिया जाय । कल सबेरे हमलोग शत्रुओं के साथ युद्ध करेंगे ।।'

"व्युषितायां च शर्वर्यामुदिते च दिवाकरे ।
उभे सेने महाराज युद्धायैव समीयतुः ।।"
(भीष्म० ६९. १)

"महाराज ! वह रात बीतने पर जब सूर्योदय हुआ, तब दोनों ओर की सेनाएँ आमने-सामने आकर युद्ध के लिये डट गयीं ।।"

अवकाश रहित युद्ध का वर्णन स्कन्दपुराण ३ ब्रह्म खण्ड 'अश्वत्थाम्ना पाण्डव शिविरे गमनम्' नामक अध्याय में इस प्रकार है—

'युद्धं दशदिनं कृत्वा भीष्मेशान्तनवे हते ।
द्रोणे पञ्चदिनं कृत्वा कर्णे च द्विदिनं तथा ।।
तथैवैकदिनं युद्ध्वा शल्ये च निधनं गते ।
अष्टादश दिने तत्र रणे दुर्योधने द्विजाः ।।
भग्नोरौ भीमगदया पतिते राजसत्तमे ।
सर्वे नृपतयो विप्रा निवेशाय कृतत्वरा ।।
(अध्याय० ३०. ५–७)

आदित्यास्तमयात्पूर्वमपराह्णे समाययुः ।
सुयोधनं तदा दृष्ट्वा रणपांसुषु रूषितम् ।।

भग्नोरुदण्डंगदया भीमसेनेन भीमया।
रुधिरासिक्त सर्वाङ्गञ्चेष्टमानं महीतले ॥
अशोचन्त तदा तत्र द्रोणपुत्रादयस्त्रयः।
शुशोच सोपि तान्दृष्ट्वा रणे दुर्योधनो नृपः ॥
(अध्याय ३०. १७–१९)

निद्रार्तमर्धरात्रे च तथात्यक्तायुधं रणे।
भिन्नयोधं मलं सर्वं प्रहर्तव्यमरातिभिः ॥
(अध्याय ३०. ५६)

• कवीश्वर के मत में मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्दशी को आठवें दिन का युद्ध रात्रि के प्रारम्भ में स्वच्छ चन्द्रप्रकाश के सामने से उनके ऊपर आ रहा था और इसलिये उनकी स्वयं की छाया पीछे अनुचरों पर गिर कर अन्धेरा हो गया, वे ठीक प्रकार से नहीं दिखने लगे और छाया भी एक-दो की नहीं, अपितु अगणित हाथी, रथादि से युक्त विशान सेना की।

परन्तु उक्त कल्पना सर्वथा निराधार है। इस न्याय से तो शुक्लपक्ष की अधिक प्रकाशवाली तिथियों में युद्ध सर्वथा ही असम्भव मानना चाहिये। आठवें दिन के अवहार (युद्ध विराम) का विवरण महाभारत में इस प्रकार है—

* 'रात्रिः समभवत्तत्र नापश्याम ततोऽनुगान्।
ततोऽवहारं सैन्यानां प्रचक्रुः कुरुपाण्डवाः ॥
* "रजनीमुखे सुरौद्रे तु वर्तमाने महाभये।
अवहारं ततः कृत्वा सहिताः कुरुपाण्डवाः।
न्यविशन्त यथाकालं गत्वा स्वशिबिरं तदा ॥"
(भीष्म० ९६. ७९, ८०)

"रात हो गयी थी। हमें अपने सैनिक नहीं दिखाई दे रहे थे, तब कौरव एवं पाण्डवों ने अपनी-अपनी सेना को लौटने का आदेश दे दिया॥ फिर उस भयानक और रुद्ररूपवाले प्रदोषकाल में कौरव तथा पाण्डव एक साथ अपनी-अपनी सेना को लौटाकर यथा समय शिबिर में जा पहुंचे और विश्राम करने लगे ॥"

उक्त उद्धरणों से सिद्ध है कि आठवें दिन का युद्ध कृष्णपक्ष में हुआ।

इतना ही नहीं, महाभारत के अनुसार पूर्वदिशा की ओर पाण्डवों का मुख सिद्ध होता है न कि कौरवों का—

* 'पश्चिन्मुखाः कुरवो धार्तराष्ट्राः
स्थिताः पार्थाः प्राङ्‌मुखा योत्स्यमानाः।"
(भीष्म० २० ४½)

"आपके पुत्र—कौरवों का मुख पश्चिम दिशा की ओर था और कुन्ती के पुत्र उनसे युद्ध करने के लिए पूर्वाभिमुख खड़े थे ॥"

* "महारथौघविपुलः समुद्र इव घोषवान्।
भीष्मेण धार्तराष्ट्राणां व्यूहः प्रत्यङ्‌मुखो युधि ॥"
(भीष्म० २०. १९)

"भीष्म द्वारा रचित कौरव–सेना का वह व्यूह महारथियों के समुदाय से सम्पन्न हो, समुद्र के समान गर्जना करता था। युद्ध में उसका मुख पश्चिम की ओर था ॥"

* "अभिधाय तु दुर्धर्षां धार्तराष्ट्रस्य वाहिनीम्।
प्राङ्‌मुखाः पश्चिमे भागेन्यविशन्त ससैनिकाः ॥"

"पाण्डवों के योधा लोग अपने-अपने सैनिकों के सहित धार्तराष्ट्रों की दुर्धर्ष सेना के सम्मुख जाकर पश्चिम-भाग में पूर्वाभिमुख होकर ठहर गये थे ॥"

* "ते समेत्य यथान्यायं धार्तराष्ट्रा महाबलाः।
कुरुक्षेत्रस्य पश्चार्धे व्यवातिष्ठन्त दंशिताः ॥"
(उद्योग० १९५. ११)

"धृतराष्ट्र के वे महाबली पुत्र रणक्षेत्र में जाकर सुसज्जित हो कुरु-क्षेत्र के पश्चिम भाग में यथोचित रूप से खड़े हुए ॥"

• कवीश्वर का यह भी कथन है कि शल्याभिषेक के दिन अवकाश अवश्य था। हिमालय पर अभिषेक का उल्लेख है। सोलह मील की दूरी पर स्थित धर्मराज ने बिना दूत के ही अभिषेक कालीन शब्द को कैसे सुना ? साथ ही जब सायंकाल मरे हुए कर्ण को कौरव-पाण्डव दीपों के प्रकाश में

देख रहे थे, तब उसके कई घण्टे बाद हिमालय पर होने वाले शब्द सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण ने धर्मराज को शल्यवध के लिए सायंकाल कैसे प्रेरित किया ? अतः

"एतावदुक्त्वा वचनं केशवः परवीरहा ।
जगाम शिबिरं सायं पूज्यमानोऽथ पाण्डवैः ॥"
(शल्य० ७. ४२)

"शत्रुवीरों का संहार करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण यह बात कहकर सायं पाण्डवों से सम्मानित हो अपने शिबिर में चले गये ।।' इस श्लोक में प्रयुक्त 'सायं' का अर्थ कर्णवध के दूसरे दिन सायंकाल ही सम्भव है । इस-लिए कर्णवध के बाद शल्याभिषेक के उपलक्ष्य में एक दिन का अवकाश मानना चाहिये ।"

परन्तु ऐसा कथन उपयुक्त नहीं । जिस तरह दुर्योधनवधमें दुर्योधनके भागने, संजय का उससे मिलने, उसका द्वैपायन सरोवर में प्रवेश करने, पुनः संजय प्रेरित कृप, अश्वत्थामा और कृतवर्माका उससे मिलने. तीनों का शिबिर में लौट आने, युयुत्सु का हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान करने, दुर्योधन द्वारा अश्वत्थामा का युद्धार्थ अभिषिक्त होने, पुनः कृतवर्मा और कृपाचार्य सहित अश्वत्थामा का घनघोर वन में प्रवेश करने तक महाभारत में सायंकाल का ही वर्णन है । अतः मध्याह्नोत्तर सूर्यास्त के कुछ समय बाद तक दोनों ही स्थलों में सायंकाल शब्द का प्रयोग समझना चाहिये ।

अब रही धर्मराज द्वारा गुप्तचर के सुदूर होने वाले शल्याभिषेक के घोष को सुनने की बात । इसका भी समाधान यह है कि—

(१) युद्धकाल में सदैव गुप्तचर सन्निहित रहते ही थे और वे प्रति-क्षण होने वाली प्रत्येक घटना की सूचना तुरन्त ही धर्मराज को दे देते थे । भीष्म का सेनापति पद पर अभिषेक होते ही धर्मराज ने तुरन्त कह दिया कि 'हमलोगों का पितामह से पहले ही युद्ध होगा'—

"पितामहेन वो युद्धं पूर्वमेव भविष्यति ।"
(उद्योग० १५७. ७३)

महाभारत युद्ध में दिव्यदर्शिता का पर्याप्त उल्लेख है । श्रीकृष्ण और व्यासप्रदत्त दिव्य दृष्टि के अमोघ प्रभाव से क्रमशः अर्जुन और संजय की

दिव्यदर्शिता तो अत्यन्त प्रसिद्ध ही है। भीष्मपतन के दिन प्रातः 'अवाक् शिराः चन्द्रमाः' (दोनों कोनों के सिरे नीचे किये हुए चन्द्रमा) को तथा अन्य उत्पातों को देखकर द्रोणाचार्य ने भीष्म की रक्षा के लिए विशेष रूप से उद्बोधित करते हुए अश्वत्थामा से कहा—'आज भीष्मपतन का योग उपस्थित हो रहा है।'

"अपसव्यं ग्रहाश्चक्रुरलक्ष्माणं दिवाकरम्।
अवाक्शिराश्च भगवानुपातिष्ठत चन्द्रमाः॥"
(भीष्म० ११२. १२)

"अयं हि दिवसस्तात यत्र पार्थो महाबलः।
जिघांसुः समरे भीष्मं परं यत्नं करिष्यति॥"
(भीष्म० ११२. ४)

इसी तरह 'पञ्चमे दिवसे तात पृथिवी ते भविष्यति' (द्रोणपर्व १८३. ६५) इस व्यास जी द्वारा की गयी भविष्यवाणी का उल्लेख भी है। कर्णवध के दिन पहले ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सावधान करते हुए कहा—'आज तुम्हारे हाथों कर्ण का वध होना है।' दुर्योधन के धराशायी होने पर धर्मराज प्रेरित श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर में देवी गान्धारी और राजा धृतराष्ट्र को सान्त्वना देने के अनन्तर सहसा कुरुक्षेत्र के लिए प्रस्थान करना चाहा और उन्होंने श्रीवेदव्यास जी के सम्मुख कहा—"आज अश्वत्थामा पाण्डवों का नाश करना चाहता है, अतः उनकी रक्षा के लिए मुझे अति शीघ्र चलना है।"

"द्रौणिसंकल्पितं भावमवबुद्ध्यत केशवः।"
(शल्य० ६३. ७०½)

"द्रौणेः पापोऽस्त्यभिप्रायस्तेनास्मि सहसोत्थितः।
पाण्डवानां वधे रात्रौ बुद्धिस्तेन प्रदर्शिता॥"
(शल्य० ६३. ७२)

क्योंकि विधाता के विधान में धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा ही शल्यवध होना था, अतः दिव्यदर्शी धर्मराज ने भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेरणा से हिमालय पर हो रहे शल्याभिषेक का शब्द सुना।

स्वयं युधिष्ठिर ने 'अनुस्मृति विद्या' के प्रसंग में उनकी दिव्यदर्शिता का रहस्योद्घाटन किया है—

"देवर्षिर्लोमशो दृष्टस्ततः प्राप्तोऽस्म्यनुस्मृतिम् ।
दिव्यं चक्षुरपि प्राप्तं ज्ञानयोगेन वै पुरा ।।"
(स्त्रीपर्व २६. २०)

'तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग में देवर्षिलोमश का दर्शन हुआ था। उन्हीं से मैंने यह अनुस्मृति विद्या प्राप्त की थी। इसके अतिरिक्त पूर्वकाल में ज्ञान-योग के प्रभाव से मुझे दिव्यदृष्टि भी प्राप्त हो गयी थी ।।"

जब द्रोणाचार्य ब्रह्मलोक के लिए प्रस्थान कर रहे थे, तब दिव्यदर्शी धर्मराज ने भी उनका दर्शन किया—

"ब्रह्मलोकगते द्रोणे धृष्टद्युम्ने च मोहिते।
वयमेव तदाद्राक्ष्म पञ्च मानुषयोनयः ।।
योगयुक्तं महात्मानं गच्छन्तं परमां गतिम् ।
अहं धनंजयः पार्थो कृपः शारद्वतस्तथा ।।
वासुदेवश्च वार्ष्णेयो धर्मपुत्रश्च पाण्डवः ।
अन्ये तु सर्वे नापश्यन् भारद्वाजस्य धीमतः ।।
महिमानं महाराज योगयुक्तस्य गच्छतः ।"
(द्रोण० १९२ ५६–५८½)

"धृष्टद्युम्न के मोहित हो जाने पर द्रोणाचार्य के ब्रह्मलोक जाते समय मैं (संजय), कुन्तीपुत्र अर्जुन शरद्वान् के पुत्र कृपाचार्य, वृष्णिवंशी भगवान् श्रीकृष्ण तथा धर्मपुत्र पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर इन पाँच मनुष्यों ने ही योगयुक्त महात्मा द्रोण को परम धाम को ओर जाते देखा था। अन्य सब लोगों ने योगयुक्त हो उर्ध्वगति को जाते हुए बुद्धिमान् द्रोणाचार्य की महिमा का साक्षात्कार नहीं किया।"

इस तरह कवीश्वरने जो अवकाश की सिद्धिमें प्रमाण प्रस्तुत किये हैं, वे सब अवकाश न होने में वज्र हेतु हैं। पन्द्रहवें दिन के वाद एक एक दिन अवकाश और शल्यवध के दूसरे दिन दुर्योधन वध की बात मानने पर 'पञ्चमे दिवसे तात पृथिवी ते भविष्यति' (द्रो० प० १८३ ६५), यह व्यास वचन खण्डित होता है।

इतना ही नहीं, चित्रा नक्षत्र में मार्गशीर्ष की अमावास्या मानने के कारण आद्योपान्त तिथि और नक्षत्र का योग असन्तुलित होता है। 'पुष्य' में मार्गशीर्ष कृष्ण सप्तमी मानने के कारण कार्तिकी अश्विनी में सिद्ध होती है, इसी तरह कृत्तिका में मार्गशीर्ष की पूर्णिमा। एक ओर तो मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष में दो तिथियों का क्षय माना है, दूसरी ओर एक नक्षत्र की वृद्धि भी मानी है। यह सब गड़बड़ चित्रा को ऐन्द्र नक्षत्र मानने से हुआ है।

श्रीकवीश्वर ने भीष्म-निर्वाण सम्बन्धी दो वचनों की सार्थकता पर कोई ध्यान ही नहीं दिया है। इनके मत में भीष्माचार्य के पास श्रीकृष्ण सहित पाण्डव माघ शुक्ला नवमी को पहुँचते हैं। ऐसा मानने पर 'पञ्चाशतं षट्' (शान्ति० ५१. १४) का अर्थ—नवमी सहित पूर्णिमा तक सात दिन अथवा दशमी से पूर्णिमा तक छह दिन सिद्ध होता है। ये दशमी से पूर्णिमा तक उपदेश मानते हैं। परन्तु ऐसी स्थिति में तो **'उषित्वा शर्वरीः श्रीमान् पञ्चाशन्नगरोत्तमे'** (अनुशा० १६७. ५) के अनुसार उपदेश श्रवण के पश्चात् पाण्डवोंके हस्तिनापुरमें निवास सम्बन्धीवचन ही निरर्थक सिद्ध हो जाता है। यहाँ यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि श्रीभगवान् के **'सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति'** (उद्योग० १४६. १८) इस बचन के तात्पर्य से अनभिज्ञ होने के कारण ही श्रीकवीश्वर ने अवकाश युक्त युद्ध सिद्ध करने की असम्भव कल्पनाएँ करने का साहस किया है। भगवान् के **'पञ्चाशतं षट् च'** (शान्ति० ५१. १४) इस वचन पर वज्र मौन धारण कर लिया है। साथ ही पूर्णिमा की उत्तर रात्रि में, तीन मुहूर्त्त रात्रि शेष रहने पर भीष्मजी का देहत्याग मानते हैं। परन्तु ऐसा मानने पर **'त्रिभागशेषः'** (अनुशा० १६७ २८) का प्रसंगानुसार प्राप्त महत्त्व ही लुप्त होता है।

६—८ 'मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी युद्धारम्भ (गीता जयन्ती) की प्रामाणिक तिथि' इस पक्ष में विविध मत।

१—पं० श्रीगिरिधर शर्मा चतुर्वेदी जी [२३]

मत-निरूपण

चौदहवें दिन चन्द्रमा का उदय मध्यरात्रि के बाद प्रहर या डेढ़ प्रहर

२३—गीता प्रवचन, गीता व्याख्यान माला ; प्रथम संस्करण १९६२, प्रथम खण्ड 'गीता का समय'।

रात्रि बाकी रहते हुआ था। यह घटना मार्गशीर्ष शुक्ल ११ को युद्धारम्भ मानने पर ठीक घटती है, क्योंकि शुक्ल ११ को युद्धारम्भ होने पर कृष्ण नवमी को चौदहवाँ दिन होना चाहिये। महाभारत से यह भी विदित होता है कि युद्ध के समय एक पक्ष तेरह दिन का था। इस प्रकार एक या दो तिथियों का क्षय मान लेने पर दशमी या एकादशी में चौदहवाँ दिन आ जाता है। उस दिन चन्द्रोदय डेढ़ प्रहर अवशिष्ट रहने पर ही होता है। शुक्ल १३ को युद्धारम्भ मानने पर चौदहवाँ दिन कृष्ण १२ या १३ को आ पड़ता है। उस दिन चन्द्रोदय का कोई महत्त्व नहीं रहता। उसका प्रकाश अत्यल्प हो जाता है। किन्तु महाभारत में उस दिन चन्द्रमा की चन्द्रिका के फैलने का अच्छा वर्णन मिलता है। मार्गशीर्ष शुक्ल ११ गीताजयन्ती के रूप में प्रसिद्ध भी है। जब उपपत्ति बनती है तो प्रसिद्धि को क्यों छोड़ा जाय? इसलिये मार्गशीर्ष ११ को ही युद्धारम्भ का और गीतोपदेश का दिन मानना युक्ति संगत है। मार्गशीर्ष में ही युद्धारम्भ सिद्ध होता है, क्योंकि माघ शुक्ल में जब अट्ठावन दिन हुए तो आरम्भ मार्गशीर्ष में ही मानना पड़ेगा (पृष्ठ ८०); भीष्म ने माघ शुक्ल के तृतीयांश शेष रहने पर अपने आपको शरशय्या में पड़े अट्ठावन दिन बताये हैं। मार्गशीर्ष शुक्ल ११ को युद्धारम्भ मानने पर भीष्म का पतन आगे के मास की कृष्णपक्ष की पञ्चमी या षष्ठी को मानना पड़ेगा। क्योंकि माघ शुक्ल ८ या १० को ५८ दिन नहीं होते, केवल ४७ या ४८ दिन होते हैं। भीष्म जी को युद्ध के १० दिनों में सेना संचालन की चिन्ता के कारण नये-नये व्यूह बनाने आदि के विचारों में निद्राका अवसर नहीं मिला और पतनके अनन्तर बाणोंकी वेदनासे निद्रा नहीं आती है, इसलिये निद्रा लिये ५८ दिन हो गये। ऐसा आशय ग्रहण किया जा सकता है (पृष्ठ ८१)।

विस्पष्ट युद्धकालिक चन्द्रोदय के वर्णन और लोक में गीताजयन्ती की प्रसिद्धि के अनुसार यही मानना उचित है कि गीता का प्रादुर्भाव ईसवी सन् के तीन हजार एक सौ एक वर्ष पूर्व मार्गशीर्ष शुक्ल ११ को हुआ था। उसी दिन संसार को यह उपदेशामृत मिला। वह दिन भारतवर्ष के लिए चमकते हुए सौभाग्य का स्मरणीय दिन है (पृष्ठ ८३)। स्वयं महाभारत के लेखक के अनुसार महाभारत का निर्माण काल युद्ध के ५० वर्ष के बाद ही है (पृष्ठ ७७)।

जैसे भगवान् कृष्ण और रामादि अवतारों के प्रादुर्भाव का दिन

प्रचलित प्रथा के आधार पर ही माना जाता है, उसी प्रकार गीता के प्रादुर्भाव का दिन भी प्रचलित प्रथा के अनुसार ही मानना उचित है।

मत-विमर्श

श्रीचतुर्वेदी जी ने अवकाश रहित युद्ध को अधिक महत्त्व दिया है। माघ शुक्लाष्टमी जो कि भीष्मजी के देहत्याग की शास्त्रसिद्ध प्रसिद्ध तिथि है उससे ५८ दिन पूर्व युद्धारम्भ उचित है, जहाँ उन्होंने ऐसा माना है, वहाँ चौदहवें दिन के रात्रि युद्ध में मध्यरात्रि के बाद प्रहर या डेढ़ प्रहर रात्रि शेष रहते चन्द्रमा के उदय का वर्णन कृष्ण नवमी को सिद्ध करता है, अतः उसके चौदहवें दिन युद्धारम्भ उपयुक्त है, ऐसा माना है। दोनों ही दृष्टियों से तथा परम्परा प्राप्त प्रसिद्धि से भी मार्गशीर्ष शुक्ल ११ गीताजयन्ती की उपयुक्त तिथि मान्य है। मार्गशीर्ष शुक्ल ११ में युद्धारम्भ न मानकर भीष्म-पतन मानें तो उसके उट्ठावनवें दिन एक तो माघ शुक्लाष्टमी में भीष्म जी का देहत्याग नहीं सध पाता, दूसरा युद्ध के चौदहवें दिन पूर्णिमा होने के कारण उत्तररात्रि में चन्द्रोदय का योग नहीं सध पाता।

यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अनादि काल से माघ शुक्ला-अष्टमी भीष्म निधनकी शास्त्रीय तिथि निश्चित है। महाभारतके दाक्षिणात्य पाठ में भी उसका उल्लेख है। गीताजयन्ती के रूप में मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी की परम्परागत प्रसिद्धि अवश्य है, परन्तु प्राचीन शास्त्रों में इसका उल्लेख नहीं है, साथ ही श्रीनीलकण्ठाचार्य ने भी इसका उल्लेख नहीं किया है। नक्षत्र के अनुगुण तिथि और अवकाश रहित युद्ध की स्थिति दोनों का दृढ़ता पूर्वक पालन करने पर श्रीनीलकण्ठाचार्य ने जो भारत सावित्री का शोधन कर मार्गशीर्ष शुक्ल १४ मृगशिरा में युद्धारम्भ और पौष शुक्ल १ श्रवण में युद्धान्त माना है, वह परम उपयुक्त है; परन्तु ऐसा मानने पर पौष कृष्ण १२ को तीन मुहूर्त्त शेष रहते रात्रि में चन्द्रोदय सिद्ध होने पर भी युद्धारम्भ के या भीष्मपतन के भी ५८ वें दिन माघ शुक्लाष्टमी में भीष्मोत्क्रमण सिद्ध नहीं होता। इससे गीताजयन्ती और भीष्मोत्क्रमण की दोनों प्रसिद्ध तिथियाँ खण्डित हो जाती हैं। इधर 'अष्टपञ्चाशतं रात्र्यःशयानस्याद्य मे गताः' (अनुशा० १६७. २७) इस भीष्मवचन का अभिप्राय ऐसा मानें कि 'युद्धारम्भ से अब तक अर्थात् आज देहत्याग के समय तक अट्ठावन दिन मुझे हो गये जिन में ५८—९=४९ दिन शरशय्या पर समासीन हुए व्यतीत हुए हैं' तब मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी ही युद्धारम्भ की तिथि और माघ

शुक्लाष्टमी ही भीष्मोत्क्रमण की तिथि सिद्ध होती है। दोनों तिथियों की सार्थकता हो जाती है। लेकिन महाभारत के अनुसार श्रवण नक्षत्र में गदा युद्ध अर्थात् युद्धान्त अनिवार्य है, पौष शुक्ल १ से पूर्व उसका योग सध पाना कठिन है, ऐसी स्थिति में मार्गशीर्ष की पूर्णिमा मृगशिरा में मानने पर एकादशी की सिद्धि अश्विनी में, आर्द्रा में मानने पर भरणी में सम्भव है। अश्विनी से बाइसवें, भरणी से इक्कीसवें, कृत्तिका से बीसवें, रोहिणी से उन्नीसवें और मृगशिरा से अट्ठारहवें स्थान पर श्रवण नक्षत्र है। अठारहवें दिन युद्धान्त सिद्ध होने के कारण मृगशिरा के पश्चात् युद्धारम्भ सम्भव नहीं। साथ ही पौष शुक्ल १ से पूर्व श्रवण नक्षत्र न होने के कारण अश्विनी या भरणी में ही मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी मान्य है। अश्विनी में युद्धारम्भ और श्रवण में युद्धान्त मानने पर २२ दिनों में ४ अवकाश की कल्पना करनी पड़ती है। भरणी में युद्धारम्भ और श्रवण में युद्धान्त मानने पर २१ दिनों में ३ अवकाश की कल्पना करनी पड़ती है। यद्यपि लाघव ३ अवकाश मानने में है, भीष्मवध के उपलक्ष्य में १ और द्रोणवध और कर्णवध के उपलक्ष्य में १-१ अवकाश मानकर संगति सध सकती है। तथापि 'मघा विषयगः सोमः' (भीष्म० १७. २) इस संजय वचन की सार्थकता नहीं सध पाती। मघा नक्षत्र में युद्धारम्भ मानकर या भीष्मवध मानकर ही इसकी सार्थकता सिद्ध होती है। परन्तु मघा में युद्धारम्भ मानने पर या तो १३ वें दिन ही युद्धान्त सिद्ध होता है या ४० वें दिन। क्योंकि मघा से श्रवण १३ वें स्थान पर है और श्रवणोत्तर श्रवण ४० वें स्थान पर। परन्तु कुल १३ दिन युद्ध या ४० दिनों में कुल १८ युद्ध मानना अनुपयुक्त है। ऐसी स्थिति में मघा में भीष्मपतन का उल्लेख मानने पर उससे ६ दिन पूर्व अश्विनी में ही युद्धारम्भ सिद्ध होता है। ऐसा मानने पर भीष्मवध, द्रोणवध, कर्णवध के उपलक्ष्य में कुल ४ अवकाश मानना पड़ता है। परन्तु द्रोणवध या कर्णवध के उपलक्ष्य में केवल १ अवकाश ही माना जा सकता ; क्योंकि रात्रि युद्ध में वेदव्यास की धर्मराज युधिष्ठिर के प्रति भविष्यवाणी है—'पञ्चमे दिवसे तात पृथिवी ते भविष्यति' (द्रोणपर्व १८३. ६५) यह तभी संभव है जब पाँचवें दिन युद्धान्त हो चुका हो। अवकाश रहित युद्ध की दृष्टिसे तो चौदहवें दिन से अठारहवें दिन ठीक पाचवाँ मान्य है। चौदहवें दिन के बाद पाँचवें दिन मानने पर केवल एक अवकाश मान्य हो सकता है। अतः या तो भीष्म वध के उपलक्ष्य में ही कुल ४ अवकाश मान्य हों या द्रोण अथवा कर्णवध के उपलक्ष्य में १ और भीष्मवध के उपलक्ष्य में ३ मान्य हों।

कदाचित् प्रसंग का संकोच कर मघा में दोनों सेनाओंके कुरुक्षेत्र पहुँचने का ही निर्देश संजय के **'मघा विषयगः'** (भीष्म० १७. २) इस वचन में मानें तो भरणी में मार्गशीर्ष की एकादशी मानकर पौष शुक्ल प्रतिपदा श्रवण में युद्धान्त के लिये ३ अवकाश मानें अथवा कृत्तिका में ११ मानकर श्रवण में युद्धान्त के लिए केवल दो। लाघव की दृष्टि से कृत्तिका में युद्धा-रंभ उपयुक्त है; परन्तु भारत सावित्री में यम दैवत भरणी में युद्धारम्भ का उल्लेख है। भारत सावित्री के अनुसार हेमन्त के प्रथम मास में १३ भरणी में युद्धारम्भ और अमावास्या में युद्धान्त मान्य है। कदाचित् दोनों तिथियों का त्याग कर केवल नक्षत्र भरणी का ही ग्रहण करें तो ३ अवकाश की सिद्धि होती है। **फलितार्थ**—भीष्म निर्वाण की सार्थकता के लिए उससे अठावन दिन पूर्व युद्धारम्भ अनिवार्य है। **'माघोऽयं समनुप्राप्तः' 'त्रिभाग-शेषः'** (अनुशासन० १६७. २८) की सार्थकता के लिए भी शुक्लादि मासानु-सार माघ शुक्लाष्टमी ही भीष्मोत्क्रमण की तिथि सिद्ध है। उससे ५८ दिन पूर्व युद्धारम्भ मानने पर मार्गशीर्ष शुक्ल ११ में ही युद्धारम्भ सिद्ध होता है। ११ यदि अश्विनी में मानते हैं और भीष्मवध के पश्चात् ३ अवकाश मानते हैं तब १४ वें दिन का रात्रि युद्ध कृष्ण द्वादशी में सिद्ध होता है। युद्धारम्भ यदि भरणी में मानते हैं और भीष्मवध के बाद २ अवकाश मानते हैं तो रात्रियुद्ध में कृष्ण एकादशी सिद्ध होती है। श्रीधर स्वामी के अनुसार कृष्ण द्वादशी त्रिभागशेष रात्रि में चन्द्रोदय के उपयुक्त तिथि है। इस तरह कृष्ण द्वादशी के बाद उत्तररात्रि में चन्द्रोदय वाला पक्ष उपयुक्त नहीं सिद्ध होता है।

स्कन्द पुराण में एक-एक दिन अवकाश देकर तो नहीं; किन्तु श्रीराम या रावण की ओर से दुःखद घटना के उपलक्ष्य में ८७ दिनों के युद्धकाल में कुल १५ अवकाश का उल्लेख है। वहाँ अवहार शब्द का प्रयोग अवकाश के अर्थ में हुआ है। नागपाश में श्रीराम के आबद्ध होने के बाद दो दिनों का, राम द्वारा युद्ध से विमुख रावण द्वारा कुम्भकर्ण को प्रबोधित करने के उप-लक्ष्य में चार दिनों का अवकाश, कुम्भकर्णवध के उपलक्ष्य में रावण द्वारा एक दिन का मेघनाद पराजय के बाद पांच दिनों का अवकाश माया सीता के वध से व्याकुल राम द्वारा एक दिन का अवहार, मेघनादवध के उपलक्ष्य में रावण द्वारा एक अवहार, शक्ति प्रयोग से मूर्च्छित लक्ष्मण जी को सचेत करने के लिए संजीवनी लाने के प्रसंग में एक दिन का अवहार माना गया

है। इस रीतिसे यहाँ कौरव और पाण्डव दोनोंके मान्य भीष्म-द्रोणके उपलक्ष्य में ३ या ४ अवकाश उपयुक्त हैं।

इस तरह अश्विनी या भरणी नक्षत्र में मार्गशीर्ष शुक्ल ११ के दिन महाभारत युद्ध का आरम्भ और पौष शुक्ल १ या २ श्रवण में उसका अन्त। उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है।

मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी में युद्धारम्भ सम्बन्धी अन्य मत की समीक्षा (मत विमर्श) के सन्दर्भ में सर्वत्र ही उपर्युक्त विवेचन स्मरणीय है।

२—पं० श्रीदीनानाथ शास्त्री जी [२४]

मत-निरूपण

मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी 'मोक्षदा एकादशी' के नाम से लोक में विख्यात है। इसी दिन कुरुक्षेत्र की पवित्र भूमि पर भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था। अतः गीताजयन्ती भी इसीदिन मनायी जाती है। जिन प्रमाणों के आधार पर गीताजयन्ती कीप्रामाणिक तिथि मोक्षदा एकादशी मानी जाती है, उनमें कुछ ये हैं—

(क) युद्ध के अन्तिम दिन अर्थात् अठारहवें दिन राजा दुर्योधन के हारने के बाद रात को अश्वत्थामा ने पाण्डवों के डेरे पर आक्रमण किया था। इस आक्रमण का वर्णन 'रौद्री' नाम से किया गया है। 'रौद्री' के अर्थ हैं, 'कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात्रि में होने वाली।' इससे स्पष्ट प्रकट है कि युद्ध का अन्तिम दिन मार्गशीर्ष कृष्ण चतुर्दशी था। यहाँ पर समझ लेना आवश्यक है कि– महाभारत काल में महीने शुक्लपक्ष से प्रारम्भ होते थे। गुजरात, महाराष्ट्र आदि में अब भी शुक्लपक्ष से ही आरम्भ होते हैं। पुरानी प्रथा का इतना चिह्न इधर भी रह गया है कि नये वर्ष का आरम्भ चैत्र शुक्ल पक्ष में होता है और पूर्णमासी के लिए पंचांगों में १५ का अङ्क लिखा जाता है तथा अमावास्या के लिये ३० का। मास की गणना चाहे कृष्णपक्ष से आरम्भ की जाय चाहे शुक्लपक्ष से, शुक्लपक्ष दोनों गणनाओं में वही मासका आता है; अर्थात् मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष जो महाभारत काल में था,

२४—'सनातन ज्योति' हिन्दी साप्ताहिक, मार्गशीर्ष १२ शनिवार, १ दिसम्बर १९७९, सम्पादकीय लेख, मुख्य पृष्ठ।

वही आज भी सर्वत्र है। मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष जो महाभारत काल में था, वह उत्तर भारत में आजकल पौष कृष्णपक्ष माना जाता है। अब गणना करके देखिये कि मार्गशीर्ष कृष्ण चतुर्दशी (आजकल की पौषकृष्ण चतुर्दशी) से १८ दिन पूर्व मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी ही पड़ती है। उसी दिन महाभारत का युद्ध आरम्भ हुआ था और युद्धारम्भ के दिन ही प्रथम भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था।

(ख) भीष्मपर्व के सत्रहवें अध्याय में युद्ध का वर्णन करते हुए संजय राजा धृतराष्ट्र से कहते हैं कि युद्ध बड़े अशुभ समय में ही प्रारम्भ हुआ है; क्योंकि **'मघा विषयगः सोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत'** (भीष्म० १७. २)। उस दिन चन्द्रमा मघा विषयग' हो गया था। मघा' स्वयं और उसके दल के कुछ नक्षत्र बड़े अशुभ माने गये हैं। ज्योतिर्विदों के मतानुसार भीष्म पितामह जिस दिन धराशायी हुए थे, उस दिन चन्द्रमा 'मघा' नक्षत्र में था। उससे दशवें दिन पूर्व मघा के दल में से भरणी नक्षत्र मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी को था। संजय मघा नक्षत्र का नाम नहीं लेते हैं; परन्तु मघा के दल के नक्षत्र का। इससे मानना पड़ता है कि युद्धारम्भ के दिन चन्द्रमा भरणी नक्षत्र में था और यह दिन मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी थी।

(ग) वीर अभिमन्यु युद्ध के तेरहवें दिन मारे गये थे। इसके दूसरे दिन अर्थात् चौदहवें दिन सूर्यास्त पर राजा जयद्रथ का वध हुआ था और रात भर युद्ध चलता रहा। आधी रात में घटोत्कच मारा गया। घटोत्कच वध के बाद दोनों सेनाओं ने थोड़ा विश्राम किया। इस समय चन्द्रमा के उदय, आकार और प्रकाशादि का जो वर्णन महाभारत में उपलब्ध है, उससे ज्योतिर्विदों की सम्मति में चन्द्रमा कृष्णपक्ष दशमी का ही हो सकता है और किसी दिन का नहीं। इसके हिसाब से महाभारत युद्ध के चौदहवें दिन मार्गशीर्ष कृष्ण (आजकल पौषकृष्ण) दशमी पड़ती है। चौदहवें दिन पीछे गिनने से युद्ध आरम्भ होने की तिथि मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी ही ठहरती है। गीता का उपदेश भी उसी दिन हुआ।

(घ) भीष्मपर्व में एक श्लोक है—**'श्वेतो ग्रहस्तथा चित्रां समतिक्रम्यतिष्ठति'** (महा० भीष्म० ३. १२) श्वेतग्रह चित्रा नक्षत्र में स्थित है, इससे आज कौरवों का विशेष संहार होगा। अर्जुन, भीम, घटोत्कच आदि ने कौरव दल का सर्वाधिक संहार युद्ध के चौदहवें दिन किया है। मार्गशीर्ष की एकादशी से चौदहवें दिन ज्योतिष शास्त्र की गणना के अनुसार 'श्वेत'

ग्रह चित्रा नक्षत्र में उपलब्ध होता है। अतः युद्धारम्भ मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी को ही हुआ और उसी दिन गीता का उपदेश अर्जुन को प्राप्त हुआ।

मत-विमर्श

उपर्युक्त गणना का सारांश इस प्रकार है—युद्धारम्भ शुक्लादि मासानुसार मार्गशीर्ष शुक्ल ११ भरणी में हुआ। युद्धारम्भ की तिथि ही गीताजयन्ती की तिथि मान्य है। युद्ध के दशवें दिन भीष्मवध मार्गशीर्ण कृष्ण ४ मघा में हुआ। युद्ध के चौदहवें दिन जयद्रथवध और रात्रियुद्ध मार्गशीर्ण कृष्ण १० चित्रा में हुआ। अठारहवें दिन का युद्ध अर्थात् युद्धान्त मार्गशीर्ण कृष्ण १४ ज्येष्ठा में हुआ। (शुक्लान्त मासानुसार मार्गशीर्ष कृष्ण को पौष कृष्ण मानना चाहिये।)

(क) क्योंकि लेखक ने अवकाश रहित अठारह दिनों का युद्ध माना है, और मघा में दशवें दिन का और चित्रा में चौदहवें दिन का युद्ध माना है तब ज्येष्ठा में अठारहवें दिन का युद्ध अर्थात् युद्धान्त सिद्ध होता है। लेकिन महाभारत में श्रवण नक्षत्र में युद्धान्त का स्पष्ट उल्लेख है। इस तरह नक्षत्र गणना महाभारत के प्रतिकूल है। ज्येष्ठा के बाद चौथे स्थान पर श्रवण है।

(ख) गीताजयन्ती शुक्ल एकादशी में सिद्ध करने के लिए अठारहवें दिन सौप्तिक संहार' की रात्रि को मूलकार ने 'रौद्री' माना है जो कि कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी मान्य है' यह युक्ति दी गयी है। लेकिन कृष्ण चतुर्दशी के सत्रह दिन पूर्व अर्थात् कृष्ण चतुर्दशी के अठारहवें दिन शुक्ल एकादशी न होकर शुक्ल द्वादशी सिद्ध होती है। अठारह दिन युद्ध हुआ; अतः युद्धान्त के अठारहवें दिन पूर्व युद्धारम्भ होना चाहिये न कि युद्धान्त के दिन को छोड़कर अठारहवें दिन पूर्व। साथ ही 'रजनीमुखे सुरौद्रे तु' (महा० ९६.८०) के अनुसार आठवें दिन की रात्रि का नाम भी रौद्री सिद्ध होता है, अतः प्रसंगानुसार कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि में 'रौद्री' रूढ़ नहीं है।

(ग) जब 'मघा' नक्षत्र में भीष्मवध अर्थात् दशवें दिन का युद्ध माना है तब उससे नौ नक्षत्र पूर्व अश्विनी में युद्धारम्भ मान्य होना चाहिये न कि भरणी में।

३—पं० श्री इन्द्रनारायण जी द्विवेदी [२५]

मत-निरूपण

(१) जय, महाभारत और भारत—ये तीनों पर्यायवाची हैं, प्रचलित लक्ष श्लोकात्मक महाभारत के ही नाम हैं।

(२) प्रचलित महाभारत संहिता के रचयिता एकमात्र महर्षि वेदव्यास हैं और इसकी रचना आज विक्रम संवत् २०१५ के प्रारम्भकाल के पूर्व ५०३६ और ५०३४ वर्षों के बीच किसी समय हुई है।

(३) महाभारत संहिता की चूड़ामणि स्वरूपा श्रीमद्भगवद्गीता का प्रादुर्भाव आज वि० सं० २०१५ प्रारम्भ के पूर्व ५०६० वर्ष ३ महीना और १७ दिन पर हुआ।

(४) महाभारत युद्धकाल महाराज युधिष्ठिर का राज्याभिषेक और राजा परीक्षित् का जन्मकाल आज वि० सं० २०१५ के प्रारम्भसे पूर्व ५०६० वर्ष की मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी से लेकर फाल्गुन कृष्ण अमावास्या के प्रथम कलियुगारम्भ काल में विक्रम संवत् से पूर्व ३०४५ तथा ईसवी सन् से पूर्व ३१०२ वर्ष में सिद्ध होता है।

(५) सर विलियम जोन्स के वक्तव्य की कल्पना के आधार पर पाश्चात्य विद्वानों और उनके पदानुगामी भारतीय विद्वानों द्वारा प्रतिपादित महाभारत युद्धकाल सर्वथा निराधार, प्रमाण रहित और अमान्य है।

मत-विमर्श

क्योंकि लेखक ने नक्षत्र गणना के अनुसार विचार नहीं किया है, अतः इस मत की समीक्षा यहाँ करना उपयुक्त नहीं है। महाभारत रचना काल का वृहद् विश्लेषण 'महाभारत रचना और भगवद् गीताभिव्यक्ति–काल' नामक लेख में आगे द्रष्टव्य है।

४—श्री गुप्तमत निरूपण

'सप्तमाच्चापि दिवसादमावास्या भविष्यति.................. तां ह्याहुः

---

२५ महाभारत संहिता और उसका रचनाकाल, महाभारत वर्ष ३, अङ्क ११ (कल्याण, गीताप्रेस)।

शक्रदेवताम् ॥' (उद्योग० १४२. १८) इस वचन से मार्गशीर्ष अमा को ज्येष्ठा नक्षत्र है। अतः सूर्य भी अमा को ज्येष्ठा नक्षत्र पर होंगे। महाभारत के काल में सूर्य जब श्रविष्ठा=धनिष्ठा नक्षत्र पर आते थे तब उत्तरायण आरम्भ होता था। वेदांग ज्योतिष में आया है—

"प्रपद्येते श्रविष्ठादौ सूर्याचन्द्रमसावुदक्।
सार्पार्धे दक्षिणार्कस्तु माघश्रावण्योः सदा ॥"७॥

सूर्य को ज्येष्ठा से धनिष्ठा तक पहुंचने में ६७ (सप्तषष्टि) दिन लगेंगे, अतः माघ शुक्ल ७ को सूर्य उत्तरायण में आ जायेंगे, अतः माघ शुक्ल ८ को भीष्म निर्वाण उचित ही है।

चिरकाल से भारत में गीताजयन्ती मार्गशीर्ष शुक्ल ११ को और भीष्म निर्वाण माघ शुक्ल ८ को मनाते हैं। पंचागों में भी यही लिखा रहता है। इससे लगता है कि विद्वानों ने यह मान लिया है कि ५८ दिन युद्धारम्भ से गिनते हैं न कि भीष्मपात के दिन से। यदि भीष्मपात के दिन से गिनेंगे तो माघ शुक्ल ८ तक ४७ दिन ही बैठेंगे। युद्धारम्भ से ही वीरों के शरीर शरच्छेद को प्राप्त होने लगते हैं, अतः शरशय्या का काल युद्धारम्भ से भी गिना जा सकता है।

युद्धारम्भ मार्गशीर्ष शुक्ल ११ को मानने में एक समस्या आती है जो इस प्रकार है—११ को युद्ध शुरु होने पर पौष कृष्ण १४ को समाप्त होगा, किन्तु तब तक बलराम जी की तीर्थयात्रा के ४२ दिन पूरे नहीं होंगे। ४२ दिन पौष शुक्ल १ को पूरे होते हैं। ज्योतिष के अनुसार भी श्रवण नक्षत्र पौष शुक्ल १ से पहले कभी नहीं आ सकता है। अतः युद्ध समाप्ति का दिन पौष शुक्ल १ निश्चित होता है। इसी कारण बहुत से विद्वानों ने (भारत सावित्री ने भी) १८ दिन पीछे की ओर गिनती करके युद्धारम्भ मार्गशुक्ल १३ माना है. किन्तु ५८ दिन की संगति के लिए और गीताजयन्ती की प्रसिद्धि के निर्वाहार्थ युद्धारम्भ ११ को मानना पड़ता है। अब युद्धारम्भ ११ को और युद्ध समाप्ति पौष शुक्ल १ को इस प्रकार २० दिन बैठते हैं। अतः मैंने यह कल्पना की है कि एक दिन भीष्मपात के बाद और एक दिन द्रोण-वध के बाद युद्ध नहीं हुआ। महाभारत में ऐसे स्पष्ट संकेत हैं, अतः मेरी कल्पना निर्मूल नहीं है।

मत-विमर्श

इस गणना में भी गीताजयन्ती और भीष्मनिर्वाण सम्बन्धी दोनों परम्परा प्राप्त प्रसिद्ध तिथियों का समादर है। नक्षत्र और तिथि का योग भी ज्योतिष के अनुरूप है। अब क्योंकि मार्गशीर्ष शुक्ल ११ से पौषशुक्ल १ तक ५+१५+१=२१ दिन होते हैं। महाभारत युद्ध कुल १८ दिन मान्य है। अतः २१—१८=३ दिनों का अवकाश मान्य है, न कि २ दिनों का। फलतः भीष्म, द्रोण और कर्णवध के निमित्त एक-एक अवकाश मान्य होगा। युद्धान्त क्योंकि श्रवण में मान्य है, अतः उसके पूर्व २१ वें दिन भरणीमें युद्धारम्भ (गीताजयन्ती भी) मान्य होगा। 'पञ्चमे दिवसे तात पृथिवी ते भविष्यति' (द्रोण० १८३. ६५) जयद्रथ वध के बाद रात्रियुद्ध में युधिष्ठिर के प्रति श्रीकृष्ण द्वैपायन के इस वचन के अनुसार चौदहवें दिन से पाँचवें दिन या चौदहवें दिन के बाद पाँचवें दिन युद्धान्त मान्य है ; अतः द्रोणवध के उपलक्ष्य में या कर्णवध के उपलक्ष्य में एक ही अवकाश माना जा सकता है, फलतः भीष्मवध के उपलक्ष्य में दो और द्रोणवध के पश्चात् एक अवकाश मानकर ही मार्गशीर्ष शुक्ल ११ भरणी में युद्धारम्भ और पौष शुक्ल १ श्रवण में युद्धान्त सिद्ध होता है।

१०. श्री अभ्यंकर

मत-निरूपण

युद्ध मार्गशीर्ष शुक्ल १३ रोहिणी में प्रारम्भ हुआ। भीष्म पतन कृष्ण ६ हस्त में हुआ। अभिमन्युवध कृष्ण ९ विशाखा में हुआ। जयद्रथवध तथा रात्रियुद्ध कृष्ण १० अनुराधा में, द्रोणवध कृष्ण ११ ज्येष्ठा में, कर्णवध कृष्ण १० पूर्वाषाढ़ा में, शल्यवध कृष्ण १४ उत्तराषाढ़ा में और उसी दिन सायं भीम दुर्योधन का गदायुद्ध हुआ।

मत-विमर्श

अवकाश रहित लगातार अठारह दिनों तक युद्ध हुआ। इतने अंश में यह मत महाभारत के अनुकूल परिलक्षित होता है। श्रवण में युद्धान्त न होकर उससे १ दिन पूर्व उत्तराषाढ़ में ही युद्धान्त मूल के अनुरूप नहीं है। भारत सावित्री ने भी मार्गशीर्ष १३ में युद्धारम्भ माना है, लेकिन तिथि की दृष्टि से १८ दिन युद्ध की सिद्धि के लिये अमा में युद्धान्त माना है।

११. प्रो०—र. वि. वैद्य

मत-निरूपण

'भारतीय युद्धकाल निर्णय' (मराठी) के लेखक प्रो० र० वि० वैद्य (१९६४) पुनर्वसु-पुष्य में युद्धारम्भ मानते हैं। इनके अनुसार युद्ध केवल सोलह दिनों का था। इनका यह भी कथन है कि भीष्म-निधन शुक्लपक्ष में कथमपि नहीं हो सकता।

मत-विमर्श

सोलह दिनों का युद्ध, कृष्णपक्ष में भीष्म-निधन—मूल के सर्वथा विरुद्ध है। ऐसी स्थिति में पुनर्वसु से युद्धारम्भ मान कर श्रवण में युद्धान्त का भी कोई मौलिक महत्त्व नहीं रह जाता।

१२. डॉ०—काणे एवं दफ्तरी आदि

मत-निरूपण

इन्होंने मार्गशीर्ष अमावास्या से पौष कृष्ण द्वितीया तक लगातार युद्ध माना है।

मत-विमर्श

ऐसा मानने पर श्रवण में युद्धान्त सम्भव नहीं। साथ ही आठवें, नवें और ग्यारहवें दिन के युद्ध में शुक्ल सप्तमी, अष्टमी और दशमी सिद्ध होती है; परन्तु महाभारत में इन दिनों सायं अन्धकार का वर्णन है। चौदहवें दिन शुक्ल त्रयोदशी होने के कारण उत्तर रात्रि में चन्द्रोदय वाला वचन भी निष्फल जाता है।

श्रीहरिः

परिशिष्ट

श्री रामायण-महाभारत—काल मीमांसा

१. महाभारत रचना और भगवद्गीताभिव्यक्तिकाल

(i) दिग्दर्शन

आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा में शिक्षित-दीक्षित विद्वानों की

लम्बी अवधि के काल को ईसवो सन् के अन्दर रखने की भावना बन गयी है। यदि वे बहुत ऊपर उठे तो ईसवी सन् से सौ-दो-सौ वर्ष पहले ले जाते हैं। अरबों वर्ष का समय इस प्रकार कुल तीन हजार वर्ष के अन्दर ही आ जाता है। इस प्रकार का इन लोगों का विचार आस्तिकों पर भी छाने लगता है और उनका शास्त्रों पर अटल विश्वास भी डगमगाने लगता है। उसे संभालने के लिए मनीषियों का सुदृढ़ प्रयत्न होता है।

भारतीय साहित्य में इतिहास रूप से दो आर्ष ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। भारतीय जनता पर उनकी अमिट छाप पड़ी है। वे हैं (१) रामायण और (२) महाभारत। वैसे काश्मीर के इतिहास में एक कल्हण की राजतरङ्गिणी प्रसिद्ध है, किन्तु वह ऋषि प्रोक्त नहीं है। पाश्चात्त्य विद्वानों ने उन पर अपनी दृष्टि से विचार किया है और उनकी शिक्षा-दीक्षा में पले हुए आधुनिक भारतीय विद्वान् भी विभिन्न लेखों, ताम्रलेखों और पुरातत्त्व के आधार पर उन्हीं पाश्चात्त्य विद्वानों द्वारा स्वबुद्धि प्रसूत अटकल के द्वारा उपजी हुई बातों को परीक्षा द्वारा सुदृढ़ करने पर तुले हुए हैं।

महाभारत के साक्षिक श्लोकों के अनुसार ही महाभारत-रचना-काल पर विचार अपेक्षित है।

लोमहर्षण पुत्र उग्रश्रवा और शौनकादि ऋषियों के संवाद से महाभारत की नैमिषारण्य में अभिव्यक्ति हुई—

'लोमहर्षणपुत्र उग्रश्रवाः सौतिः पौराणिको।
नैमिषारण्ये शौनकस्य कुलपतेर्द्वादशवार्षिके सत्रे ॥
सुखासीनानभ्यगच्छद् ब्रह्मर्षीन् संशितव्रतान्।
विनयावनतो भूत्वा कदाचित् सूतनन्दनः ॥
तमाश्रममनुप्राप्तं नैमिषारण्यवासिनाम्।
चित्राः श्रोतुं कथास्तत्र परिवव्रुस्तपस्विनः ॥"
(महाभारत आदिपर्व १. १-३)

"एक समय की वात है, नैमिषारण्य में कुलपति महर्षि शौनक के बारह वर्षों तक चालू रहने वाले सत्र में जब उत्तम एवं कठोर ब्रह्मचर्यादि व्रतों का पालन करने वाले ब्रह्मर्षिगण अवकाश के समय सुखपूर्वक बैठे थे, सूत कुल को आनन्दित करने वाले लोमहर्षण पुत्र उग्रश्रवा सौति स्वयं

कौतूहलवश उन ब्रह्मर्षियों के समीप बड़े विनीतभाव से आये। वे पुराणों के विद्वान् और कथावाचक थे। उस समय नैमिषारण्य वासियों के आश्रम में पधारे हुए उन उग्रश्रवाजी को, उनसे चित्र-विचित्र कथाएँ सुनने के लिये, सब तपस्वियों ने वहीं घेर लिया ॥" १–३॥

श्रीमहर्षि वेदव्यास ने इस महाभारत नामक इतिहास की रचना की है—

"तपसा ब्रह्मचर्येण व्यस्य वेदं सनातनम्।
इतिहासमिमं चक्रे पुण्यं सत्यवतीसुतः ॥
(महा० आदि० १. १. ५४)

"सत्यवतीनन्दन भगवान् व्यास ने अपनी तपस्या एवं ब्रह्मचर्य की शक्ति से सनातन वेद का विस्तार करके इस लोकपावन पवित्र इतिहास का निर्माण किया है ॥"

(*ii*) युद्धोपरान्त पाण्डवों के जीवन काल के ३६ वर्ष

महाभारत युद्ध के ३६ वर्ष बाद यादवकुल का विध्वंसक मौसल युद्ध का योग प्राप्त हुआ—

"चतुर्दशी पञ्चदशी कृतेयं राहुणा पुनः।
प्राप्ते वै भारते युद्धे प्राप्ता चाद्य क्षयाय नः ॥"
(मौसलपर्व २. १९)

"वीरो! इस समय राहु ने फिर चतुर्दशी को ही अमावास्या बना दिया है। महाभारत युद्ध के समय जैसा योग था, वैसा ही आज भी है। यह सब हम लोगों के विनाश का सूचक है॥"

"एवं पश्यन् हृषीकेशः संप्राप्तं कालपर्ययम्।
त्रयोदश्याममावास्यां तान्दृष्ट्वा प्राब्रवीदिदम् ॥"
(मौसल० २. १८)

"इस तरह काल का उलट-फेर प्राप्त हुआ देखकर और त्रयोदशी तिथि में अमावास्या का संयोग जान भगवान् श्रीकृष्ण ने सब लोगों से कहा—

"विमृशन्नेव कालं तं परिचिन्त्य जनार्दनः।
मेने प्राप्तं स षट्त्रिंशं वर्षं वै केशिसूदनः॥"
(मौसल० २. २०)

"काल के उलट फेर से कृष्णपक्ष और चतुर्दशी को अमावास्या का योग देखकर इस प्रकार समय का विचार करते हुए केशिहन्ता, श्रीकृष्ण ने जब उसका विशेष चिन्तन किया, तब उन्हें विदित हुआ कि महाभारत के बाद यह छत्तीसवाँ वर्ष आ पहुंचा॥"

"पुत्र शोकाभिसंतप्ता गान्धारी हतबान्धवा।
यदनुव्याजहारार्ता तदिदं समुपागमत्॥" (मौ० २. २१)

"बन्धु-बान्धवों के मारे जाने पर पुत्रशोक से सन्तप्त हुई गान्धारी देवी ने अत्यन्त व्यथित होकर हमारे कुल के लिए जो शाप दिया था, उसके सफल होने का समय आ गया है॥"

गान्धारी देवी ने शाप देते हुए कहा था—

"त्वमप्युपस्थिते वर्षे षट्त्रिंशे मधुसूदन।
हतज्ञातिर्हतामात्यो 'हतपुत्रो वनेचरः॥"
(स्त्रीपर्व २५. ४४)

महाभारत युद्ध के पश्चात् धृतराष्ट्र १५ वर्ष हस्तिनापुर में रहे और ३ वर्ष वन में जीवित रहे। अर्थात् युद्धोपरान्त राजा धृतराष्ट्र का जीवन-काल १८ वर्ष सिद्ध होता है। यह तथ्य महाभारत के अनुशीलन से इस प्रकार सिद्ध है—

"एवं वर्षाण्यतीतानि धृतराष्ट्रस्य धीमतः।
वनवासे तथा त्रीणि नगरे दश पञ्च च॥
हतपुत्रस्य संग्रामे दानानि ददतः सदा।
ज्ञातिसम्बन्धिमित्राणां भ्रातॄणां स्वजनस्य च॥"
(आश्रमवासिक पर्व ३९. २५, २६)

"इस प्रकार जिनके पुत्र रणभूमि में मारे गये थे, उन राजा धृतराष्ट्र ने अपने जाति-भाई, सम्बन्धी, मित्र, बन्धु और स्वजनों के निमित्त सदा दान देते हुए (युद्ध समाप्त होने के बाद) पन्द्रह वर्ष हस्तिनापुर में व्यतीत किये थे और तीन वर्ष वन में तपस्या करते हुए बिताये थे॥"

युद्ध के पश्चात् ३६ वें वर्ष में यादव मौसल युद्ध में दिवंगत होते हैं, भगवान् श्रीकृष्ण लीला-संवरण करते हैं और पाण्डव स्वर्गारोहण से पूर्व परीक्षित् का राज्याभिषेक करते हैं।

"षट्त्रिंशे त्वथ सम्प्राप्ते वर्षे कौरवनन्दनः।
ददर्श विपरीतानि निमित्तानि युधिष्ठिरः॥"

(मौसलपर्व १. १)

"महाभारत युद्ध के पश्चात् जब छत्तीसवाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ तब कौरव नन्दन राजा युधिष्ठिर को कई तरह के अपशकुन दिखायी देने लगे॥"

"षट्त्रिंशेऽथ ततो वर्षे वृष्णीनामनयो महान्।
अन्योन्यं मुसलैस्ते तु निजघ्नुः कालचोदिताः॥"

(मौसल० १. १३)

"महाभारत युद्ध के बाद छत्तीसवें वर्ष वृष्णिवंशियों में महान् अन्याय पूर्ण कलह प्रारम्भ हुआ। उसमें काल से प्रेरित होकर उन्होंने एक-दूसरे को मूसलों (अरों) से मार डाला॥"

"दारुकोऽपि कुरून् गत्वा दृष्ट्वा पार्थान् महारथान्।
आचष्ट मौसले वृष्णीनन्योन्येनोपसंहृतान्॥
ततोऽर्जुनस्तानामन्त्र्य केशवस्य प्रियः सखा।
प्रययौ मातुलं द्रष्टुं नेदमस्तीति चाब्रवीत्॥
स वृष्णिनिलयं गत्वा दारुकेण सह प्रभो।
ददर्श द्वारकां वीरो मृतनाथामिव स्त्रियम्॥"

(मौसल० ५।१, ३, ४)

"(श्रीकृष्ण प्रेरित) दारुक ने भी कुरुदेश में जाकर महारथी कुन्ती कुमारों का दर्शन किया और उन्हें यह बताया कि समस्त वृष्णिवंशी मौसल युद्ध में एक-दूसरे के द्वारा मार डाले गये॥१॥ तत्पश्चात् श्रीकृष्ण के प्रिय सखा अर्जुन अपने भाइयों से पूछकर मामा से मिलने के लिये चल दिये और बोले—'ऐसा नहीं हुआ होगा' (समस्त यदुवंशियों का एक साथ विनाश असम्भव है)॥३॥ प्रभो! दारुक के साथ वृष्णियों के निवास–स्थान पर

पहुंचकर वीर अर्जुन ने देखा कि द्वारका नगरी विधवा स्त्री की भाँति श्रीहीन हो गयी है ॥४॥"

"स तेषां विधिवत् कृत्वा प्रेतकार्याणि पाण्डवः ।
सप्तमे दिवसे प्रायाद् रथमारुह्य सत्वरः ॥"
(मौसल० ७. ३२)

"पाण्डुनन्दन अर्जुन उन सब के प्रेतकर्म विधिपूर्वक सम्पन्न करके तुरन्त रथ पर आरूढ़ हो सातवें दिन द्वारका से चल दिये ॥"

'स तत् कृत्वा प्राप्तकालं वाष्पेणापिहितोऽर्जुनः ।
कृष्णद्वैपायनं व्यासं ददर्शासीनमाश्रमे ॥"
(मौसल० ७. ७६)

"इस प्रकार समयोचित व्यवस्था करके अर्जुन नेत्रों से आँसू बहाते हुए महर्षि व्यास के आश्रम पर गये और वहाँ बैठे हुए महर्षि का उन्होंने दर्शन किया ॥"

"यः स मेघवपुः श्रीमान् बृहत्पङ्कजलोचनः ॥
स कृष्णः सह रामेण त्यक्त्वा देहं दिवं गतः ।"
(मौसल० ८. ७, ७½)

"अर्जुन ने कहा—'भगवन् ! जिनका सुन्दर विग्रह मेघ के समान श्याम था और जिनके नेत्र विशाल कमलदल के समान शोभा पाते थे, वे श्रीमान् भगवान् कृष्ण बलराम जी के साथ देहत्याग करके अपने परमधाम को पधार गये ॥'

श्रीभगवान् की यह लीला मायावी की तरह प्रातीतिक ही थी, वास्तविक नहीं। अविद्या, काम और कर्मके वशीभूत होकर भगवान् का जन्म नहीं होता ; फलतः उनका देहत्याग भी अलौकिक रीति से ही होता है। पुराणों के अनुसार—

* "अज्ञत्वं पारवश्यत्वं विधिभेदादिकं तथा ।
तथा प्राकृतदेहत्वं देहत्यागादिकं तथा ॥
आसुराणां विमोहाय दोषा विष्णोर्नहि क्वचित् ॥"

"मौसले वृष्णिवीराणां विनाशो ब्रह्मशापजः ॥
बभूव वीरान्तकरः प्रभासे लोमहर्षणः ।"
(मौसल ८. ८, ८½)

"ब्राह्मणों के शाप से मौसल युद्ध में वृष्णिवंशी वीरों का विनाश हो गया। बड़े-बड़े वीरों का अन्त कर देने वाला वह रोमाञ्चकारी संग्राम प्रभास क्षेत्र में घटित हुआ था ॥"

* "हतं पञ्चशतं तेषां सहस्रं बाहुशालिनाम् ॥
निधनं समनुप्राप्तं समासाद्येतरेतरम् ।"
(मौसल० ८. ११, ११½)

"अपने बाहुबलसे शोभा पाने वाले पाँच लाख वीर आपस में ही लड़-भिड़कर मर मिटे ॥"

"कालो गन्तुं गतिं मुख्यां भवतामपि भारत ॥
एतच्छ्रेयो हि वो मन्ये परमं भरतर्षभ ।"
(मौसल० ८. ३६, ३६½)

श्रीव्यास जी ने कहा—"भारत अब तुम लोगों के उत्तमगति प्राप्त करने का समय उपस्थित है। भरतश्रेष्ठ ! मुझे इसी में तुम लोगों का परम कल्याण जान पड़ता है ॥"

"एतद्वचनमाज्ञाय व्यासस्यामिततेजसः ॥
अनुज्ञातो ययौ पार्थो नगरं नागसाह्वयम् ।"
(महा० मौसल० ८. ३७½)

"प्रविश्य च पुरीं वीरः समासाद्य युधिष्ठिरम् ।
आचष्ट तद् यथावृत्तं वृष्ण्यन्धककुलं प्रति ॥"
(महा० मौसल० ८. ३८)

"अमित तेजस्वी व्यास जी के इस वचन का तत्त्व समझकर अर्जुन उनकी आज्ञा ले हस्तिनापुर को चले गये ॥ नगर में प्रवेश करके वीर अर्जुन युधिष्ठिर से मिले और वृष्णि तथा अन्धकवंश का यथावत् समाचार उन्होंने कह सुनाया ॥"

"श्रुत्वैवं कौरवो राजा वृष्णीनां कदनं महत्।
प्रस्थाने मतिमाधाय वाक्यमर्जुनमब्रवीत् ॥"
'कालः पचति भूतानि सर्वाण्येव महामते।
कालपाशमहं मन्ये त्वमपि द्रष्टुमर्हसि ॥"
(महा० महाप्रस्थानिक १. २, ३)

"कुरुराज युधिष्ठिर ने जब इस प्रकार वृष्णिवंशियों के महान् संहार का समाचार सुना, तब महाप्रस्थान का निश्चय करके अर्जुन से कहा—"

"महामते ! काल ही सम्पूर्ण भूतों को पका रहा है—विनाश की ओर ले जा रहा है। अब मैं काल के बन्धन को स्वीकार करता हूँ। तुम भी इसकी ओर दृष्टिपात करो ॥"

"अभिषिच्य स्वराज्ये च राजानं च परिक्षितम्।
दुःखार्तश्चाब्रवीद् राजा सुभद्रां पाण्डवाग्रजः ॥
एष पुत्रस्य पुत्रस्ते कुरुराजो भविष्यति।
यदूनां परिशेषश्च वज्रो राजा कृतश्च ह ॥
परिक्षिद्धास्तिनपुरे शक्रप्रस्थे च यादवः।
वज्रो राजा त्वया रक्ष्यो माचाधर्मे मनः कृथाः ॥
(महा० महाप्रस्थानिक १. ७-९)

"अपने राज्यपर राजा परीक्षित् का अभिषेक करके पाण्डवों के बड़े भाई महाराज युधिष्ठिर ने दुःख से आर्त होकर सुभद्रा से कहा—बेटी ! यह तुम्हारे पुत्र का पुत्र परीक्षित् कुरुदेश तथा कौरवों का राजा होगा और यादवों में जो लोग बच गये हैं ; उनका राजा श्रीकृष्ण-पौत्र वज्र को बनाया गया है। परीक्षित् 'हस्तिनापुर में राज्य करेंगे और यदुवंशी वज्र इन्द्रप्रस्थ में। तुम्हें राजा वज्र की भी रक्षा करनी चाहिये और अपने मन को कभी अधर्म की ओर नहीं जाने देना चाहिये ॥"

(*iii*) युद्धोपरान्त प्रथम शताब्दी संवाद द्वयाभिव्यक्तिकाल

पुराणों में कलियुग का आरम्भकाल, महाभारत युद्धकाल और परीक्षित् का जन्मकाल एक ही माना गया है।

महाभारत युद्ध द्वापर और कलि की सन्धि में हुआ—

"अन्तरे चैव सम्प्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत् ।
समन्तपञ्चके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥"

(आदि० २. १३)

"जब कलियुग और द्वापर की सन्धि का समय आया, तब उसी समन्तपञ्चक क्षेत्र में कौरवों और पाण्डवों की सेनाओं का परस्पर भीषण युद्ध हुआ ॥"

गदायुद्ध में भीमसेन ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार और महर्षि मैत्रेय द्वारा दुर्योधन को दिये गये शाप के अनुसार गदा के प्रहार से दुर्योधन की दोनों जाघें तोड़ डालीं। तब भीमसेन के उस कृत्य से अत्यन्त कुपित बलराम जी को शान्त करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा—

"प्राप्तं कलियुगं विद्धि प्रतिज्ञां पाण्डवस्य च ।
आनृण्यं यातु वैरस्य प्रतिज्ञायाश्च पाण्डवः ॥"

(महा० शल्य० ६०. २५)

"भैया ! आप समझ लीजिये कि कलियुग आ गया है। आप भीमसेन की प्रतिज्ञा पर भी ध्यान दीजिये। आज पाण्डुकुमार भीम वैर और प्रतिज्ञा के ऋण से मुक्त हो जाँय।"

"कलिमासन्नमाविष्टं निवास्य नृपनन्दनः ।
भ्रातृभिः सहितो धीमान् बभौ धर्मबलोद्धतः ।"

(महा० आश्वमेधिक १४. २०)

"कलियुग को समीप आया देख बुद्धिमान् नृपनन्दन युधिष्ठिर ने उसको भी निवास दिया और भाइयों के साथ वे धर्मबल से अजेय होकर शोभा पाने लगे ॥"

युद्धारम्भ मार्गशीर्ष शुक्ल ११ (प्रचलित परम्परा के अनुसार), १३ (भारत-सावित्री के अनुसार) या १४ (नीलकण्ठाचार्य के अनुसार) में मान्य है। युद्धान्त पौष कृष्ण अमावास्या (भारत-सावित्री) या पौष शुक्ल प्रतिपद (नीलकण्ठी) में मान्य है। देवी उत्तरा के विलाप से सिद्ध होता है कि वीर अभिमन्यु विवाह के सातवें महीने में दिवंगत हुए—

"एतावानिह संवासो विहितस्ते मया सह।
षण्मासान् सप्तमे मासि त्वं वीर निधनं गतः ॥" (स्त्री० २०. २८)

"वीर ! इस लोक में तो मेरे साथ आपका कुल छः महीनों तक ही सहवास रहा है। सातवें महीनेमें ही आप वीरगति को प्राप्त हो गये ॥"

भीष्मजी ने माघ शुक्ल अष्टमी को देहत्याग किया। उसके बाद पाण्डवों ने व्यासदेव की प्रेरणा से अश्वमेधयज्ञ के लिए महात्मा मरुत्त के यज्ञ में ब्राह्मणों द्वारा छोड़ा गया धन लेने के लिए हिमालय पर्वत पर जाने का निश्चय किया। भीष्म और कर्णादि कुरुवंशियों के निमित्त और्ध्वदेहिक क्रिया (श्राद्ध) करके हस्तिनापुर में पाण्डव प्रविष्ट हुए। धर्मराज युधिष्ठिर राज्य करने लगे। उनके राज्य में सर्वत्र सब को सुख प्राप्त था। अर्जुन की जिज्ञासा पर भगवान् ने उन्हें अनुगीता का उपदेश दिया। फिर वे पाण्डवों की अनुमति से द्वारका में जाकर रैवतक पर्वत पर महोत्सव में सम्मिलित हुए और सबसे मिले। वसुदेव आदि यादवों ने श्रीकृष्ण से युद्ध का वृत्तान्त सुनकर अभिमन्यु के निमित्त श्राद्ध किया। इधर पाण्डवों ने व्यास जी की प्रेरणा से धन लाभ के लिये परिकर सहित हिमालय प्रस्थान किया। भगवान् श्रीशङ्कर से अनुग्रहीत धर्मराज ने आठ लाख और चौबीस हजार भार सुवर्ण (आश्वमेधिक ६५. २०, २१) खुदवाकर धौम्यमुनि को आगे करके हस्तिनापुर के लिये प्रस्थान किया। उधर श्रीकृष्ण वृष्णिवंशियों को साथ लेकर पाण्डवों के लौटने से पूर्व ही हस्तिनापुर आ गये। उत्तराने मृत बालक को जन्म दिया। सुभद्रा देवी की प्रार्थना पर भक्तवत्सल श्रीकृष्ण ने अमोघ कृपादृष्टि से बालक को उज्जीवित किया। कुरुकुल के परिक्षीण हो जाने पर उत्पन्न होने के कारण बालक का नाम प्रभु ने 'परिक्षित्' रखा (आश्वमेधिक ७० ११३, आदिपर्व ४९ १४,१५) जब बालक परिक्षित् की आयु एक महीने की हो गयी, तब पाण्डव बहुत-सी रत्नराशि लेकर हस्तिनापुर लौटे (७०. १३३)। श्रीवेदव्यास ने युधिष्ठिर को चैत्र पूर्णिमा को दीक्षा देने का वचन दिया (आश्व० ७२. ४)। पुत्र बभ्रुवाहन को तथा शकुनि पुत्र और मगधराज सहदेव कुमार मेघासन्धि को अश्वमेधयज्ञ के लिए आमन्त्रित करते हुए अर्जुन ने भी इसी तथ्य का प्रकाश किया है—

"अहं पैलोऽथ कौन्तेय याज्ञवल्क्यस्तथैव च।
विधानं यद् यथाकालं तत् कर्तारो न संशयः॥

चैत्र्यां हि पौर्णमास्यां तु तव दीक्षा भविष्यति।
सम्भाराः सम्भ्रियन्तां च यज्ञार्थं पुरुषर्षभ ॥"
(आश्वमेधिक ७२ ३, ४)

'कुन्तीनन्दन ! जब यज्ञ का समय आयेगा, उस समय मैं, पैल और याज्ञवल्क्य—ये सब आकर तुम्हारे यज्ञ का सारा विधि-विधान सम्पन्न करेंगे ; इसमें संशय नहीं है ॥ पुरुषप्रवर ! आगामी चैत्र की पूर्णिमा को तुम्हें यज्ञ की दीक्षा दी जायगी, तब तक तुम उसके लिये सामग्री संचित करो ॥"

"युधिष्ठिरस्याश्वमेधः परिचैत्रीं भविष्यति ॥"
(आश्व० ८१. २४)

"आगन्तव्यं परां चैत्रीमश्वमेधे नृपस्य नः ॥"
(आश्व० ८२ २७)

"गच्छेथास्त्वं परा चैत्रीमश्वमेधे नृपस्य नः ॥"
(आश्व० ८४ २४)

यहाँ यह हृदयंगम करना आवश्यक है कि युद्धोपरान्त चैत्र में युद्धारम्भ न होकर एक वर्ष बाद आने वाले (आगामी) चैत्र में यज्ञारम्भ हुआ। क्योंकि 'गान्धार देश से अर्जुन का अश्व हस्तिनापुर की ओर लौट रहा है' इस प्रकार की सूचना गुप्तचर ने जिस दिन धर्मराज को दी उस दिन पुष्य नक्षत्र से युक्त माघ शुक्ल द्वादशी थी, युद्धोपरान्त माघशुक्ल द्वादशी तक तो युधिष्ठिर भीष्म पितामह के श्राद्ध से भी निवृत्त नहीं हो पाये थे। फिर हिमालय से धन लाकर लौटने तथा अश्वमेध के अश्व सहित अर्जुन के गान्धार देश से हस्तिनापुर की ओर लौटने का प्रश्न ही नहीं उठता।

यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि महाभारत और जैमिनीय अश्वमेध पर्व के अनुसार चैत्र पूर्णिमा को धर्मराज ने अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा ली और अश्व भी अर्जुन के नेतृत्व में (वर्ष भरके लिये) छोड़ा गया। साथ ही आगामी चैत्र पूर्णिमा से यज्ञ प्रारम्भ हुआ—

* 'चैत्र्यां हि पौर्णमास्यां तु तव दीक्षा भविष्यति।
सम्भाराः सम्भ्रियन्तां च यज्ञार्थं पुरुषर्षभ ॥

अश्वविद्याविदश्चैव सूता विप्राश्च तद्विदः।
मेध्यमश्वं परीक्षन्तां तव यज्ञार्थसिद्धये ॥
तमुत्सृज्य यथाशास्त्रं पृथिवीं सागराम्बराम्।
स पर्येतु यशो दीप्तं तव पार्थिव दर्शयन् ॥"
(महा० आश्वमेधिक ७२. ४-६)

* "चैत्रमासस्य राकायां मोच्योऽयं तुरगो नृप।
वर्षमात्रं रक्षणीयः सर्वयोधैर्महाबलैः ॥"
(जैमिनीय आश्वमेधिक १. ४४)

इधर माघ शुक्लाष्टमी को भीष्म ने देहत्याग किया। फाल्गुन कृष्ण ५ तक पाण्डवों ने शुद्धि सम्पादन में व्यतीत किया।

चैत्र की पूर्णिमा से पूर्व ही वे हिमालय से धन लेकर लौट आये। तब तक परिक्षित् एक महीना के हो चुके थे—

"मासजातस्तु ते वीर पिता भवति भारत ॥
अथाजग्मुः सुबहुलं रत्नमादाय पाण्डवाः।"
(महा० आश्व० ७०।१३, १३½)

अतः फाल्गुन कृष्ण ५ से फाल्गुन शुक्ल १५ (पूर्णिमा) तक परीक्षित् का जन्म सिद्ध होता है।

चैत्रमास, वसन्त ऋतु, शुक्लपक्ष, दशमी तिथि, गुरुवासर और आश्लेषा नक्षत्र में व्यास ने 'इन्द्राय स्वाहा' कहकर विधिपूर्वक उत्तम आहुति प्रदान की—

* "व्यासस्ततो जुहावाग्नौ वसन्ते दशमीदिने ॥
शुक्लपक्षे हि चैत्रस्य सार्पर्क्षे गुरुवासरे।
स्वाहेतीन्द्राय विधिवत् परमामाहुतिं ददौ ॥"
(जैमिनीय आश्व० ६४. ३३, ३४)

भगवान् श्रीकृष्ण की भविष्यवाणी के अनुसार महाराजा परिक्षित् की दीर्घ आयु और उनका ६० वर्ष राज्यकाल सिद्ध है—

"वयः प्राप्य परिक्षित् तु वेदव्रतमवाप्य च ॥
कृपाच्छारद्वताच्छूरः सर्वास्त्राण्युपपत्स्यते।

विदित्वा परमास्त्राणि क्षत्रधर्मव्रते स्थितः ।।
षष्टिं वर्षाणि धर्मात्मा वसुधां पालयिष्यति ।
इतश्चोर्ध्वं महाबाहुः कुरुराजो भविष्यति ।।
परिक्षिन्नाम नृपतिर्मिषतस्ते सुदुर्मते ।
अहं तं जीवयिष्यामि दग्धं शस्त्राग्नितेजसः ।।
पश्य मे तपसो वीर्यं सत्यस्य च नराधम ।।"

(सौप्तिक० १६. १३-१६)

"अमोघः परमास्त्रस्य पातस्तस्य भविष्यति ।
स तु गर्भो मृतो जातो दीर्घमायुरवाप्स्यति ।।"

(सौप्तिक १६. ८)

"(अश्वत्थामा के प्रति) परिक्षित् तो दीर्घ आयु प्राप्त करके ब्रह्मचर्य पालन एवं वेदाध्ययन का व्रत धारण करेगा और वह शूरवीर बालक शरद्वान् के पुत्र कृपाचार्य से ही सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रों का ज्ञान प्राप्त करेगा ।। इस प्रकार उत्तम अस्त्रों का ज्ञान प्राप्त करके क्षत्रिय धर्म में स्थित हो साठ वर्षों तक इस पृथ्वी का पालन करेगा । दुर्मते ! इसके बाद तेरे देखते-देखते महाबाहु कुरुराज परिक्षित् ही इस भूमण्डल का सम्राट् होगा ।। नराधम ! तेरी शस्त्राग्नि के तेज से दग्ध हुए उस बालक को मैं जीवित कर दूंगा । उस समय तू मेरे तप और सत्य का प्रभाव देख लेना ।। द्रोणकुमार ! उस दिव्य अस्त्र का प्रहार तो अमोघ ही होगा । उत्तरा का वह गर्भ मरा हुआ ही पैदा होगा ; फिर उसे लम्बी आयु प्राप्त हो जायगी ।।"

जनमेजय के प्रति मन्त्रियों ने राजा परिक्षित् का जीवन वृत्त सुनाते हुए बताया कि शमीकनन्दन शृङ्गी ऋषि के शाप से त्रस्त राजा महल में सावधानी से विराजमान थे। उनके पास छल पूर्वक पहुंचकर तक्षक ने अपनी विषाग्नि से भस्म कर दिया।

"परिश्रान्तो वयःस्थश्च षष्टिवर्षो जरान्वितः ।।"

(आदिपर्व ४९. २५३)

"प्रजा इमास्तव पिता षष्टिवर्षाण्यपालयत् ।
ततो दिष्टान्तमापन्नः सर्वेषां दुःखमावहन् ।।"

(आदिपर्व ४९. १७)

इस तरह महाराजा परिक्षित् ने कुल साठ वर्ष की आयु तक वसुधा का राज्य किया। अर्थात् पाण्डवों के महा प्रस्थान के समय उनकी आयु लगभग ३६ वर्ष की थी। तभी उनका राज्याभिषेक हुआ। ६०—३६=२४ वर्ष तक उन्होंने शासन किया।

पद्मपुराण के अनुसार श्रीकृष्ण भगवान् के निर्गम (लीला संवरण) के ३० वर्ष बीतने पर श्रीशुक ने राजर्षि परीक्षित् को श्रीमद्भागवत की कथा सुनायी—

"आकृष्णनिर्गमात्त्रिंशद्वर्षाधिगते कलौ ।
नवमीतो नभस्ये च कथारम्भं शुकोऽकरोत् ।।"

(पद्मपुराण उत्तर खण्ड भागवत माहात्म्य ६. ९४)

श्रीमद्भागवत श्रवण के अनन्तर ही परीक्षित् ने देहत्याग किया, यह प्रसिद्ध ही है। साथ ही श्रीकृष्ण निर्गम के अनन्तर ही पाण्डवों ने प्रयाण (महाप्रस्थान) किया, यह भी प्रसिद्ध ही है। इधर महाभारत के अनुसार युद्धान्त के कुछ ही महीने पश्चात् परीक्षित् का जन्म सिद्ध होता है। साथ ही युद्ध के ३६ वर्ष बाद श्रीकृष्ण और पाण्डवों का निर्गम सिद्ध होता है। उसके ३० वर्ष बाद पद्मपुराण के अनुसार परीक्षित् का निर्वाण सिद्ध होता है। इस तरह ३६+३०=६६ वर्ष परीक्षित् की आयु मान्य है।

जब जनमेजय बालक ही थे तभी उनके पिता राजा परीक्षित् का देहान्त हो गया। तक्षक की विषाग्नि द्वारा राजा परीक्षित् के दग्ध हो जाने पर उनकी समस्त पारलौकिक क्रियाएँ करके पवित्र ब्राह्मण राजपुरोहित, मन्त्री और समस्त पुरवासियों ने मिलकर उन्हीं के पुत्र जनमेजय को जिसकी अवस्था बहुत छोटी थी, राजा बना दिया। जनमेजय मन्त्री और पुरोहितों के साथ धर्म पूर्वक राज्य का पालन करने लगे। राजमन्त्रियों ने देखा— राजा जनमेजय शत्रुदमन में समर्थ हो गये हैं, तब उन्होंने काशिराज सुवर्ण वर्मा के पास जाकर उनकी पुत्री वपुष्टमा के लिये याचना की (आदि पर्व ४४.८)। काशिराज ने धर्मदृष्टि से अपनी कन्या का विवाह उनके साथ कर दिया। जनमेजय ने भी वपुष्टमा को पाकर बड़ी प्रसन्नता का अनुभव किया। उन्होंने दूसरी स्त्रियों की ओर कभी भी अपने मन को नहीं जाने दिया—**'न चान्यनारीषु मनो दधे क्वचित्'** (आदिपर्व ४४ ९)।

जनमेजय को मन्त्री से यह ज्ञात हुआ कि मेरे पिता थके-माँदे और

भूख-प्यास से व्याकुल होकर अपने बाणों द्वारा घायल मृग के छिप जाने के कारण उसे कहीं न पाकर शमीक ऋषि के आश्रम में आये। महर्षि मौन व्रतधारी शान्त और समाधिस्थ थे। पिताजी ऐसा समझ न सके। ऋषि के द्वारा उनके पूछने पर भी कोई उत्तर न पाकर वे क्रोधित हो गये। उन्होंने धनुष की नोंक से पृथ्वी पर पड़े हुए एक मृत सर्प को उठाकर उन शुद्धात्मा महर्षि के कन्धे पर डाल दिया। मुनि मेधावी और धैर्यवान् थे। पूर्ववत् शान्त भाव से विराजमान रहे। राजा राजधानी लौट आये। महर्षि का गाय के पेट से उत्पन्न शृङ्गी नामक एक महा तेजस्वी, पराक्रमी और अति क्रोधी पुत्र था। उस दिन वह अपने आचार्यदेव का पूजन करने गया था। वह घर लौट रहा था। उसका एक सखा कृश नाम का था। वह धर्म के लिये कष्ट उठाने के कारण सदा ही कृश (दुर्बल) रहा करता था। वह शृङ्गी को मार्ग में मिला। उसने राजा के दुर्व्यवहार की करुण कहानी सुना दी। शृङ्गी ने रोषपूर्वक यह शाप दे डाला—'जिसने मेरे निरपराध पिता पर मृत सर्प डाल दिया है, उस पापी को आज से सात रात बाद मेरी वाक् शक्ति से प्रेरित प्रचण्ड तेजस्वी विषधर तक्षक नाग कुपित हो अपनी विषाग्नि से जला डालेगा।'

ऋषिकुमार ने घर पहुँच कर पिता से शाप की बात कह भी दी। शमीक को अबोध बालक के इस कृत्य से महा कष्ट हुआ। उन्होंने अपने एक शिष्ट, सुशील और गुणवान् शिष्य गौरमुख को राजा के पास शृङ्गी द्वारा शापित होने की सूचना दी।

राजा को तक्षक के विष से मुक्त करने के उद्देश्य से ब्रह्मर्षि कश्यप आ रहे थे। तक्षक ने उनका मनोभाव जान लिया। उसने कश्यप के मन्त्र-बल को जानने की इच्छा से एक हरे-भरे महावृक्ष को विषाग्नि से जला डाला। मन्त्र विद्या में पारङ्गत ब्राह्मण ने उसे उज्जीवित कर दिया। यह अद्भुत चमत्कार देखकर तक्षक ने धनार्थी ब्राह्मण को बहुत-सा धन देकर राजा के पास आने से रोक दिया। अन्त में उसने छलपूर्वक राजा को डस कर भस्म कर दिया। दैवयोग से उस वृक्ष पर एक मनुष्य था, जिसे कश्यप और तक्षक दोनों ही नहीं जान पाये। तक्षक के डसने से पहले तो वह भी वृक्ष के साथ दग्ध हो गया; परन्तु कश्यप की मन्त्र विद्या के प्रयोग से वृक्ष के साथ ही वह भी जीवित हो उठा। उसी ने राजधानी में आकर मन्त्रियों को यह अद्भुत घटना सुनाई।

इस प्रकार प्रत्यक्षदर्शी मन्त्रियों के मुख से अपने पिता के सम्बन्ध में प्रामाणिक जानकारी प्राप्त कर जनमेजय तक्षक पर अत्यन्त कुपित हुए। उन्होंने सर्पयज्ञ आरम्भ कर दिया। अन्त में जरत्कारुनन्दन आस्तीक ने राजा जनमेजय को प्रसन्न किया। तक्षक ने इन्द्र की शरण ली। मन्त्रबल से इन्द्रसहित तक्षक अग्निकुण्ड की ओर आकृष्ट होने लगा। तब देवराज ने अपने प्राणों की रक्षा के लिए त्रस्त तक्षक को त्याग दिया। तक्षक चीखता हुआ अग्निकुण्ड की ओर बढ़ रहा था। ऋत्विजों ने राजा से कहा—अब तो तक्षक की चीत्कार सुनाई पड़ रही है। आप सफल मनोरथ होने ही वाले हैं। तेजस्वी आस्तीक को मुँहमागा वरदान देकर सन्तुष्ट कर दीजिए।' राजाने ऐसा ही उचित समझा। आस्तीक ने यज्ञ बन्द करने का ही वरदान माँगा। सत्यवादी राजा के द्वारा बार-बार अन्य वर माँगने की प्रेरणा प्राप्त कर भी उन्होंने अपनी माता के कुल की रक्षा के लिए दूसरा वर नहीं माँगा। राजा ने यज्ञ बन्द करवा दिया। तक्षक की रक्षा हुई।

यज्ञ के मध्य में पारिप्लवाख्य कर्म के अन्तर्गत जनमेजय की प्रार्थना पर भगवान् वेदव्यास ने अपने शिष्य विप्रवर वैशम्पायन को कौरव-पाण्डव इतिहास सुनाने की आज्ञा की। इस प्रकार 'वैशम्पायन और जनमेजय संवाद' रूप महाभारत राजा जनमेजय के सर्पसत्र में अभिव्यक्त हुआ। इसमें भरतवंशियों के महान् जीवन वृत्तान्त का वर्णन है, इसलिये इसको महाभारत कहते हैं—

"भरतानां महज्जन्म महाभारतमुच्यते।"

(आदि० ६२. ३९)

क्योंकि यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है और रहस्यरूपी असाधारण भार से तथा ग्रन्थगौरव से युक्त है, इससे भी महाभारत कहा जाता है—

जो पुरुष 'महाभारत' शब्द के इस निरुक्त (अर्थ) को जानता है, वह सब पापों से विमुक्त हो जाता है—

"भरतानां महज्जन्म तस्माद् भारतमुच्यते।
महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते॥"

(महा० स्वर्गारोहणपर्व ५. ४५)

संजय-धृतराष्ट्र संवाद के माध्यम से व्यक्त महाभारत वैशम्पायन-जनमेजय-संवाद के अन्तर्गत है। भगवान् वेदव्यास से दिव्यदृष्टि प्राप्त संजय (भीष्म० २. ९-१२) और धृतराष्ट्र संवाद का प्रारम्भ भीष्मपर्व के चतुर्थ अध्याय से होता है।

दुर्योधन ने सौप्तिक संहार के पश्चात् कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा को हृदय से लगाकर विदा दी। द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने सजय के लिए यह करुणकथा सुना दी। संजय प्रातः हस्तिनापुर की ओर दौड़े चले आये। फिर उन्होंने धृतराष्ट्र को यहाँ तक आद्योपान्त सब वर्णन भी विस्तारपूर्वक सुना दिया। फिर दिवंगत दुर्योधन के शोक से विह्वल होने के कारण उनकी व्यास प्रदत्त दिव्यदृष्टि भी नष्ट हो गयी। संजय द्वारा इस वर्णन के साथ ही 'संजय-धृतराष्ट्र-संवाद' भी पूर्ण होता है (सौप्तिकपर्व ८. ६२)। जिसका प्रारम्भ युद्धारम्भ से कुछ मुहूर्त्त पूर्व रात्रि में हस्तिनापुर में होता है और सौप्तिक संहार के दूसरे दिन हस्तिनापुर में ही अन्त होता है। इस तरह—

संजय-धृतराष्ट्र-संवाद महाभारत युद्ध के समकाल है। महाभारत युद्ध के ६० वें वर्ष राजर्षि परीक्षित् का दिवंगत होना महाभारत के आधार पर पहले सिद्ध किया जा चुका है। उस समय जनमेजय की आयु बहुत ही छोटी थी। वह शिशु ही था। 'बाल एवाभिषिक्तस्त्वं' (आदि० ४९. १८), 'नृपं शिशुं तस्य सुतं-प्रचक्रिरे' (आदि० ४४. ६)। ५–१० वर्ष की आयु में जनमेजय का राज्याभिषेक माना जा सकता है। २०–२५ वर्ष की आयु में उनका विवाह माना जा सकता है। ३०–४५ वर्ष की आयु तक उनके द्वारा राजा परीक्षित् के देहान्त की कथा सुनकर तक्षक पर कुपित होकर सर्पसत्र का आयोजन माना जा सकता है। सर्पसत्र ही वैशम्पायन-जनमेजय-संवाद काल मान्य है (स्वर्गारोहण० ५. ३)। इस प्रकार (३०—५=२५, ४५—१०=३५) महाभारत युद्ध के पश्चात् ६०+२५/६०+३५ अर्थात् ८५ से ९५ वर्ष पश्चात् 'जनमेजय-वैशम्पायन संवाद के अन्तर्गत महाभारत की अभिव्यक्ति सिद्ध होती है।

श्रीवैशम्पायन के मुख से महाभारत की कथा सर्पसत्र में सुनकर सौति उग्रश्रवा (लोमहर्षण पुत्र) कुरुक्षेत्रादि पावन तीर्थों की यात्रा करते हुए नैमिषारण्य पहुंचे और वहाँ उन्होंने शौनकादि ऋषियों के अनुरोध से उन्हें महाभारत की चित्र-विचित्र कथा सुनाई (आदि० १।९–२५)।

महाभारत का प्रारम्भ सौति-शौनकादि संवाद से ही होता है। उसी के अन्तर्गत वैशम्पायन-जनमेजय-संवाद और संजय-धृतराष्ट्र-संवाद भी है।

सूतजी को सर्पसत्र के पश्चात् तीर्थयात्रा के सन्दर्भ में नैमिषारण्य तक पहुँचने में अधिक-से-अधिक छह महीने या वर्षभर का समय लगा होगा।

श्रीजनमेजय के ताम्रपत्र की प्रतिलिपि सन् १८७५ नवम्बर में 'इण्डियन इन्टिक्वेरी' पुस्तक में निम्नरूप में हैं—·········· स्वस्ति श्रीजयाभ्युदये युधिष्ठिरशके प्लवाङ्गाख्ये एकोननवतिसंवत्सरे सहस्य (पौष) मासे अमावास्यायां सौम्यवासरे श्रीमन्महाराजाधिराजपरमेश्वरो वीरप्रतापशाली कुरुकुलोद्भवो वैयाघ्रपादगोत्रजः श्रीजनमेजयभूपः किष्किन्धानगर्यां सिंहासनस्थः सकलवर्णाश्रमधर्मप्रतिपालकः—"

इसके अनुसार युधिष्ठिर शक प्लवङ्गम संवत् ८९ वर्ष सहस्य (पौष) मास अमावास्या सौम्यवासर में वैयाघ्रपाद गोत्रज कुरुकुलोद्भव राजा जनमेजय ने किष्किन्धानगरी में सिंहासनस्थ होकर तुङ्गभद्रा, अगस्त्याश्रम आदि तीर्थसीमायुक्त हिरण्यसहित भूक्षेत्र का दान किया। यदि राजा परीक्षित् ६०+३६=९६ वर्ष की अवस्था में उत्क्रमण करें अर्थात् महाभारत युद्ध के ३६ वें वर्ष में स्वर्गारोहण के लिए उद्यत पाण्डवों द्वारा अभिषिक्त होकर ६० वर्षों तक राज्य कर युधिष्ठिर संवत्सर ९६ में वे देहत्याग करें तो महाभारतानुसार युधिष्ठिर संवत्सर ८९ तक अर्थात् परीक्षित् जी के देहत्याग से ६ वर्ष पूर्व तक सम्भव है जनमेजय गर्भस्थ हों या ३, ४ वर्ष के हों। ऐसी स्थिति में उक्त शासनपत्र का अङ्कन और विस्तृत भूभाग का दान एवं धर्मपूर्वक प्रजापालनादि कृत्य उनके द्वारा असम्भव है।

इस तरह, महाभारत युद्धकाल संजय-धृतराष्ट्र संवादकाल सिद्ध होता है। उसके अधिक-से-अधिक सौ वर्ष के अन्दर ही शेष 'वैशम्पायन-जनमेजय संवाद' और 'सौति-शौनकादि-संवाद' घटित होना सिद्ध है।

विकल्प—ध्यान रहे, आज से ५ हजार वर्ष पूर्व कुल ६० वर्ष की आयु प्राप्त करने वाला व्यक्ति यद्यपि दीर्घायु नहीं माना जा सकता, फिर भी जिसे गर्भ में ही मरने का योग प्राप्त हुआ हो, वह यदि ६० वर्षों तक जीवित रह जाय तो दीर्घायु ही माना जा सकता है। साथ ही 'षष्टिवर्षो जरान्वितः' (आदि० ४९. २५३) ५ हजार वर्ष पूर्व ६० वर्ष की आयु में

'जरान्वित' व्यक्ति माना जाय ऐसा नहीं लगता। **'साठा सो पाठा'** वाली कहावत तो आज भी प्रचलित हैं। ऐसी स्थिति में **'प्रजा इमास्तव पिता षष्टिवर्षाण्यपालयत्'** (आदि० ४९ १७) इस उपक्रम वचन और **'दीर्घमायुरवाप्स्यसि'** (सौप्तिक १६. ८) इस उपसंहार वचन के अनुसार ६० वर्ष की आयु में राज्याभिषेक मानें तो राजा परिक्षित् ६०+३६=९६ वर्ष की आयु में स्वर्गारोहण किये, ऐसा सिद्ध होता है। इस दृष्टि से महाभारत युद्ध के ८५ से ९० वर्ष वाद जनमेजय का जन्म और ९५ वर्ष के बाद परीक्षित् का निधन सिद्ध होता है। महाभारत युद्ध के ९५+२५ से ३५ वर्ष बाद अर्थात् १२० से १३० वर्ष वाद लगभग जनमेजय वैशम्पायन-संवाद की और सौति-शौनक-संवाद रूप महाभारत की अभिव्यक्ति सिद्ध होती है। पुराणों में परीक्षित् के चार पुत्रों का वर्णन है (विष्णु० ४. २१. २)। इस दृष्टि से परीक्षित् जी के देहत्याग तक जनमेजय की आयु १०–१५ होनी चाहिये थी।

महाभारत भीष्मपर्व अध्याय २५ से ४२ तक १८ अध्यायों में श्रीमद्भगवद्गीता है। युद्धारम्भ से पूर्व प्रथम दिन में श्रीकृष्णार्जुन संवाद के रूप में श्रीमद्भगवद्गीता की प्रथम अभिव्यक्ति सर्वमान्य है। संजय–धृतराष्ट्र संवाद के अन्तर्गत भगवद्गीता की द्वितीय अभिव्यक्ति दशवें दिन के युद्ध के उपरान्त और ११ वें दिन के युद्धारम्भ से पूर्व मान्य है। इसकी तृतीय और चतुर्थ अभिव्यक्ति वैशम्पायन-जनमेजय संवाद और सौति-ब्राह्मण-संवाद के अन्तर्गत पूर्ववत् है।

घटना घटित होने के पश्चात् इतिहास रचना की प्रथा में ही आस्था रखने वाले भी महाभारत के अनुसार उक्त रीति से महाभारत युद्ध के उपरान्त प्रथम शताब्दी में ही महाभारत रचना मानने को बाध्य हैं। अर्थात् (वि० सं० २०४१, सन् १९८४–८५ से) कलिगताब्द ५० ८५—१००= ४९ ८५ वर्ष पूर्व महाभारत की रचना और श्रीमद्भगवद्गीता की समग्र अभिव्यक्ति काल श्रीमहाभारत के अनुसार सिद्ध है।

(*iv*) आर्षरीति से युद्धोपरान्त १९ वें से २१ वें वर्ष तक रचनाकाल

वस्तुत: दिव्यदर्शी सर्वज्ञकल्प सत्पुरुषों केलिये घटना घटित होने से पूर्व ही उसका चित्रण करना भीं सुलभ ही है।

"लौकिनानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते।
ऋषीणाम्पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुवर्तते ॥"

(उत्तररामचरित १. १०)

"लौकिक साधुओं की तो वाणी अर्थ के पीछे-पीछे चलती है, किन्तु लोकोत्तर ऋषियों का अर्थ वाणी के पीछे-पीछे दौड़ता है ॥ (सामान्य साधु-जन जैसी घटना घटती है, उसके अनुसार ही बोलते हैं, किन्तु लोकोत्तर ऋषि-महर्षि जैसा कह देते हैं. वैसी घटना घट जाती है ॥)"

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण आदि की रचना की भी प्रायः यही स्थिति है। श्रीमहाभारत के अनुसार महर्षि वेदव्यास जी ने वैशम्पायन-जनमेजय-संवाद से पूर्व ही इस संहिता का निर्माण कर लिया था। श्रीवैशम्पायन जो कि महाभारत के प्रवक्ता हैं. वे स्वयं ही श्रीवेदव्यास के सम्मुख जनमेजय के प्रति इस तथ्य का प्रकाश करते हैं—

'इदं शतसहस्रं हि श्लोकानां पुण्यकर्मणाम्।
सत्यवत्यात्मजेनेह व्याख्यातममितौजसा ॥"

(आदि० ६२. १४)

"अमित तेजस्वी सत्यवतीनन्दन व्यासजी ने पुण्यात्मा पाण्डवों की यह कथा एक लाख श्लोकों में कही है ॥"

"त्रिभिवर्षैर्लब्धकामः कृष्णद्वैपायनो मुनिः ॥
नित्योत्थितः शुचिः शक्तो महाभारतमादितः।
तपो नियममास्थाय कृतमेतन्महर्षिणा ॥"

(आदि० ६२. ४१, ४२)

"शक्तिशाली आप्तकाम मुनिवर श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास जी प्रतिदिन उठकर स्नान-सन्ध्या आदि से शुद्ध हो आदि से ही महाभारत रचना करते थे। महर्षि ने तपस्या और नियम का आश्रय लेकर तीन वर्षों में इस ग्रन्थ को पूरा किया है।"

"त्रिभिर्वर्षैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनिः।
महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमद्भुतम् ॥"

(आदि० ६२ ५२)

युद्धारम्भ की पूर्वरात्रि में व्यासजी ने महाभारत-रचना-सम्बन्धी अपना संकल्प धृतराष्ट्र को सुना दिया—

"अहं तु कीर्तिमेतेषां कुरूणां भरतर्षभ ।
पाण्डवानां च सर्वेषां प्रथयिष्यामि मा शुचः ॥"
(भीष्म० २. १३)

"भरतश्रेष्ठ ! मैं इन समस्त कौरवों और पाण्डवों की कीर्तिका तीनों लोकों में विस्तार करूँगा । तुम शोक मत करो ॥"

"इधर, धृतराष्ट्र के दिवंगत हो जानेके पश्चात् सर्पसत्रके बीच-बीचमें अवकाश मिलने पर जनमेजयसे प्रेरित होकर महर्षिने अपने शिष्य वैशम्पायन को महाभारत कथा कहने के लिए प्रेरित किया—

"मातुर्नियोगाद् धर्मात्मा गाङ्गेयस्य च धीमतः ।
क्षेत्रे विचित्रवीर्यस्य कृष्णद्वैपायनः पुरा ॥
त्रीनग्नीनिव कौरव्यान् जनयामास वीर्यवान् ।
उत्पाद्य धृतराष्ट्रं च पाण्डुं विदुरमेव च ॥
जगाम तपसे धीमान् पुनरेवाश्रमं प्रति ।
तेषु जातेषु वृद्धेषु गतेषु परमां गतिम् ॥
अब्रवीद् भारतं लोके मानुषेऽस्मिन् महानृषिः ।
जनमेजयेन पृष्टः सन् ब्राह्मणैश्च सहस्रशः ॥
शशास शिष्यमासीनं वैशम्पायनमन्तिके ।
ससदस्यैः सहासीनः श्रावयामास भारतम् ॥
कर्मान्तरेषु यज्ञस्य चोद्यमानः पुनः पुनः ।"
(आदिपर्व १. ६४-६८½)

"पहले की बात है--शक्तिशाली,धर्मात्मा श्रीकृष्णद्वैपायन (व्यास) ने अपनी माता सत्यवती और परम ज्ञानी गङ्गापुत्र भीष्म पितामह की आज्ञा से विचित्रवीर्य की पत्नी अम्बिका आदि के गर्भ से तीन अग्नियों के समान तेजस्वी तीन कुरुवंशी पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम हैं धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर ॥ इन तीनों पुत्रों को जन्म देकर परम ज्ञानी व्यास जी फिर अपने आश्रम पर चले गये । जब वे तीनों पुत्र वृद्ध हो परम गति को प्राप्त हुए, तब महर्षि व्यास जी ने इस मनुष्य लोक में महाभारत का

प्रवचन किया। जनमेजय और सहस्रों ब्राह्मणों के प्रश्न करने पर व्यासजी ने पास ही बैठे अपने शिष्य वैशम्पायन को आज्ञा दी कि तुम इन लोगों को महाभारत सुनाओ। वैशम्पायन याज्ञिक सदस्यों के साथ ही बैठे थे, अतः जब यज्ञकर्म में बीच बीच में अवकाश मिलता, तब यजमान आदि के बार-बार आग्रह करने पर वे उन्हें महाभारत सुनाया करते थे॥"

ब्रह्माण्ड पुराण और श्रीमद्भागवतके अनुसार सप्तर्षि पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र पर सौ वर्ष रहते हैं। राजा परीक्षित्के जन्मकालसे और देहत्यागके दिन तक सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर ही थे। भगवान् श्रीकृष्ण ने जब धराधाम का त्याग किया तब कलियुग का प्रवेश हुआ (प्रभाव छा गया)। राजा नन्द के शासन काल में सप्तर्षि मघा से ग्यारहवें स्थान पर स्थित पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र पर थे—

"सप्तर्षीणां तु यौ पूर्वौ दृश्येते उदितौ दिवि।
तयोस्तु मध्ये नक्षत्रं दृश्यते यत् समं निशि॥
तेनैत ऋषयो युक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशतं नृणाम्।
ते त्वदीये द्विजाःकाले अधुना चाश्रिता मघाः॥
यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरन्ति हि।
तदा प्रवृत्तस्तु कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः॥
यदा मघाभ्यो यास्यन्ति पूर्वाषाढ़ां महर्षयः।
तदा नन्दात्प्रभृत्येष कलिर्वृद्धि गमिष्यति॥
यस्मिन्कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि।
प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः॥"

(श्रीमद्भागवत १२. २. २७, २८, ३१-३३)

(v) महाभारत की विविध रीति से अभिव्यक्ति

महाभारतमें ही श्रीकृष्ण द्वैपायन वेदव्यास द्वारा महाभारतकी विविध संहिता की अभिव्यक्ति का प्रतिपादन मनोरम रीति से है—

(i) आद्य भारत - पुण्यकर्मा मानवों के उपाख्यानों सहित एक लाख श्लोकों के उत्तम ग्रन्थ को 'आद्य भारत' (महाभारत) जानना चाहिये—

"इदं शतसहस्रं तु लोकानां पुण्यकर्मणाम्॥
उपाख्यानैः सह ज्ञेयमाद्यं भारतमुत्तमम्॥"

(आदिपर्व १. १०. १, १०१३)

(ii) भारत-- श्रीव्यास ने उपाख्यान भाग को छोड़कर चौबीस हजार श्लोकों की भारत-संहिता बनायी, जिसे विद्वान् पुरुष 'भारत' कहते हैं—

"चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम् ।।
उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः ।"
(आदि० १. १०२, १०२½)

(iii) षष्टि शतसाहस्री संहिता—तदनन्तर सर्वज्ञ व्यास ने साठ लाख श्लोकों की एक दूसरी (अन्य) संहिता बनायी। उसके ३० लाख श्लोक देवलोक में समादृत हो रहे हैं, पितृलोक में पन्द्रह लाख तथा गन्धर्व लोक में १४ लाख एवं इस मनुष्यलोक में पूर्वविरचित एक लाख श्लोकों का 'आद्य भारत'। देवर्षि नारद देवलोक में इसके प्रवक्ता हुए हैं। असित और देवल पितृलोक में प्रवक्ता हुए हैं। शुकदेव ने गन्धर्व, यक्ष और राक्षसों को इसकी कथा सुनायी है। इस मनुष्य लोक में सम्पूर्ण वेदवेत्ताओं के शिरोमणि व्यास-शिष्य धर्मात्मा वैशम्पायन ने इसका प्रवचन किया। तदनन्तर शौनकादि ब्राह्मणों को सौति ने इसका उपदेश किया है—

"षष्टिं शतसहस्राणि चकारान्यां स संहिताम् ।।
त्रिंशच्छतसहस्रं च देवलोके प्रतिष्ठितम् ।
पित्र्ये पञ्चदश प्रोक्तं गन्धर्वेषु चतुर्दश ।।
एकं शतसहस्रं तु मानुषेषु प्रतिष्ठितम् ।
नारदोऽश्रावयद् देवानसितो देवलः पितॄन् ।।
(रक्षोयक्षाञ्छुको मर्त्यान् वैशम्पायन एव तु)
गन्धर्वयक्षरक्षांसि श्रावयामास वै शुकः ।
अस्मिंस्तु मानुषे लोके वैशम्पायन उक्तवान् ।।
शिष्यो व्यासस्य धर्मात्मा सर्ववेदविदांवरः ।
एकं शतसहस्रं तु मयोक्तं वै निबोधत ।।"
(स्वर्गारोहण ५. ५४-५६½, आदि० १- १०५-१०९)

यद्यपि महाभारत को 'जय' नामक इतिहास भी कहा जाता है— 'जयो नामेतिहासोऽय" (स्वर्गारोहण ५. ५१), इससे यह ध्वनित होता है कि धर्मराज युधिष्टिर के विजयोपलक्ष्य में इसका रचना की गयी ; परन्तु पाण्डव और परीक्षित् के जीवनकाल में इसकी कथा का प्रतिपादन महा-

भारत में नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि ग्रन्थकार के द्वारा इसकी ऐतिहासिकता सुरक्षित रखी गयी है। राजा परिक्षित् तो साक्षात् पाण्डवों के सम्पर्क में ही ३६ वर्षों तक रहे। उन्हें कौरव-पाण्डव चरित्र का परिज्ञान साक्षात् पाण्डवों से (अपने पूर्वजों से) ही हो गया। जनमेजय जब शिशु ही थे, तभी राजा परीक्षित् का देहान्त हो गया। ऐसी स्थिति में पितृ, पितामह, प्रपितामहादि के जन्म-कर्मादि को जानने की इच्छा स्वाभाविकी थी। यही कारण था कि पूर्वजों के भी पूर्वज श्रीवेदव्यास के सम्मुख ही वैशम्पायन जी के श्रीमुख से उन्होंने महाभारत की कथा सुनी।

विक्रम नवम शती के आनन्दवर्द्धनाचार्य कृत 'ध्वन्यालोक' में, सातवीं शती के आचार्य कवि दण्डीकृत 'अवन्ति सुन्दरी' में, दण्डिपूर्वभावी बाणभट्टकृत कादम्बरी तथा हर्षचरित में, बाणभट्ट के समकालीन काशिकाकार जयादित्य कृत काशिका में, कालिदास कृत मेघदूत में, धर्मकीर्तिकृत प्र० वार्तिक में, सं० ६२७ से पूर्ववर्ती वाक्यपदीयकार भर्तृहरि कृत वाक्यपदीय १. १. ४२ में 'महाभारत' का उल्लेख है। वासवदत्ता में उद्धृत न्यायवार्तिककार उद्योतकर सूत्र ४. १. २१ वार्तिक में, योगभाष्य में, महाराज सर्वनाथ के सं० १९१-२१४ तक के शिलालेख में, स्कन्द स्वामी के पूर्ववर्ती आचार्य दुर्ग निरुक्तभाष्य १. ४ में महाभारत के श्लोक उद्धृत हैं। लङ्कावतार सूत्र में व्यास और भारत का नाम है। वररुचि कृत वाररुचनिरुक्त समुदाय में "विभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति' (आदि० १. २६७३) इति व्यास वचनम्' ऐसा कहा गया है।

उक्त रीति से भी महाभारत की प्राचीनता सिद्ध है।[२६]

महाभारत में यह भी माना गया है कि महर्षि व्यास ने इस ज्ञान का संक्षेप और विस्तार दोनों ही प्रकार से वर्णन किया है; क्योंकि संसार में विद्वान् पुरुषों को संक्षेप और विस्तार दोनों ही रीतियां इष्ट हैं। कोई-कोई इस ग्रन्थ का आरम्भ 'मन्वादि' (प्रथम अध्याय) से मानते हैं, कोई-कोई 'आस्तीकपर्व' (१३ वाँ अध्याय) से तो दूसरे (अन्य) विद्वान् ब्राह्मण 'उपरि-

---

२६—विशेष जानकारी के लिये ग्रन्थकार अनन्त श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज द्वारा विरचित 'रामायण मीमांसा' नामक ग्रन्थरत्न अध्याय २० 'रामायण आदि रचनाकाल' पृ० ९९६–१०४९ देखें। 'महाभारत का काल निर्णय' पृ० १०५०–१०५२ देखें।

चर वसु' (६३ वाँ अध्याय) से इसका आरम्भ मानकर वहीं से इसका विधिवत् पाठारम्भ करते हैं—

"मन्वादि भारतं केचिदास्तीकादि तथा परे।
तथोपरिचराद्यन्ये विप्राः सम्यगधीयते ॥"
(आदि० १. ५२)

इस स्थल में पाठारम्भ का सम्प्रदाय भेद वर्णन है। महाभारत का कोई 'नारायणं नमस्कृत्य' से पाठारम्भ करके ग्रन्थ समाप्त करते हैं, कोई जरत्कारु पुत्र आस्तीक की कथा से प्रारम्भ करते हैं और कोई उपरिचरवसु की कथा से आरम्भ करके ग्रन्थ पूरा करते हैं।

श्रीनीलकण्ठ के अनुसार वर्णानुपूर्वी का भेद रहने पर भी प्रतिकल्प नाम, रूप और कर्मों की समानता रहती है, अतः कल्पभेद से भारतारम्भ में भेद कहा गया है। 'मनु' शब्द का अर्थ 'नारायणं नमस्कृत्य' यह मन्त्र है। किन्हीं की दृष्टि में प्रणव पूर्वक 'नमो भगवते वासुदेवाय' यह मन्त्र ही 'मनु' है।

जहाँ उपाख्यान रहित २४ हजार श्लोकों के भारत का वर्णन है, वहाँ यह भी कहा गया है कि श्रीव्यास ने अनुक्रमणिका अध्याय की रचना की, जिसमें १५० श्लोक थे—

"ततोऽप्यर्धशतं भूयः संक्षेपं कृतवानृषिः ॥
अनुक्रमणिकाध्यायं वृत्तान्तं सर्वपर्वणाम् ।"
(आदि० १. १०३, १०३½)

किन्तु उपलब्ध संस्करणों में जिसे 'शतसाहस्री संहिता' कहते हैं, उपक्रमणिका अध्याय के १५० श्लोक न होकर २७५ श्लोक हैं। वस्तुतः उपाख्यानांश को छोड़कर आज भी १५० श्लोक ही अवशिष्ट रहते हैं।

यथा—

'दुर्योधनो मन्युमयो महाद्रुमः' श्लो० ११० से 'तमस्त्वतीव विस्तीर्णं' श्लो० २१८ तक	=	१०९
'संजयैवं गते प्राणांस्त्यक्तु' श्लोक २२०	=	१
'श्रुतवानसि वै राजन्' श्लो० २२२ से		

'अतीतानागता भावाः' श्लो० २५१ तक	=	३०
'भारताध्ययनं' श्लो० २५४ से		
'उभे सन्ध्ये जपन्' २६३ तक	=	१०
	श्लोक	१५०

यहाँ यह हृदयंगम रखना आवश्यक है कि श्लोक २१८, २२१, २५२-२५३ 'संजय-धृतराष्ट्र संवाद' का सम्बन्ध जोड़ने के लिए सौति के बचन हैं। २६४ वें श्लोक से अध्याय के अन्त तक श्रीसौति ने मूल माहात्म्य का विस्तार अपने शब्दों में किया है।

इससे यह ध्वनित होता है कि २४ हजार वाला भारत उपलब्ध महाभारत में ही सन्निहित हैं। उपाख्यान रहित होने के कारण उपाख्यान सहित महाभारत से उसे प्राप्त करना कठिन है।

वर्तमान काल में उपलभ्यमान लक्षश्लोकात्मक ग्रन्थ ही महाभारत है। वही 'भारत' और 'जय' नामक इतिहास भी मान्य है; ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार वाल्मीकीय रामायण के रामायण के साथ ही 'सीताचरित' और 'पौलस्त्यवध' भी नाम हैं—

"काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्।
पौलस्त्यवध इत्येव चकार चरितव्रतः॥"
(वा० रामायण १. ४. ७)

महाभारत को 'कार्ष्णवेद' (स्वर्गा० ५. ४१) भी माना गया है। यह श्रीकृष्ण द्वैपायन द्वारा कथित और वेदसार सर्वस्व होनेके कारण 'कार्ष्णवेद' है। वेदव्यास ने तीन वर्षों में इसकी रचना की—

"त्रिभिर्वर्षैरिदं पूर्णं कृष्णद्वैपायनः प्रभुः।
अखिलं भारतं चेदं चकार भगवान् मुनिः॥"
(स्वर्गारोहण ५. ४८)

"मुनिवर भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन ने तीन वर्षों में इस सम्पूर्ण महाभारत को पूर्ण किया है॥"

साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि श्रीव्यास ने लोकपितामह श्रीब्रह्मा-

जी से यह अभिप्राय व्यक्त किया कि 'मैंने अपने काव्य में सर्वलोकोपयोगी पदार्थों का सन्निवेश किया है; परन्तु पृथ्वी में इस ग्रन्थ को लिख सके ऐसा कोई नहीं हैं।,' तब श्रीब्रह्माजी से प्रेरित और व्यासजी से स्मारित श्रीगणेश जी इसके लेखक हुए। यथा—

"यच्चापि सर्वगं वस्तु तच्चैव प्रतिपादितम्।
परं न लेखकः कश्चिदेतस्य भुवि विद्यते॥"
(आदि० १. ७०)

"लेखको भारतस्यास्य भव त्वं गणनायक।
मयैव प्रोच्यमानस्य मनसा-कल्पितस्य च॥"
(आदि० १. ७७)

वस्तुतः दोनों भावों में विगान न होकर सहज सामञ्जस्य है। 'मनसा कल्पितस्य च' (आदि० १. ७७) से यह स्पष्ट है कि पहले तीन वर्षों में श्रीव्यासदेव ने महाभारत की 'मानस रचना की और तत्पश्चात् श्रीगणेश ने उनके कथनानुसार उसे लिपिबद्ध किया।

कहा जा सकता है कि श्रीशुक को महाभारत का मुख्य अध्येता और यक्षादि लोकों में उपदेष्टा माना गया है; परन्तु युद्धारम्भ से पूर्व ही उनकी उत्क्रान्ति और ब्रह्मलीनता का वर्णन है—

"दर्शयित्वा प्रभावं स्वं ब्रह्मभूतोऽभवत्तदा।"
(शान्तिपर्व ३३३. १९३)

ऐसी स्थिति में महाभारत युद्ध के वर्षों पूर्व महाभारत की रचना सिद्ध होती है न कि युद्धोपरान्त।

उत्तर के रूप में यह कहा जा सकता है कि श्रीनारदजी से प्रेरित शुक ने जब दिव्य रीति से पहले सदेह उत्क्रमण किया और बाद में स्वयं को ब्रह्मीभूत बना लिया तब शोकग्रस्त होकर उनके अनुगमन में संलग्न व्यास से श्रीशङ्कर (जिनकी आराधना से शुक अरणिमंथन के समय पात्र से व्यक्त हुए थे) ने उन्हें वरदान दिया—

"यावत्स्थास्यन्ति गिरयो यावत्स्थास्यन्ति सागराः।
तावत् तवाक्षया कीर्तिः सुपुत्रस्य भविष्यति॥

छायां स्वपुत्रसदृशीं सर्वतोऽनपगां सदा।
द्रक्ष्यसे त्वं च लोकेऽस्मिन् मत्प्रसादान्महामुने ॥'
(शान्तिपर्व ३:३. ३७, ३८)

"जब तक इस संसार में पर्वतों की सत्ता रहेगी जब तक समुद्रों की स्थिति बनी रहेगी, तब तक तुम्हारी और तुम्हारे पुत्र की अक्षय कीर्ति इस संसार में छायी रहेगी ॥ महामुने ! तुम मेरे प्रसाद से इस जगत् में सदा अपने पुत्रसदृश छाया का दर्शन करते रहोगे। वह सब ओर दिखायी देगी, कभी तुम्हारी आखों से ओझल न होगी ॥"

साक्षात् भगवान् शङ्कर के इस प्रकार आश्वासन देने पर सर्वत्र अपने पुत्र की छाया देखते हुए मुनिवर व्यासदेव बड़ी प्रसन्नता के साथ अपने आश्रम पर लौट आये—

'सोऽनुनीतो भगवता स्वयं रुद्रेण भारत।
छायां पश्यन् समावृत्तः स मुनिः परया मुदा ॥"
(शान्ति० ३३३. ३९)

सम्भव है, छाया-शुक को ही वेदव्यास ने महाभारत-संहिता का अनुशीलन कराया हो और उसी ने लोक-लोकान्तरों में उसका प्रचार किया हो।

यह भी सम्भव है कि ब्रह्मीभूत होने से पूर्व ही जिस प्रकार देवगुरु वृहस्पति से और वेदव्यास से शुक ने अन्य विद्याओं का बोध अर्जित किया उसी प्रकार मौखिक रीति से महाभारत का भी बोध अर्जित कर उसका अधिकारियों में उपदेश किया हो।

(iv) पर्वानुक्रमानुसार महाभारत के श्लोकों की संख्या

"इदं शतसहस्रं तु श्लोकानां पुण्यकर्मणाम्।
सत्यवत्यात्मजेनेह व्याख्यातममितौजसा ॥"
(महा० १. ६२. १४)

शतसाहस्री संहिता के रूप में महाभारत की प्रसिद्धि है। 'शतसाहस्र्यां संहितायां' ऐसा पर्व के अन्त में पुष्पिका में लिखा होता है। पर्वानुक्रमानुसार उसकी श्लोक-सख्या का भी विवरण मूल महाभारत में ही

है। हरिवंश को महाभारत का खिल (परिशिष्ट) माना गया है। सम्पूर्ण महाभारत में १८ पर्व, १०० उपपर्व हैं—

"हरिवंशस्ततः पर्व पुराणं खिलसंज्ञितम्।
विष्णुपर्व शिशोश्चर्या विष्णोः कंसवधस्तथा॥
भविष्यपर्व चाप्युक्तं खिलेष्वेवाद्भुतं महत्।
एतत् पर्वशतं पूर्णं व्यासेनोक्तं महात्मना॥
यथावत् सूतपुत्रेण लौमहर्षणिना ततः।
उक्तानि नैमिषारण्ये पर्वाण्यष्टादशैव तु॥"
(आदि० २. ८२-८४)

मूल विवरण के अनुसार एक लाख से कुछ कम श्लोकों की संख्या सिद्ध होती है। वैसे सवा लाख पर्यन्त श्लोकों वाले महाभारत का प्रकाशन हो चुका है।

सम्वत् ६७७ शिशुपालवध माघकाव्य के टीकाकार वल्लभदेव ने महाभारत के श्लोकों की सवा लाख संख्या बतलायी है (माघकाव्य २. ३८)। वल्लभदेव के पुत्र इन्द्रादित्य थे तथा पौत्र कैय्यट थे। कैयट ने देवीशतक की विवृति में अपना समय कलि सम्वत् ४०७८ अर्थात् विक्रम १०३४ लिखा है।

क्रम	पर्व	अध्याय	श्लोक	विवरण[२७]
१.	आदिपर्व	२२७	८८८४	२. १३०-३१
२.	सभापर्व	७८	२५११	२. १४१-४२
३.	वनपर्व	२६९	११६६४	२. २०३-५
४.	विराट्पर्व	६७	२०५०	२. २१५-१७
५.	उद्योगपर्व	१८६	६६९८	२. २४२-४३
६.	भीष्मपर्व	११७	५८८४	२. २५२-५३
७.	द्रोणपर्व	१७०	८९०९	२. २६७
८.	कर्णपर्व	६९	४९६४	२. २७७
९.	शल्यपर्व	५९	३२२०	२. २९०
१०.	सौप्तिकपर्व	१८	८७०	२. ३११

२७—आदिपर्व

११.	स्त्रीपर्व	२७	७७५	२. ३२३
१२.	शान्तिपर्व	३३९	१४७३२	२. ३२९
१३.	अनुशासन	१४६	८०००	२. ३३८
१४.	आश्वमेधिक	१०३	३३२०	२. ३४३
१५.	आश्रमवासिक	४२	१५०६	२. ३५२
१६.	मौसलपर्व	८	३२०	२. ३६३
१७.	महाप्रस्थानिक	३	१२३	२. ३६९
१८.	स्वर्गारोहण	५	२०९	२. ३७७
१९.	खिलपर्व (हरिवंश)		१२०००	२. ३७९
			९६, ६३९	श्लोक

छानवे हजार छसौ उनतालीस

२७. आदिपर्व

(vii) महाभारत में सोम आदि वासर और मेषादि राशियों का संकेत

यद्यपि सोम आदि सप्तवासरों और मेषादि राशियों का स्पष्ट उल्लेख युद्ध-प्रसंग में महाभारत में नहीं है; तथापि शशि, सूर्य, शनि, बृहस्पति, मङ्गल ग्रहों का जिनके नाम से सप्त-दिन प्रसिद्ध हैं और श्रवणादि नक्षत्र तथा सप्तर्षियों का उल्लेख है—

"अर्कं राहुरुपैति च" (भीष्म० ३. ११)="राहु सूर्य के निकट जा रहा है", "रोहिणीं पीडयत्येवमुभौ च शशिभास्करौ" (३. १७)="राहु रोहिणी तथा चन्द्रमा और सूर्य को पीड़ा पहुँचाता है।"

"मघास्वङ्गारको वक्रः श्रवणे च बृहस्पतिः।
भगं नक्षत्रमाक्रम्य सूर्यपुत्रेण पीड्यते ॥"
(भीष्म० ३. १४)

"मङ्गल वक्र होकर मघा नक्षत्र पर स्थित है, बृहस्पति श्रवण नक्षत्र पर विराजमान है तथा सूर्यपुत्र शनि पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र पर पहुँचकर उसे पीड़ा दे रहा है॥"

"विशाखायाः समीपस्थौ बृहस्पतिशनैश्चरौ।"
(भीष्म० ३. २७)

"बृहस्पति और शनैश्चर तिर्यग्वेध के द्वारा विशाखा नक्षत्र के समीप आ गये हैं।"

"सप्तर्षीणामुदाराणां समवच्छाद्यते प्रभा ।।"
(भीष्म० ३. २६)

"उदार सप्तर्षियों की प्रभा फीकी पड़ती जाती है।"

ध्यान रहे, 'एको अश्वो वहति सप्तनामा' (ऋ० सं० १. १६४. २), इस मन्त्र में सप्तवासरों का उल्लेख है।

हेमाद्रि-दानखण्ड तृतीय प्रकरण में यह कहा गया है कि सोम, भौम तथा गुरुवार को अमावास्या होने पर पुष्कर पर्व होता है, वह सौ सूर्य पर्वों से भी अधिक पुण्य काल है—

"अमा सोमे तथा भौमे गुरुवारे यदा भवेत्।
तत्पर्व पुष्करं नाम सूर्यपर्वशताधिकम् ।।"

यह वचन महाभारत का बताया गया है (हेमाद्रिः दानखण्ड ३ अध्याय)।

इसी तरह अयन (कर्क और मकर), विषुव (मेष और तुला), षडशीतिमुख (मिथुन, कन्या, धनु और मीन) तथा पर्व अर्थात् विष्णुपद (वृषभ, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ) नामों से संक्रान्तियों का वर्णन महाभारत में विद्यमान है—

"ऋतुषु दशगुणं वदन्ति दत्तं
शतगुणमृत्वयनादिषु ध्रुवम्।
भवति सहस्रगुणं दिनस्यराहो--
र्विषुवति चाक्षयमश्नुते फलम् ।।"
(वनपर्व २००. १२६)

"विद्वान् पुरुष ऋतु आरम्भ होने के दिन दिये हुए दान को दस गुना तथा अयन आदि के दिन सौ गुना बताते हैं। इसी प्रकार ग्रहण के दिन दिये हुए दान का फल सहस्र गुना होता है और वपुष योग में दान करने से मनुष्य उसके अक्षय पुण्य फल का उपभोग करता है।"

"अयने विषुवे चैव षडशीतिमुखेषु च।
चन्द्रसूर्योपरागे च दत्तमक्षयमुच्यते।"
(वनपर्व २००. १२५)

"उत्तरायण और दक्षिणायन आरम्भ होने के दिन. विषुव-योग (तुला और मेष की संक्रान्ति) में, मिथुन-कन्या-धनु और मीन की संक्रान्तियों में तथा चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण के अवसर पर दिया हुआ दान अक्षय बताया गया है ।।"

वृद्ध वसिष्ठ ने संक्रान्तियों के उक्त नाम बतलाये हैं—

"अयने द्वे विषुवे द्वे चतस्रः षडशीतयः।
चतस्रो विष्णुपद्यश्च संक्रान्त्यो द्वादश स्मृताः ।।"

।। श्रीहरिः ।।

२. नक्षत्र-विज्ञान

'दशार्द्राद्यास्त्रयस्तारा विशाखाद्या नपुंसकाः।
तिस्रस्ततश्च मूलाद्याः पुरुषाश्च चतुर्दश ।।"
(शीघ्रबोध ४. ५३)

"आर्द्रा से स्वाति तक १० नक्षत्र स्त्री हैं। विशाखा से ज्येष्ठा तक ३ नक्षत्र नपुंसक हैं। मूल से मृग तक १४ पुरुष हैं ।।"

❋ ३ नक्षत्र-सारिणी ❋ [२८]

नक्षत्र	मास-पूर्णिमा	देवता
१. अश्विनी	आश्विन	अश्विनी कुमार
२. भरणी		यम
३. कृत्तिका	कार्तिक	अग्नि
४. रोहिणी	,,	ब्रह्मा
५. मृगशिरा	मार्गशीर्ष	चन्द्र
६. आर्द्रा	,,	शिव
७ पुनर्वसु	पौष	अदिति
८. पुष्य	,,	वृहस्पति
९. आश्लेषा	माघ	सर्प
१०. मघा		पितर
११. पूर्वा फाल्गुनी		भग

२८—नारदपुराण पूर्वपाद-द्वितीयपाद

१२. उत्तराफाल्गुनी	फाल्गुन	अर्यमा
१३. हस्त	,,	सूर्य
१४. चित्रा	चैत्र	विश्वकर्मा
१५. स्वाति	,,	वायु
१६. विशाखा	वैशाख	अग्नि-इन्द्र
१७. अनुराधा	,,	मित्र
१८. ज्येष्ठा	ज्येष्ठ	इन्द्र
१९. मूल	,,	निर्ऋति
२०. पूर्वाषाढ़ा	आषाढ़	उदक
२१. उत्तराषाढ़ा	,,	विश्वेदेवाः
+ २२. श्रवण	श्रावण	विष्णु
२३. धनिष्ठा	,,	वसु
२४. शतभिषा		वरुण
२५. पूर्वा भाद्रपदा	भाद्रपद	अजचरण
२६. उत्तराभाद्रपदा	,,	अहिर्बुध्न्य
२७. रेवती	आश्विन	पूषा

४. प्रदीपिका

i • शुक्लादि मास

"अहः पूर्वं ततो रात्रिर्मासाः शुक्लादयः स्मृताः ।
श्रवणादीनि ऋक्षाणि ऋतवः शिशिरादयः ।।"

(महा० आश्वमेधिक ४४. २)

ii • सप्तर्षि मघा नक्षत्र पर युधिष्ठिर के राज्यकाल में

"आसन् मघासु मुनयः शासति पृथिवीं युधिष्ठिरे नृपतौ ।
षट्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालास्तस्य राज्ञश्च ।।"

(बृहत्संहिता १३. ३)

iii • महाभारत

• "आदौ पाण्डव-धार्तराष्ट्रजननं लाक्षागृहे दाहनं ।
द्यूतं श्रीहरणं वने विहरणं मत्स्यालये वर्तनम् ।

+ अभिजित् विधि

लीलागोग्रहणं रणे विहरणं सन्धिक्रिया जृम्भणं
पश्चाद् भीष्मसुयोधनादि निधनमेतन्महाभारतम् ।।
(भारत-सावित्री, अन्तिम, १००)

iv ● महाभारत-निरुक्ति

"एकतश्चतुरो वेदान् भारतं चैतदेकतः ।।
पुरा किल सुरैः सर्वैः समेत्य तुलया धृतम् ।
चतुर्भ्यः सरहस्येभ्यो वेदेभ्यो ह्यधिकं यदा ।।
तदा प्रभृति लोकेऽस्मिन् महाभारतमुच्यते ।
महत्त्वे च गुरुत्वे च ध्रियमाणं यतोऽधिकम् ।।
महत्त्वाद् भारवत्वाच्च महाभारतमुच्यते ।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।"
(महा० आदि० १. २७१–२७४)

"धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित् ।।"
(महा० स्वर्गा० ५. ५० ; १. ६२. ५२)

"इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति ।
कार्ष्णं वेदमिमं विद्वान् श्रावयित्वार्थमश्नुते ।।"
(महा० आदि० १. २६७, २६८)

"इतिहासमिमं पुण्यं महार्थं वेदसम्मितम् ।
व्यासोक्तं श्रूयते येन कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः ।।
स नरः सर्वकामांश्च कीर्तिं प्राप्येह शौनक ।
गच्छेत् परमिकां सिद्धिमत्र मे नास्ति संशयः ।।"
(महा० स्वर्गा० ५. ५७, ५८)

"श्रावयेच्चतुरो वर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः ।
वेदस्याध्ययनं हीदं तच्च कार्यं महत् स्मृतम् ।।"
(महा० शान्ति० ३२७. ४९)

"भाति सर्वेषु वेदेषु रतिः सर्वेषु जन्तुषु ।
तारणं सर्वपापानां यस्माद् भारतमुच्यते ।।

भारतस्य समुद्रस्य मेरोर्नारायणस्य च ।
अप्रमेयाणि चत्वारि पुण्यं तोयं गुहागुणाः ॥"
(भारत-सावित्री ६२, ६३)

(v) 'जय' मीमांसा

"नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥"
(महाभारत मङ्गलाचरण)

"अर्थात् नारायण परमेश्वर कृष्ण और नर अर्जुन तथा नरोत्तम प्रत्यक् चैतन्याभिन्न शुद्ध ब्रह्म तथा ब्रह्मविद्यारूपिणी सरस्वती को नमस्कार करके ही जय का वर्णन करना चाहिये ॥"

यद्यपि पुराणादि सभी का नाम 'जय' है। तथापि विशेषरूप से १८ संख्या वाले महाभारत का जय यह संकेत है—'जय नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा' (महा० ५. १३६. १८)। वाल्मीकि रामायण के टीकाकार सर्ग के श्लोकों की संख्या अक्षरों के संकेत से करते हैं।

"कादयोऽङ्काष्टादयोऽङ्काः याद्याः पञ्चप्रकीर्तिताः ।
यादयोऽष्टौ ञनौ पूर्णे विज्ञेयाःवरशास्त्रके ॥"
(समर सार)

क से झ और ट से ध तक के अक्षर क्रमशः एक से नौ तक के, प से म तक के अक्षर क्रमशः एक से ५ तक के और य से ह तक के अक्षर एक से आठ तक के वाचक हैं। ञ और न ये दो अक्षर पूर्ण संख्या के वाचक हैं।

जैमिनि सूत्र और आर्ष सिद्धान्त भी संख्या का वर्णन इसी रीति से करते हैं।

उपयुक्त रीति से ज ८ का वाचक है और य एक का वाचक। 'अङ्कानां वामतो गतिः' के अनुसार 'जय' शब्द १८ संख्या का बोधक है। महाभारत १८ पर्वों का है; महाभारत युद्ध भी १८ दिनों तक हुआ। दोनों दलों में १८ अक्षौहिणी सेना थी। गीता १८ अध्याय की है। गीता में स्थित-प्रज्ञ सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर १८ श्लोकों में हैं। इस तरह ग्रन्थ नाम 'जय' हुआ।

संख्या	अक्षर	संख्या	अक्षर
१	क, ट, प, य	६	च, त, ष
२	ख, ठ, फ, र	७	छ, थ, स
३	ग, ड, ब, ल	८	ज, द, ह
४	घ, ढ, भ, व	९	ञ, ध
५	ङ, ण, म, श	०	ञ न

(vi) • युद्धस्थल का क्षेत्रफल—

'पञ्चयोजनमुत्सृज्य मण्डलं तद्रणाजिरम्।
सेनानिवेशास्ते राजन्नाविशञ्छतसङ्घशः॥'
(महा० उद्योग० १६५. १५)

"शल्यः श्रुत्वा तु दूतानां सैन्येन महता वृतः।
अभ्ययात् पाण्डवान् राजन् सहपुत्रैर्महारथैः॥
तस्यसेनानिवेशोऽभूदध्यर्द्धमिव योजनम्।
तथा हि विपुलां सेना बिभर्ति स नरर्षभः॥"
(महा० उद्योग० ८।१, २)

"तथा भूरिश्रवाः शूरः शल्यश्च कुरुनन्दन॥
दुर्योधनमुपायातावक्षौहिण्या पृथक् पृथक्।"
(महा० उद्योग १९. १६, १६३)

शल्य एक अक्षौहिणी सेना लेकर आये। उनकी सेना ने ½ योजन भूमि में निवास किया। इस तरह अठारह अक्षौहिणी सेना के निवास के लिये कम-से-कम ९ योजन भूमि अपेक्षित थी। दुर्योधन ने ५ योजन मण्डल युद्ध-भूमि छोड़कर शिविरों का निर्माण करवाया। यदि दुर्योधन की ११ अक्षौ-हिणी सेना के लिये अपेक्षित पञ्चयोजन-मण्डल भूमि का वर्णन है तब तो यह समझना चाहिये कि पाण्डवों ने लगभग ४ योजन मण्डल भूमि छोड़कर शिविर बनवाया होगा। इस तरह लगभग ९ योजन मण्डल युद्धभूमि का क्षेत्रफल समझना चाहिये। इस तरह ९+९=१८ योजन मण्डल भूमि युद्ध-स्थल और शिविर निर्माण के लिए अपेक्षित समझना चाहिये। अथवा ९ योजन शिविर निर्माण के लिये और ५ योजन मण्डल युद्ध के लिये क्षेत्रफल मानना चाहिये।

vii • सेना और दिन—

"अष्टादश समाजग्मुरक्षौहिण्यो युयुत्सया।
तन्महादारुणं युद्धमहान्यष्टादशाभवत् ॥"

(महा० आदि० २।३८१)

viii • युद्ध में सम्मिलित न होने वाले रुक्मी और वलभद्र—

"द्वावेष तु महाराज तस्माद्युद्धादपेयतुः।
रौहिणेयश्च वार्ष्णेयो रुक्मी च वसुधाधिप ॥"

(उद्योग० १५८. ३८)

ix • युद्ध में कुल बारह जीवित रहे—

"कष्टं युद्धे दशशेषाः श्रुता मे
त्रयोऽस्माकं पाण्डवानाञ्च सप्त।
द्व्यूना विंशतिशहताऽक्षौहिणीनां
तस्मिन् संग्रामे भैरवे क्षत्रियाणाम् ॥"

(महा० आदि० १. २१७)

"एह्येहि सर्वे योत्स्यामस्तवभ्रातृनपण्डितान्।
युयुत्सो वासुदेवश्च वयं च ब्रूम सर्वशः ॥
वृणोमि त्वां महाबाहो युद्ध्यस्व ममकारणात्।
त्वयि पिण्डश्च तन्तुश्च धृतराष्ट्रस्यदृश्यते ॥"

(महा० भीष्म० ४३. ९७, ९८)

"नैनं शस्त्राणि छेत्स्यन्ति नैनं बाधिष्यते श्रमः।
(गावल्गणे त्वं जीवन् युद्धादस्माद्विमोक्ष्यति ॥)
गावल्गणिरयं जीवन् युद्धादस्माद्विमोक्ष्यते ॥"

(महा० भीष्म० २. १२)

पाँच पाण्डव, श्रीकृष्ण, सात्यकि, युयुत्सु-ये आठ पाण्डवपक्ष के जीवित बचे। कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा एवं संजय-ये चार, कौरव पक्ष के जीवित बचे। अर्थात् कुल बारह जीवित रहे।

x • महाभारत युद्ध में हताहत सैनिकों की संख्या—

• महाभारत युद्ध में १ अरब, ६६ करोड़, २० हजार योद्धा मारे

गये। २४ हजार, १६५ सैनिक लापता हो गये। इस प्रकार युद्ध में कुल १ अरब, ६६ करोड़, ४४ हजार, १६५ सैनिक सम्मिलित हुए—

"दशायुतानामयुतं सहस्राणि च विंशतिः ।
कोट्यः षष्टिश्च षट् चैव ह्यस्मिन् राजन् मृधे हतः ।।
अलक्षितानां वीराणां सहस्राणि चतुर्दश ।
दश चान्यानि राजेन्द्र शतं षष्टिश्च पञ्च च ।।"
(स्त्रीपर्व २६. ९, १०)

इस दृष्टि से १ अरब, ६६ करोड़, ४४ हजार, १६५÷१८=९ करोड़, २२ लाख, २४ हजार, ६७५ सैनिक १ अक्षौहिणी में सिद्ध होते हैं। शेष १५ में युयुत्सु, कृतवर्मा और सात्यकि को सम्मिलित मानकर ९ करोड़, २२ लाख, २४ हजार, ६७६ सैनिक सिद्ध होते हैं। महाभारत में अश्वरक्षक, रथरक्षक और गजारोहिणों की तथा बिछड़ी हुई टोलियों को मिलाने वाले रक्षकों की जो संख्या उपलब्ध है उसके साथ एक अक्षौहिणी में निर्दिष्ट पैदल १, ०९, ३५० सैनिकों की संख्या जोड़ कर लगभग इतनी संख्या सिद्ध होती है (द्रष्टव्य उद्योग० १५५ ; आदिपर्व १ ; आदिपर्व २ ; शल्यपर्व २१ ; शल्यपर्व ३५ अध्याय)।

xi • दो रात्रि युद्ध

'प्रथम रात्रियुद्ध' युद्ध के चौदहवें दिन, जयद्रथवध के बाद हुआ—

• इति श्रीमहाभारते द्रोणपर्वणि 'रात्रियुद्धे' १५३-१८५

'द्वितीय रात्रियुद्ध' युद्ध के अठारहवें दिन सौप्तिक संहार के रूप में हुआ—

• इति श्रीमहाभारते सौप्तिके पर्वणि रात्रियुद्धे पाञ्चालादि वधेऽष्टमोऽध्यायः ।।

५. युद्ध-दीपिका (१)
(श्रीनीलकण्ठ मतानुसार)

i वर्ष—द्वापर के सन्ध्यंश और कलि की सन्धि ('द्वापरस्य कलेश्चैव सन्धो पार्यवसानिके' (महा० शान्ति० ३३९. ८९)।

ii अयन— दक्षिणायन

iii ऋतु—हेमन्त

iv मास–मार्गशीर्ष एवं पौष
v पक्ष– मार्गशीर्ष शुक्ल एवं पौष शुक्ल
vi तिथि-मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्दशीसे पौषशुक्ल प्रतिपदा
vii नक्षत्र–मृगशिरा से श्रवण
viii विशेष–मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष तेरह दिनों का था
ix भीष्म-पतन–पौष कृष्ण अष्टमी
x भीष्म-निर्वाण–माघ शुक्ल अष्टमी

※ ६. युद्ध-पूर्विका (१)

- कार्तिक शुक्ल १२ रेवती–श्रीकृष्ण का उपप्लव्य नगर से हस्तिनापुर के लिये प्रस्थान।
- मार्गशीर्ष कृष्ण ५ पुष्य–श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर से उपप्लव्य नगर के लिये प्रस्थान।
- मार्गशीर्ष कृष्ण ५ पुष्य–(१) उभय सेना का कुरुक्षेत्र के लिये प्रस्थान (२) पाण्डवों से मिलने के लिये श्रीबलदेव जी का शुभागमन
- मार्गशीर्ष शुक्ल १३ रोहिणी–(१) सैन्य-शिक्षण, युद्ध-मर्यादा निर्धारण (२) श्रीवेदव्यास द्वारा हस्तिनापुर में संजय को दिव्यदृष्टि एवं दिव्यशक्ति प्रदान।

७. युद्ध-सारणी (१)

(श्रीनीलकण्ठाचार्य मतानुसार)

मार्गशीर्ष शुक्ल	१४–मृगशिरा	;	युद्धारम्भ, गीताजयन्ती
मार्गशीर्ष शुक्ल	१५–आर्द्रा	;	दूसरे दिन का युद्ध
पौष कृष्ण	१–पुनर्वसु	;	तीसरे दिन का युद्ध
पौष कृष्ण	२–पुष्य	;	चौथे दिन का युद्ध
पौष कृष्ण	३–आश्लेषा	;	पाचवें दिन का युद्ध
पौष कृष्ण	४–मघा	;	छठे दिन का युद्ध
पौष कृष्ण	५–पू. फाल्गुनी	;	सातवें दिन का युद्ध
पौष कृष्ण	६–उ. फाल्गुनी	;	आठवें दिन का युद्ध
पौष कृष्ण	७–हस्त	;	नवें दिन का युद्ध
पौष कृष्ण	८–चित्रा	;	दशवें दिन का युद्ध, भीष्मवध

पौष कृष्ण ९–स्वाति	;	ग्यारहवें दिन का युद्ध
पौष कृष्ण १०–विशाखा	;	बारहवें दिन का युद्ध
पौष कृष्ण ११–अनुराधा	;	१३ वें दिन का युद्ध, अभिमन्युवध
पौष कृष्ण १२–ज्येष्ठा	;	१४ वें दिन का युद्ध, जयद्रथवध
पौष कृष्ण १३–मूल	;	१५ वें दिन का युद्ध, द्रोणवध
पौष कृष्ण १४–पूर्वाषाढ़ा	;	१६ वें दिन का युद्ध
पौष कृष्ण अमा०–उत्तराषाढ़ा	;	१७ वें दिन का युद्ध, कर्णवध
पौष शुक्ल १ श्रवण	;	१८ वें दिन का युद्ध. शल्य वध –दुर्योधनवध, सौप्तिक संहार

८. युद्ध-दीपिका (२)

(प्रचलित गीताजयन्ती के अनुसार)

तिथि––मार्गशीर्ष शुक्ल ११ से पौष शुक्ल प्रतिपदा या द्वितीया पर्यन्त

नक्षत्र—अश्विनी से श्रवण

विशेष––मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष त्रयोदश दिनात्मक

भीष्म-निर्वाण––माघ शुक्लाष्टमी

★

९. युद्ध-पूर्विका

मार्गशीर्ष शुक्ल १० रेवती/अश्विनी––सैन्य-शिक्षण, युद्ध-मर्यादा-निर्धारण ; श्रीवेदव्यास द्वारा संजय को दिव्य दृष्टि एवं शक्ति प्रदान

★

१०. युद्ध-सारणी (२)

॥ श्रीहरिः ॥

"मघा विषयगः सोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत ।
दीप्यमानाश्च सम्पेतुर्दिवि सप्त महाग्रहाः ॥"
(भीष्म० १७. २)

मघा नक्षत्र में सप्तग्रहों का योग था । 'पुष्य' नक्षत्र में हस्तिनापुर

और उपप्लव्य नगर से चली हुई कौरव-पाण्डवों, की सेना तीसरे दिन-बीच में 'आश्लेषा' नक्षत्र को पार कर, कुरुक्षेत्र पहुँची।" उक्त श्लोक का ऐसा अर्थ स्वीकार कर (तात्पर्य मानकर) मार्गशीर्ष शुक्ल ११ भरणी में युद्धारम्भ स्वीकार कर प्रस्तुत गणना—

i मार्गशीर्ष शुक्ल ११ भरणी–गीताजयन्ती-युद्धारम्भ
ii मार्गशीर्ष शुक्ल १२ कृत्तिका–द्वितीय युद्ध
iii मार्गशीर्ष शुक्ल १३ रोहिणी–तृतीय युद्ध
iv मार्गशीर्ष शुक्ल १४ मृगशिरा–चतुर्थ युद्ध
v मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा आर्द्रा–पञ्चम युद्ध
vi पौष कृष्ण १ पुनर्वसु–षष्ठ युद्ध
vii पौष कृष्ण २ पुष्य–सप्तम युद्ध
viii पौष कृष्ण ३ आश्लेषा–अष्टम युद्ध
ix पौष कृष्ण ४ मघा-नवम युद्ध
x पौष कृष्ण ५ पूर्वा फाल्गुनी–दशमयुद्ध-भीष्मपतन-शरशय्यालाभ
xi पौष कृष्ण ६ उत्तरा फाल्गुनी भीष्म-पतन के उपलक्ष्य में अवकाश
xii पौष कृष्ण ७ हस्त ,, ,, ,,
xiii पौष कृष्ण ८ चित्रा–एकादश-युद्ध
xiv पौष कृष्ण ९ स्वाति–द्वादश युद्ध-भगदत्त वध
xv पौष कृष्ण १० विशाखा–त्रयोदश युद्ध-अभिमन्युवध
xvi पौष कृष्ण ११ अनुराधा–चतुर्दश युद्ध-जयद्रथवध, रात्रि युद्ध में घटोत्कचवध
xvii पौष कृष्ण १२ ज्येष्ठा–पञ्चदश युद्ध-द्रोणाचार्यवध
xvii पौष कृष्ण १३ मूल–द्रोण निमित्तक अवकाश
xix पौष कृष्ण १४ पूर्वाषाढ़ा–षोडश युद्ध
xx पौष अमावास्या उत्तराषाढ़ा–सप्तदश युद्ध कर्णवध
xxi पौष शुक्ल १ श्रवण–अष्टादश युद्ध-शल्यवध, दुर्योधनवध, सौप्तिक संहार

× × × ×

विशेष (i)—मार्गशीर्ष कृष्ण ५ 'पुष्य' से पौष शुक्ल १ श्रवण में श्रीबलभद्र यात्राके कुल ४२ दिन; अतः 'चत्वारिंशदहान्यद्य द्वे च मे निःसृतस्य वै। पुष्येण संप्रयातोऽस्मि श्रवणे पुनरागतः॥"

यह वचन सर्वथा सार्थक है।

(ii) मार्गशीर्ष शुक्ल ११ युद्धारम्भ से उत्क्रमण दिन माघ शुक्ल ८ तक शरशय्या पर श्रीभीष्म पितामह के कुल ५८ दिन ; जिनमें प्रारम्भ के ९ दिन शरशय्या तुल्य और शेष ४९ दिन प्रत्यक्ष शरशय्या के ; अतः 'अष्टपञ्चाशतं रात्र्यः शयानस्याद्य मे गताः। शरेषु निशिताग्रेषु यथा वर्षशतं तथा ॥' (अनुशासन १६७.२७) भीष्मोक्त यह वचन प्रसङ्गानुसार सार्थक है।

(iii) भीष्म-निर्वाण सम्बन्धी वचनों से सन्तुलित भगवद्गीताजयन्ती सम्बन्धी वचनों की सार्थकता के अभिप्राय से उक्त गणना है। इसमें भीष्मोत्क्रान्ति सम्बन्धी शास्त्र सिद्ध और गीताजयन्ती सम्बन्धी परम्परा प्राप्त क्रमशः माघ शुक्ल अष्टमी और मार्गशीर्ष शुक्ल ११ दोनों तिथियों की सार्थकता है। एक्कीस दिनों में कुल १८ युद्ध के अभिप्राय से तीन अवकाश मानना अनिवार्य है। **'भीष्मद्रोणः प्रमुखतः'** (भीष्म० २५. २५.) **'कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च'** (भीष्म० २६. ४) इन वचनों से सिद्ध है कि भीष्म-द्रोण दोनों पक्षों के मान्य वीर थे ; साथ ही चौदहवें दिन रात्रियुद्ध में धर्मराज के प्रति श्रीव्यास जी ने यह भविष्यवाणी की कि **'पञ्चमे दिवसे तात पृथिवी ते भविष्यति'** (द्रोण० १८३. ६५) ; अतः द्रोणनिधन से गदायुद्ध पर्यन्त केवल एक अवकाश द्रोणनिधन के उपलक्ष्य में माना जा सकता है। शेष दो अवकाश भीष्मनिधन के उपलक्ष्य में मानकर उक्त गणना है।

(iv) भीष्मपतन और द्रोणोत्क्रमण के उपलक्ष्य में क्रमशः दो और एक अवकाश की उपयोगिता भी है। कारण यह है कि संजय राजा धृतराष्ट्र के पास घटना क्रम सुनाने हस्तिनापुर क्रमशः भीष्म पतन, द्रोणोत्क्रमण, क[illegible]न और युद्धान्तके बाद गये। भीष्म के नेतृत्वमें १०, द्रोणके नेतृत्व में [illegible]र्ण के नेतृत्व में २ युद्ध हुए। ऐसी स्थिति में भीष्म और द्रोण के [illegible] हुए क्रमशः १० और ५ दिनों की घटनाओं का विस्तृत वर्णन करने के लिये संजय को क्रमशः २ और १ दिन का समय भी चाहिये ही था।

॥ श्रीहरिः ॥

युद्ध-सारणी (३)

'यथा स भगवान् व्यासः कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत्।
तथैव सहिताः सर्वे समाजग्मुर्महीक्षितः ॥

"मघाविषयगः सोमस्तद्दिनं प्रत्यपद्यत।
दीप्यमानाश्च सम्पेतुर्दिवि सप्त महाग्रहाः॥"
(भीष्म० १७. १, २)

युद्धारम्भ और भीष्मपतन के प्रसंग में पठित क्रमशः दोनों वचन युद्धारम्भ और भीष्मपतन से सम्बन्धित होने से मघा में भीष्मपतन और उससे ९ दिन पूर्व अश्विनी में युद्धारम्भ सिद्ध होता है। ऐसी स्थिति में 'श्रवणे पुनरागतः' (शल्य ३४. ५, ६) इस श्रीबलभद्र वचन के अनुसार गदा युद्ध (युद्धान्त) के दिन श्रवण नक्षत्र सिद्ध करने के लिये और 'एवं तदभवद् युद्धमहान्यष्टादश प्रभो' (आश्व० ६०. ३५) के अनुसार १८ युद्ध सिद्ध करने के लिये मार्गशीर्ष शुक्ल ११ अश्विनी से पौष शुक्ल २ श्रवण पर्यन्त २२ दिनों में १० युद्ध और ४ अवकाश मानकर प्राप्त गणना इस प्रकार है—

i मार्गशीर्ष शुक्ल ११ अश्विनी—गीताजयन्ती-युद्धारम्भ
ii मार्गशीर्ष शुक्ल १२ भरणी—द्वितीय युद्ध
iii मार्गशीर्ष शुक्ल १३ कृत्तिका—तृतीय युद्ध
iv मार्गशीर्ष शुक्ल १४ रोहिणी—चतुर्थ युद्ध
v मार्गशीर्ष पूर्णिमा मृगशिरा—पञ्चम युद्ध
vi पौष कृष्ण १ आर्द्रा—षष्ठ युद्ध
vii पौष कृष्ण २ पुनर्वसु—सप्तम युद्ध
viii पौष कृष्ण ३ पुष्य—अष्टम युद्ध
ix पौष कृष्ण ४ आश्लेषा—नवम युद्ध-श्रीकृष्ण भीष्म को मारने के लिए उद्यत
x पौष कृष्ण ५ मघा—दशम-युद्ध-भीष्म पतन
xi पौष कृष्ण ६ पूर्वाफाल्गुनी—अवकाश
xii पौष कृष्ण ७ उत्तरा फाल्गुनी—अवकाश
xiii पौष कृष्ण ८ हस्त— ,,
xiv पौष कृष्ण ९ चित्रा—एकादश युद्ध
xv पौष कृष्ण १० स्वाति—द्वादश युद्ध
xvi पौष कृष्ण ११ विशाखा—त्रयोदश युद्ध-अभिमन्युवध
xvii पौष कृष्ण १२ अनुराधा—१४ वां युद्ध-जयद्रथवध, रात्रियुद्ध
xviii पौष कृष्ण १३ ज्येष्ठा—१५ वां युद्ध-द्रोणवध
xix पौष कृष्ण १४ मूल—अवकाश

xx पौष अमावास्या पूर्वाषाढ़ा–षोडश युद्ध

xxi पौष शुक्ल १ उत्तराषाढ़ा–सप्तदश युद्ध-कर्णवध

xxii पौष शुक्ल २ श्रवण–अष्टादश युद्ध–शल्यवध, दुर्योधनवध और सौप्तिक संहार

विशेष—i. इस गणना में त्रिभाग शेष रात्रि में चन्द्रोदय की दृष्टि से पौष कृष्ण १२ में १४ वें दिन का रात्रि युद्ध उपयुक्त है। पौष शुक्ल २ में श्रवण नक्षत्र का योग भी उत्तम ढंग से सध जाता है।

ii. श्रीबलदेव-यात्रा के ४२ दिन और श्रीभीष्मजी के ५८ दिन सारणी (२) के अनुसार ही चरितार्थ हैं।

iii. ध्यान रहे भरणी से श्रवण पर्यन्त २२ नक्षत्रों में मघा के बाद एक नक्षत्र का क्षय मानकर कुल २१ दिन सिद्ध होते हैं। ऐसी स्थिति में पूर्ववत् युद्धान्त पौष शुक्ल १ श्रवण में तथा भीष्म एवं द्रोण के उपलक्ष्य में कुल ३ अवकाश मान्य हैं।

११. काल गणना

"अनादिरेष भगवान् कालोऽनन्तोऽजरोऽमरः।
सर्वगतत्वात्स्वतन्त्रत्वात् सर्वात्मत्वान्महेश्वरः॥"
(कूर्म० पूर्वार्द्ध० ५. २४)

"कालः सृजति भूतानि कालः संहरति (ते) प्रजाः।
सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्यचिद् वशः (शे)॥"
(कूर्म पूर्वार्द्ध १२ १७ ; उत्तरार्द्ध ३. १६)

कलनात्मिका शक्त्यवच्छिन्न चेतन 'काल' है—

काल: कलयतामहम्" (भगवद्गीता १०.३०)

) जगत् का निमित्तकारण परमात्मा 'काल' है—

'कालश्च हेतुश्च' (भाग० ११. २८. १८), 'कालः' कलयति प्रकाशयति यः तथा 'हेतुः' कारणं च यत् तदेव। उपादानकारणं, निमित्तं प्रकाशकं च ब्रह्म' (श्रीधर स्वामिपाद)।

(३) समस्त कार्यों के निमित्तकारण ईश्वर के अतिरिक्त दिक् और काल पृथक् द्रव्य नहीं—

'दिक्कालयोरीश्वरेण गतार्थता'

(द्रष्टव्य—न्यायभूषणकार का मत)

(४) आकाशातिरिक्त दिक् नहीं और ईश्वरातिरिक्त काल नहीं अतिरिक्त है तो उपाधि विशेष प्रवृत्ति निमित्तक ही--

"आकाशातिरिक्ता च दिङ् नास्त्येव, कालश्च नेश्वरादतिरिच्यते, अतिरेके वा दिक्कालशब्दावप्युपाधिविशेष--प्रवृत्तिनिमित्तकाविति" (मधुसूदनी, गीता १३. १२)

(५) क्षोभ कालकृत, परिणाम स्वभावकृत और जन्म कर्मकृत है--

कालाद् गुणव्यतिकरः परिणामः स्वभावतः।
कर्मणो जन्म महतः पुरुषाधिष्ठितादभूत्॥

(भागवत २. ५. २२)

प्रकृतेर्गुणसाम्यस्य निर्विशेषस्य मानवि।
चेष्टा यतः स भगवान् काल इत्युपलक्षितः॥

(भागवत ३. २६. १७)

(६) 'काल' पुरुष का प्रभाव अर्थात् ईश्वर की वह भयदायिनी संहारकारिणी शक्ति है जिससे बहिर्मुख जीव को निरन्तर भय लगा रहता है--

प्रभावं पौरुषं प्राहुः कालमेके यतो भयम्।
अहङ्कारविमूढस्य कर्तुः प्रकृतिमीयुषः॥

(भागवत ३. २६. १६)

(७) 'दिशा' का प्रदेश में और 'काल' का 'क्षणरूप' उपाधि में होता है। यह सांख्यों की प्रक्रिया है।

(८) सर्वगत परम महत्परिमाणपरिमितजन्यों का जनक (उत्पन्न होने वाले समस्त कार्यों का निमित्त कारण) एक होते हुए भी उपाधिभेद से अनेक जगदाश्रय द्रव्य 'काल' है--

कालखात्मदिशां सर्वगतत्वं परमं महत्।

(कारिकावली १. २५३)

जन्यानांजनकः कालो जगतामाश्रयो मतः ॥
(कारिकावली १. ४५)

परापरत्व धीहेतुः क्षणादिः स्यादुपाधितः ।
(कारिकावली १. ४५½)

(९) भाट्ट मीमांसकों के अनुसार 'प्रातः कालोऽयम्' इत्यादि प्रत्यय सिद्ध षडिन्द्रिय ग्राह्य प्रत्यक्ष, एक एवं विभु होते हुए भी औपाधिक क्षणादि व्यवहारवान् द्रव्य 'काल' है—

'दिक्कालाकाशाः प्रत्यक्षाः अमनस्त्वे सति विभुत्वाद् आत्मवत्,' 'यदि कालो न प्रत्यक्षः स्यात् न स्यादेव' (नीतितत्त्वाविर्भाव) ; 'कालस्यापि विभुत्वेऽप्युपाधिवशादौपाधिको भेदव्यवहारोऽस्ति' (मानमेयोदय) ।

(१०) प्रधान और पुरुष का संयोजक 'काल' है—

प्रधानं पुरुषञ्चैव तत्त्वद्वयमुदाहृतम् ।
तयोरनादिर्निर्दिष्टः कालः संयोजकः परः ॥
त्रयमेतदनाद्यन्तमव्यक्ते समवस्थितम् ॥
(अद्भुत रामायण सर्ग १२. ८, ९)

(११) माया और आत्मा का सम्बन्ध 'काल' है—

'कालोमायात्मसंबन्धः'
(सूत्रसंहिता २ ज्ञानयोग खण्ड २. १०)

अठारह पल की एक काष्ठा, ३० काष्ठा की एक कला, ३० कला का एक मुहूर्त्त और ३० मुहूर्त्त का एक दिन होता है। इस तरह १ पल=६० वि[illegible]४ सेकेण्ड, २½ पल=१ मिनट, ३० पल=१२ मिनट, २४ मिनट [illegible]२ घड़ी=१ मुहूर्त्त या ४८ मिनट, २½ घड़ी=१ घण्टा, ६० [illegible]टा या १ दिन। मनुष्यों और देवताओं के रात्रि-दिवस की [illegible] सूर्य के कारण होती है। सब जीवधारियों के विश्राम का हेतु रात्रि और कार्य का हेतु दिवस है। मनुष्यों के एक मास के तुल्य पितरों का एक दिन होता है। इससे कृष्णपक्ष उनके कार्य करनेका हेतु दिन है और शुक्लपक्ष सोने का हेतु रात्रि। मनुष्यों के एक वर्ष के तुल्य देवताओं का एक रात्रि-दिन होता है। जब तक सूर्य उत्तरायण रहते हैं, तबतक दिन होता है और जब तक सूर्य दक्षिणायन रहते हैं, तब तक रात्रि होती है। देवताओं के

चार-सहस्र वर्ष का सत्य-युग होता है। युगके प्रथम चारसौ वर्ष देवताओं की सन्ध्या कहलाती है और युग का अन्त होने पर उतना ही सन्ध्यांश कहलाता है। त्रेता, द्वापर, कलियुग की सन्ध्या और सन्ध्यांश की संख्या एक हजार और एक सौ वर्ष के घटाने से होती है। चार युगों की संख्या का बारह सहस्र गुणा अधिक देवताओं का युग होता है। देवताओं के सहस्रयुग के तुल्य ब्रह्माजी का एक दिन होता है और उतनी ही रात्रि होती है। ब्रह्मा के सहस्र युग के तुल्य परब्रह्म का एक दिन होता है। वह दिन बड़ा पवित्र है। उतनी ही बड़ी परब्रह्म की रात्रि भी होतो है। इसे दिन-रात के ज्ञाताओं ने कहा है (मनुस्मृति १।६४–७३)।

ब्रह्मा के एक दिन में १४ मनु होते हैं। प्रत्येक मनु के अधिकार काल को 'मन्वन्तर' कहते हैं। इकहत्तर चतुर्युगी से कुछ अधिक काल का एक मन्वन्तर होता है। मानवी वर्ष गणना के हिसाब से एक मन्वन्तर तीस करोड़ सड़सठ लाख बीस हजार वर्षों का होता है। दिव्यवर्ष गणना के हिसाब से आठ लाख बावन हजार वर्ष से कुछ अधिक काल का होता है। (विष्णुपुराण १।३)।

सौरमान से ४३, २०, ००० वर्ष की अथवा देवमान से १२, ००० वर्ष की एक चतुर्युगी होती है। इसी को 'महायुग' कहते हैं। ऐसे इकहत्तर युगों का एक मन्वन्तर होता है। प्रत्येक मन्वन्तर के अन्त में सत्ययुग के मान की अर्थात् १७, २८, ००० वर्ष की संध्या होती है। इस तरह एक कल्प के १४ मनुओं के ७१ चतुर्युगी के अतिरिक्त सत्ययुग के मानकी १५ सन्ध्याएँ होती हैं। ७१ महायुगों के मान से १४ मनुओं में ९९४ महायुग होते हैं। सत्ययुग के मानकी १५ संध्याएँ होती हैं। ७१ महायुगों के मानसे १४ [illegible]ों में ९९४ महायुग होते हैं और सत्ययुग के मानकी १५ संख्याओं [illegible] ६ महायुगों के समान हो जाता है। दोनों का योग मिलाने पर [illegible] महायुग या दिव्य युग बीत जाते हैं।

उपर्युक्त तथ्य का दिग्दर्शन इस प्रकार है—

	सौरमान या मानववर्ष	देवमान या दिव्यवर्ष
• एक चतुर्युगी (महायुग, दिव्ययुग)	४३, २०, ०००	१२, ०००
• इकहत्तर चतुर्युगी	३०, ६७, २०, ०००	८, ५२, ०००

• कल्प की सन्धि	१७, २८, ०००	४, ८००
• मन्वन्तर की १४ सन्ध्या	२, ४१, ९२, ०००	६७, २००
• सन्धिसहित एक मन्वन्तर	३०, ८४, ४८, ०००	८, ५६, ८००
• १४ सन्ध्या सहित १४ मन्वन्तर	४, ३१, ८२, ७२, ०००	१, १९, ९५, २००
• कल्प की सन्धि सहित १४ मन्वन्तर या एक कल्प	४, ३२, ००, ००, ०००	१, २०, ००, ०००

सत्ययुग काल

४००० × ३६० = १४४०००० वर्ष
सन्धि ४०० × ३६० = १४४००० वर्ष
सन्ध्यांश ४०० × ३६० = १४४००० वर्ष

योग १७, २८, ००० वर्ष

त्रेताकाल ३००० × ३६० = १०८०००० वर्ष
सन्धि ३०० × ३६० = १०८००० वर्ष
सन्ध्यांश ३०० × ३६० = १०८००० वर्ष

योग १२, ९३, ००० वर्ष

...ल २००० × ३६० = ७२०००० वर्ष
...न्ध २०० × ३६० = ७२००० वर्ष
सन्ध्यांश २०० × ३६० = ७२००० वर्ष

योग ८, ६४, ००० वर्ष

कलियुग का काल १००० × ३६० = ३६०००० वर्ष
सन्धि १०० × ३६० = ३६००० वर्ष

सन्ध्यांश   १००×३६०= ३६००० बर्ष

योग   ४, ३२, ०८० वर्ष

चतुर्युगीकाल   ४३, २०, ००० वर्ष

ब्राह्मदिन   ४३, २०, ०००×१०००=४, ३२, ००, ००, ००० वर्ष
ब्राह्म अहोरात्र ४, ३२, ००, ००, ०००×२=८, ६४, ००, ००, ००० वर्ष
ब्राह्म वर्ष ८, ६४, ००, ००, ०००×३६०=३१,१०,४०,००,००,००० वर्ष
ब्राह्म आयु ३१,१०,४०,००,००,०००×१००=३१,१०,४०,००,००,००,००० वर्ष

ब्रह्मा जी का दिन ही कल्प है, इतनो ही बड़ी उनकी रात्रि है। इस अहोरात्र के मानसे ब्रह्माजी की परमायु एक सौ वर्ष है। इसे पर' कहते हैं। इस समय ब्रह्माजी अपनी आयु का आधा भाग अर्थात् एक परार्द्ध बिताकर दूसरे परार्द्ध में चल रहे हैं। यह उनके ५१ वें वर्ष का प्रथम दिन या कल्प है। वर्तमान कल्पके आरम्भसे अबतक स्वायम्भुव आदि छः मन्वन्तर अपनी-अपनी संख्याओं के सहित बीत चुके हैं, कल्प की सन्ध्या समेत सात संध्याएं वीत चुकी हैं। वर्तमान सातवें वैवस्वत मन्वन्तर के २७ चतुर्युग बीत चुके हैं। इस समय अट्ठाईसवें चतुर्युग के कलियुग का सन्ध्या काल चल रहा है (सूर्यसिद्धान्त, मध्यमाधिकार श्लोक १५से २४ द्रष्टव्य)।

इस संवत् २०४१ विक्रम तक कलियुग के ५०८५ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। कलियुग के प्रारम्भ में ३६,००० वर्ष सन्ध्याकाल का मान होता [illegible] रीति से अभी तक कलियुग की सन्ध्या के ३०, ९१५ वर्ष (३[illegible] ०८५) वीतना शेष है।

ब्रह्माजी की पूर्णायु अर्थात् पारिभाषिक द्विपरार्द्ध की ग[illegible] प्रकार है—

४ लाख, ३२ हजार वर्ष का कलियुग होता है। उससे दुगुना द्वापर तिगुना त्रेता और चौगुना सत्ययुग होता है। अर्थात् कलियुग से १+२+३+४=१० गुणा अधिक वर्षों का एक चतुर्युग होता है। ऐसे हजार चतुर्युग का ब्रह्मा का एक दिन और इतने परिमाण की रात्रि मान्य है। ऐसे ३६० दिन का एक वर्ष और १०० वर्ष की पूर्णायु मान्य है।

४३२००० × १० × १००० × २ × ३६० × १००
= ४३२ × २ × ३६ × १ दश शून्य
= ८६४ × ३६ × १ दश शून्य
= ३११०४ × १ दश शून्य
= ३१ नील, १० खरब, ४० अरब वर्ष की श्रीब्रह्माजी की पूर्णायु।
(३६५ दिनों का वर्ष मानकर
४३२ × २ × ३६५ × १ नौ शून्य
= ३१ नील, ५३ खरब, ६० अरब वर्ष की श्रीब्रह्माजी की पूर्णायु।)

ध्यान रहे, ब्रह्माजी की द्विपरार्द्ध की आयु पूर्वोक्त रीति से पारिभाषिक है। संख्या सन्दर्भ में चरम (अन्तिम) संख्या को परार्द्ध कहते हैं, जो कि ब्रह्माजी की आयु की अपेक्षा बहुत अधिक है।

एकं दश शतं चैव सहस्रायुतलक्षकम्॥
प्रयुतं कोटिसंज्ञां चार्बुदमब्जं च खर्बकम्।
निखर्वं च महापद्मं शंकुर्जलधिरेव च॥
अन्त्यं मध्यं परार्द्धं च संज्ञा दशगुणोत्तराः।
क्रमादुत्क्रमतो वापि योगः कार्योऽन्तरं तथा॥
(वृहन्नारदीयपुराण २. ५४. १२-१४)

i	एक	(एक)	१
ii	दश	(दस)	१ एक शून्य
[illegible]	[illegible]त	(सौ)	१ दो शून्य
[illegible]	[illegible]स्र	(हजार)	१ तीन शून्य
[illegible]	[illegible]	(दस हजार)	१ चार शून्य
[illegible]	[illegible]	(लाख)	१ पाँच शून्य
[illegible]	[illegible]युत	(दस लाख)	१ छह शून्य
viii	कोटि	(करोड़)	१ सात शून्य
ix	अर्बुद	(दस करोड़)	१ आठ शून्य
x	अब्ज	(अरब)	१ नौ शून्य
xi	खर्व	(दस अरब)	१ दस शून्य
xii	निखर्व	(खर्व)	१ ग्यारह शून्य
xiii	महापद्म	(दस-खर्व)	१ बारह शून्य

xiv	शंकु	(नील)	१ तेरह शून्य
xv	जलधि	(दस-नील)	१ चौदह शून्य
xvi	अन्त्य	(पद्म)	१ पन्द्रह शून्य
xvii	मध्य	(दस-पद्म)	१ सोलह शून्य
xviii	परार्द्ध	(शङ्ख)	१ सत्रह शून्य

उपर्युक्त रीति से '५५ नील ; ५५ खरब, २० अरब' वर्षों की प्रथम परार्द्ध संख्या और '३१ नील, १० खरब, ४० अरब' वर्षों की द्वितीय परार्द्ध संख्या का अन्तर्भाव 'xv जलधि' (दस-नील) नामक संख्या में हो जाता है। जलधि के आगे अन्त्य (पद्म) पुनः मध्य (दस-पद्म) और परार्द्ध (शङ्ख) है। संस्कृत में जिसे 'परार्द्ध' कहते हैं, हिन्दी में उसे 'शङ्ख' कहते हैं। ब्रह्माजी की द्विपरार्द्ध-आयु का समावेश जलधि' नामक संख्या में अर्थात् हिन्दी की 'दस-नील' नामक संख्या में हो जाता है।

"कालसंख्या समासेन परार्द्धद्वयकल्पिता ॥
स एव स्यात्परः कालस्तदन्ते सृज्यते पुनः।
निजेन तस्य मानेन चायुर्वर्षशतं स्मृतम् ॥
तत्परार्द्धं तदर्द्धं वा परार्द्धमभिधीयते।"
(कूर्म० पूर्वार्द्ध ५. ४-५३)

"ब्राह्ममेकमहः कल्पस्तावती रात्रिरिष्यते ॥
चतुर्युग सहस्रं तु कल्पमाहुर्मनीषिणः।
त्रीणिकल्पशतानि स्युस्तथाषष्टिर्द्विजोत्तमाः ॥
ब्रह्मणो वत्सरस्तज्ज्ञैः कथितो वै द्विजोत्तमाः।
स च कालः शतगुणः परार्द्धं चैव तद्विदुः।
तस्यान्ते सर्वसत्त्वानां सहेतौप्रकृतौ लयः।
तेनायं प्रोच्यते सद्भिः प्राकृतः प्रतिसञ्चरः ॥"
(कूर्म० पूर्वार्द्ध ५. १७-२०)

"एकमत्रव्यतीतं तु परार्द्धं ब्रह्मणो द्विजाः।
साम्प्रतं वर्त्ततित्वर्द्धं तस्य कल्पोऽयमग्रजः ॥
योऽतीतः सोऽन्तिमः कल्पः पाद्म इत्युच्यते बुधैः।
वाराहो वर्त्तते कल्पस्तस्य वक्ष्यामि विस्तरम् ॥"
(कूर्म० पू० ५. २५, २६)

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥ श्रीहनुमते नमः ॥
श्रीरामश्शरणं समस्तजगतां रामं विना का गती
रामेण प्रतिहन्यते कलिमलं रामाय कार्यं नमः।
रामात्तृप्यति कालभीमभुजगो रामस्य सर्वं वशे
रामे भक्तिरखण्डिता भवतु मे राम त्वमेवाश्रयः ॥१॥
मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीय गुणात्मने।
चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ॥२॥
जयति रघुवंशतिलकः कौसल्यानन्दवर्द्धनो रामः।
दशवदननिधनकारी दाशरथिः पुण्डरीकाक्षः ॥३॥
नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः ॥४॥
रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥५॥
वन्दे विदेहतनयापदपुण्डरीकं कैशोरसौभगसमाहृतयोगिचित्तम्।
हन्तुं त्रितापमनिशं मुनिहंससेव्यं सन्मानसालिपरिपीत परागपुञ्जम् ॥६॥
मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥७॥
आञ्जनेयमतिपाटलाननं काञ्चनाद्रिकमनीय विग्रहम्।
पारिजाततरुमूलवासिज भावयामि पवमाननन्दनम् ॥८॥
यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
[illegible]ष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम् ॥९॥
[illegible]तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
[illegible] कविताशाखां वन्दे वाल्मीकि कोकिलम् ॥१०
[illegible]र्धे परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
[illegible]: प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना ॥११॥[२९]

२९—स्कन्दपुराण उत्तर खण्ड रामायण माहात्म्य, अद्भुत रामायण, अगस्त्य संहिता, रामायणपठनोपक्रम, तिलकाख्या टीका और लवकुश-मङ्गलस्तव के अनुसार प्रस्तुत मङ्गलाचरण है।

१२. श्रीरामायण-काल-मीमांसा

श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीति साहस्रयां संहितायां तृतीये ब्रह्मखण्डे पूर्वभागे धर्मारण्यमाहात्म्ये रामचरित्रवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ।

व्यास उवाच

पुरा त्रेतायुगे प्राप्ते वैष्णवांशो रघूद्वहः ।
सूर्यवंशे समुत्पन्नो [३०] रामो राजीवलोचनः ॥१॥
स रामोलक्ष्मणश्चैवकाकपक्षधरावुभौ ।
तातस्य वचनात्तौ तु विश्वामित्रमनुव्रतौ ॥२॥
यज्ञसंरक्षणार्थाय राज्ञादत्तौ कुमारकौ ।
धनुःशरधरौवीरौ पितुर्वचनपालकौ ॥३॥
पथि प्रव्रजतो यावत्ताडकानामराक्षसी ।
तावदागम्य पुरतस्तस्थौ वै विघ्नकारणात् ॥४॥
ऋषेरनुज्ञया रामस्ताडकां समघातयत् ।
प्रादिशच्च धनुर्वेदविद्यां रामाय गाधिजः ॥५॥
तस्यपादतलस्पर्शाच्छिलावासवयोगतः ।
अहल्यागौतमवधूः पुनर्जातास्वरूपिणी ॥६॥
विश्वामित्रस्य यज्ञे तु सम्प्रवृत्तेरधूत्तमः ।
मारीचं च सुबाहुं च जघान परमेषुभिः ॥७॥
ईश्वरस्य धनुर्भग्नञ्जनकस्य गृहे स्थितम् ।
रामः पञ्चदशे वर्षे षड्वर्षांचैवमैथिलीम् ॥८॥
उपयेमे यदा राजन्रम्यां सीतामयोनिजाम् ।
कृतकृत्यस्तदाजातः सीतां सम्प्राप्य राघवः ॥९॥
अयोध्यामगमन्मार्गे जामदग्न्यमवेक्ष्य च ।
संग्रामोऽभूत्तदाराजन्देवानामपि दुःसहः ॥१०
ततो रामं पराजित्य सीतयागृहमागतः ।
ततो द्वादशवर्षाणिरेमे रामस्तयासह ॥११॥

३०—रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ।
अन्तरात्मस्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते ॥
(स्कन्द० ३ ब्रह्म० २४. ४६)

सप्तविंशतिमे वर्षे यौवराज्यप्रदायकम् ।
राजानमथ कैकेयी वरद्वयमयाचत ॥१२॥
तयोरेकेन रामस्तु ससीतः सहलक्ष्मणः ।
जटाधरः प्रव्रजतां वर्षाणीह चतुर्दश ॥१३॥
भरतस्तु द्वितीयेन यौवराज्याधिपोऽस्तुमे ।
मन्थरावचनान्मूढ़ा वरमेतमयाचत ॥१४॥
जानकीलक्ष्मणसखं रामं प्राव्राजयन्नृपः ।
त्रिरात्रमुदकाहारश्चतुर्थेऽह्न फलाशनः ॥१५॥
पञ्चमे चित्रकूटे तु रामो वासमकल्पयत् ।
तदा दशरथः स्वर्गं गतो राम इति ब्रुवन् ॥१६॥
ब्रह्मशापं तु सफलं कृत्वा स्वर्गं जगाम सः ।
ततो भरतशत्रुघ्नौ चित्रकूटे समागतौ ॥१७॥
स्वर्गतं पितरं राजन्रामाय विनिवेद्य च ।
सांत्वनं भरतस्यास्य कृत्वा निर्वर्तनं प्रति ॥१८॥
ततो भरतशत्रुघ्नौ नन्दिग्रामं समागतौ ।
पादुकापूजनरतौ तत्र राज्यधरावुभौ ॥१९॥
अत्रिं दृष्ट्वा महात्मानं दण्डकारण्य मागमत् ।
रक्षोगणवधारम्भे विरोधे विनिपातिते ॥२०॥
अर्द्धत्रयोदशे वर्षे पञ्चवट्यामुवास ह ।
ततो विरूपयामास शूर्पणखां निशाचरीम् ॥२१॥
वने विचरतस्तस्य जानकीसहितस्य च ।
आगतो राक्षसो घोरः सीतापहरणाय सः ॥२२॥
ततो माघसिताष्टम्यां मुहूर्ते वृन्दसञ्ज्ञके ।
राघवाभ्यां विना सीतां जहार दशकन्धरः ॥२३॥
मारीचस्याश्रमं गत्वा मृगरूपेण तेन च ।
नीत्वा दूरं राघवं च लक्ष्मणेन समन्वितम् ॥२४॥
ततो रामो जघानाशु मारीचं मृगरूपिणम् ।
पुनः प्राप्याश्रमं रामो विना सीतां ददर्श ह ॥२५॥
तत्रैव ह्रियमाणा सा चक्रन्द कुररी यथा ।
रामरामेति मां रक्ष रक्ष मां रक्षसा हृताम् ॥२६॥
यथा श्येनः क्षुधायुक्तः क्रन्दन्तीं वर्तिकां नयेत् ।
तथा कामवशं प्राप्तो राक्षसो जनकात्मजाम् ॥२७॥

जयत्येष जनकजां तच्छ्रुत्वा पक्षिराट् तदा ।
युयुधे राक्षसेन्द्रेण रावणेन हतोऽपतत् ।।२८।।
माघासितानवम्यां तु वसन्तीं रावणालये ।
मार्गमाणौ तदा तौ तु भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।।२९।।
जटायुषं तु दृष्ट्वैव ज्ञात्वा राक्षससंहृताम् ।
सीतां ज्ञात्वा ततः पक्षी संस्कृतस्तेन भक्तितः ।।३०।।
अग्रतः प्रययौ रामो लक्ष्मणस्तत्पदानुगः ।
पम्पाभ्याशमनुप्राप्य शबरीमनुगृह्य च । ३१।।
तज्जल समुपस्पृश्य हनुमद्दर्शन कृतम् ।
ततो रामो हनुमता सह सख्यं चकार ह ।।३२।।
ततः सुग्रीवमभ्येत्य अहनद् बालिवानरम् ।
प्रेषिता रामदेवेन हनुमत्प्रमुखाः प्रियाम् ।।३३।।
अंगुलीयकमादाय वायुसूनुस्तदा गतः ।
सम्पातिर्दशमे मासि आचख्यौ वानरायताम् ।।३४।।
ततस्तद्वचनादब्धिं पुप्लुवे शतयोजनम् ।
हनुमान्निशि तस्यां तु लङ्कायां परितोऽचिनोत्।।३५।।
तद्रात्रिशेषे सीताया दर्शनं तु हनूमतः ।
द्वादश्यां शिंशपावृक्षे हनुमान्पर्यवस्थितः ।।३६।।
तस्यां निशायां जानक्या विश्वासायाऽऽह संकथाम् ।
अक्षादिभिस्त्रयं दश्यां ततो युद्धमवर्त्तत ।।३७।।
ब्रह्मास्त्रेण त्रयोदश्यां बद्धः शक्रजिता कपिः ।
दारुणानि च रूक्षाणि वाक्यानि राक्षसाधिपम् ।।३८।।
अब्रवीद्वायुसूनुस्तं बद्धो ब्रह्मास्त्रसंयुतः ।
वह्निना पुच्छयुक्तेन लंकाया दहनं कृतम् ।।३९।।
पूर्णिमायां महेन्द्राद्रौ पुनरागमनं कपेः ।
मार्गशीर्षप्रतिपदः पञ्चभिः पथि वासरैः ।।४०।।
पुनरागत्य वर्षेऽह्नि ध्वस्तं मधुवनं किल ।
सप्तम्यां प्रत्यभिज्ञानदानं सर्वंनिवेदनम् ।।४१।।
मणिप्रदानं सीताया सर्वं रामाय शंसयत् ।
अष्टम्युत्तरफाल्गुन्यां मुहूर्ते विजयाभिधे ।।४२।।
मध्यं प्राप्ते सहस्रांशौ प्रस्थानं राघवस्य च ।
रामः कृत्वा प्रतिज्ञां हि प्रयातुं दक्षिणां दिशम्। ४३।।

तीर्त्वाहं सागरमपि हनिष्ये राक्षसेश्वरम् ।
दक्षिणाशां प्रयातस्य सुग्रीवोऽथाभवत्सखा ॥४४॥
वासरैः सप्तभिः सिन्धोस्तीरे सैन्यनिवेशनम् ।
पौष शुक्लप्रतिपदस्तृतीयां यावदम्बुधौ ॥४५॥
उपस्थानं ससैन्यस्य राघवस्य बभूव ह ।
विभीषणश्चतुर्थ्यां तु रामेण सह संगतः ॥४६॥
समुद्रतरणार्थाय पञ्चम्यां मन्त्र उद्यतः ।
प्रायोपवेशनं चक्रे रामो दिनचतुष्टयम् ॥
समुद्राद्वरलाभश्च सहोपायप्रदर्शनः ॥४७॥
सेतोर्दशम्यामारम्भस्त्रयोदश्यां समापनम् ।
चतुर्दश्यां सुवेलाद्रौ रामः सेनां न्यवेशयत् ॥४८॥
पूर्णमास्या द्वितीयायां त्रिदिनैः सैन्य तारणम् ।
तीर्त्वा तोयनिधिं रामः शूरवानरसैन्यवान् ॥४९॥
रुरोध च पुरीं लङ्कां सीतार्थं शुभलक्षणः ।
तृतीयादि दशम्यन्तं निवेशश्च दिनाष्टकः ॥५०॥
शुकसारणयोस्तत्र प्राप्तिरेकादशीदिने ।
पौषासिते च द्वादश्यां सैन्यसंख्यानमेव च ॥५१॥
शार्दूलेन कपीन्द्राणां सारासारोपवर्णनम् ।
त्रयोदश्याद्यमान्ते च लङ्कायांदिवसैस्त्रिभिः ॥५२॥
रावणः सैन्यसङ्ख्यानं रणोत्साहं तदाऽकरोत् ।
प्रययावङ्गदो दौत्ये माघशुक्लाद्यवासरे ॥५३॥
सीतायाश्च तदा भर्तुर्मायामूर्धादिदर्शनम् ।
माघशुक्लद्वितीयायां दिनैः सप्तभिरष्टमीम् ॥५४॥
रक्षसां वानराणाञ्च युद्धमासीच्च संकुलम् ।
माघशुक्लनवम्यां तु रात्राविन्द्रजितारणे ॥५५॥
रामलक्ष्मणयोर्नागपाशबन्धः कृतः किल ।
आकुलेषु कपीशेषु हताशेषु च सर्वशः ॥५६॥
वायूपदेशाद् गरुडं सस्मार राघवस्तदा ।
नागपाशविमोक्षार्थं दशम्यां गरुडोऽभ्यगात् ॥५७
अवहारो माघशुक्लस्यैकादश्या दिनद्वयम् ।
द्वादश्यामाञ्जनेयेन धूम्राक्षस्य वधः कृतः ॥५८॥

त्रयोदश्यां तु तेनैव निहतोऽकम्पनो रणे।
मायासीतां दर्शयित्वा रामाय दशकन्धरः ॥५९॥
त्रासयामास च तदा सर्वान्सैन्यगतानपि।
माघशुक्लचतुर्दश्या यावत्कृष्णादिवासरम् ॥६०॥
त्रिदिनेन प्रहस्तस्य नीलेन विहितो वधः।
माघकृष्णद्वितीयायाश्चतुर्थ्यन्तं त्रिभिर्दिनैः ॥६१॥
रामेण तुमुले युद्धे रावणोद्रावितो रणात्।
पञ्चम्या अष्टमी यावद्रावणेन प्रबोधितः ॥६२॥
*कुम्भकर्णस्तद्राचक्रेऽभ्यवहारं चतुर्दिनम्।
कुम्भकर्णोकरोद्युद्धं नवम्यादि चतुर्दिनैः ॥६३॥
*रामेण निहतो युद्धे बहुवानरभक्षकः।
अमावास्यादिने शोकाऽभ्यवहारो बभूव ह ॥६४॥
फाल्गुनप्रतिपदादौ चतुर्थ्यन्तैश्चतुर्दिनैः।
नरकान्तकप्रभृतयो निहताः पञ्चराक्षसाः ॥६५॥
पञ्चम्याः सप्तमीं यावदतिकायवधस्त्र्यहात्।
अष्टम्या द्वादशीं यावन्निहतौ दिनपञ्चकात् ॥६६॥
निकुम्भकुम्भौ द्वावेतौ मकराक्षश्चतुर्दिनैः।
फाल्गुनासितद्वितीयादिने वै शक्रजिज्जितः ॥६७॥
तृतीयादौ सप्तम्यन्ते दिनपञ्चकमेव च।
ओषध्यानयवैग्रचादवहारो बभूव ह ॥६८॥
अष्टम्यां रावणो मायामैथिलीं हतवान्कुधीः।
शोकावेगात्तदा रामश्चक्रे सैन्यावधारणम् ॥६९॥
ततस्त्रयोदशीं यावद्दिनैः पञ्चभिरिन्द्रजित्।
लक्ष्मणेन हतो युद्धे विख्यातबलपौरुषः ॥७०॥
चतुर्दश्यां दशग्रीवो दीक्षामापावहारतः।
अमावास्यादिने प्रागाद्युद्धाय दशकन्धरः ॥७१॥
चैत्रशुक्लप्रतिपदः पञ्चमी दिनपञ्चके।
रावणो युध्यमानोऽभूत्प्रचुरो रक्षसां वधः ॥७२॥
चैत्रं शुक्लाष्टमीं यावत्स्यन्दनाश्वादिसूदनम्।
चैत्रशुक्लनवम्यां तु सौमित्रे शक्तिभेदने ॥७३॥
कोपाविष्टेन रामेण द्रावितो दशकन्धरः।
विभीषणोपदेशेन हनुमद्युद्धमेव च ॥७४॥

द्रोणाद्रेरोषधीं नेतुं लक्ष्मणार्थमुपागतः।
विशल्यां तु समादाय लक्ष्मणं तामपाययत् ॥७५॥
दशम्यामवहारोऽभूद्रात्रौ युद्धं तु रक्षसाम्।
एकादश्यां तु रामाय रथो मातलिसारथिः ॥७६॥
प्राप्तो युद्धाय द्वादश्या यावत्कृष्णां चतुर्दशीम्।
अष्टादशदिनै रामो रावणं द्वैरथेऽवधीत् ॥७७॥
संस्कारा रावणादीनाममावास्यादिनेऽभवन्।
सङ्ग्रामे तुमुले जाते रामो जयमवाप्तवान् ॥७८॥
* माघशुक्लद्वितीयादि चैत्रकृष्णचतुर्दशीम्।
सप्ताशीतिदिनान्येवं मध्ये पञ्चदशाहकम् ॥७९॥
* युद्धावहारः सङ्ग्रामो द्वासप्ततिदिनान्यभूत्।
वैशाखादितिथौ राम उवास रणभूमिषु।
अभिषिक्तो द्वितीयायां लङ्काराज्ये विभीषणः ॥८०॥
सीताशुद्धिस्तृतीयायां देवेभ्यो वरलम्भनम्।
दशरथस्यागमनं तत्र चैवानुमोदनम् ॥८१॥
हत्वा त्वरेण लंकेशं लक्ष्मणस्याग्रजो विभुः।
गृहीत्वा जानकीं पुण्यां दुःखितां राक्षसेन तु ॥८२॥
आदाय परमा प्रीत्या जानकीं सभ्यवर्तत।
*वैशाखस्य चतुर्थ्यान्तु रामः पुष्पकमाश्रितः ॥८३॥
विहायसान्निवृत्तस्तु भूयोऽयोध्यां पुरीं प्रति।
पूर्णे चतुर्दशेवर्षे पञ्चम्यां माधवस्य च ॥८४॥
भारद्वाजाश्रमे रामः सगणः समुपाविशत्।
नन्दिग्रामे तु षष्ठ्यां स पुष्पकेण समागतः ॥८५॥
सप्तम्यामभिषिक्तोऽसावयोध्यायां रघूद्वहः।
दशाहाधिकमासांश्च चतुर्दश हि मैथिली ॥८६॥
उवास रामरहिता रावणस्य निवेशने।
द्वाचत्वारिंशके वर्षे रामोराज्यमकारयत् ॥८७॥
सीतायास्तु त्रयस्त्रिंशद्वर्षाणि तु तदाभवन्।
स चतुर्दशवर्षान्ते प्रविष्टः स्वां पुरीं प्रभुः ॥८८॥
अयोध्यां नाम मुदितो रामो रावणदर्पहा।
भ्रातृभिः सहितस्तत्र रामो राज्यमकारयत् ॥८९॥

*दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
रामो राज्यं पालयित्वा जगाम त्रिदिवालयम् ॥९०॥
रामराज्ये तदा लोका हर्ष-निर्भरमानसाः।
बभूवुर्धनधान्याढ्याः पुत्रपौत्रयुता नराः ॥९१॥
कामवर्षी च पर्जन्यः सस्यानि गुणवन्ति च।
गावस्तु घटोदोह्न्यः पादपाश्च सदा-फलाः ॥९२॥
नाधयो व्याधयश्चैव रामराज्ये नराधिप।
नार्यः पतिव्रताश्चासन् पितृभक्ति परा नराः ॥९३॥
द्विजा वेदपरा नित्यं क्षत्रिया द्विजसेविनः।
कुर्वंते वैश्यवर्णाश्च भक्ति द्विजगवां सदा ॥९४॥
न योनिसङ्करश्चासीत्तत्र नाचारसङ्करः।
न वन्ध्या दुर्भगा नारी काकबन्ध्या मृतप्रजा ॥९५॥
विधवा नैव काप्यासील्लप्स्यते न सभर्तृका।
नावज्ञां कुर्वते केपि मातापित्रोर्गुरोस्तथा ॥९६॥
न च वाक्यं हि वृद्धानामुल्लंघयति पुण्यकृत्।
न भूमिहरणं तत्र परनारीपराङ्मुखाः ॥९७॥
नापवादपरो लोको न दरिद्रो न रोगभाक्।
न स्तेयो द्यूतकारी च मैरेयी पापिनो न हि ॥९८॥
न हेमहारी ब्रह्मघ्नो न चैव गुरुतल्पगः।
न स्त्रीघ्नो न च बालघ्नो न चैवानृतभाषणः ॥९९॥
न वृत्तिलोपकश्चासीत्कूटसाक्षी न चैव हि।
न शठो न कृतघ्नश्च मलिनो नैव दृश्यते ॥१००॥
सदा सर्वत्र पूज्यन्ते ब्राह्मणावेदपारगाः।
नावैष्णवोऽव्रती राजन्रामराज्येऽति विश्रुते ॥१०१॥
[31] राज्यं प्रकुर्वतस्.................................
.... यत्तीर्थेपूत्तमोत्तमम् ॥१०२-१०९॥

३१—मनसुख राय मोर ५, क्लाइव रो, कलकत्ता—१
विक्रम सम्वत् २०१८ ईशवीय सन् १९६१
स्कन्द महापुराणम्, ब्रह्मखण्डात्मकः तृतीयोभागः
पृष्ठ ४०५-४१०.

॥ श्रीहरिः ॥

(१) श्रीरामावतार और कृष्णावतार

"सन्ध्यांशे समनुप्राप्ते त्रेतायां द्वापरस्य च।
अहं दाशरथी रामो भविष्यामि जगत्पतिः॥"
"द्वापरस्य कलेश्चैव सन्धौ पार्यवसानिके॥
प्रादुर्भावः कंसहेतोर्मथुरायां भविष्यति।"
(महा० शान्तिपर्व ३३९. ८५, ८८, ८९½)

त्रेता-द्वापर की सन्धि में श्रीरामावतार और द्वापर-कलि की सन्धि में श्रीकृष्णावतार हुआ।

'चतुर्विंशे युगे रामो वसिष्ठेन पुरोधसा।
सप्तमो रावणस्यार्थे जज्ञे दशरथात्मजः॥"
(वायुपुराण ९८. ७२)

"सन्ध्यंशे समनुप्राप्ते त्रेतायां द्वापरस्य च।
अहं दाशरथी रामो भविष्यामि जगत्पतिः॥"
(महा० १२. ३३९. ८५)

"चतुर्विंशयुगे चापि विश्वामित्रपुरःसरः।
रामो दशरथस्याथ पुत्रः पद्मायतेक्षणः॥"
(हरिवंश ४. ४१, ब्रह्माण्ड० १०४. ११)

"अष्टाविंशति मे तद्वत् द्वापरस्यांशसंक्षये।
नष्टे धर्मे तदा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले प्रभुः॥"
(वायु पुराण ९८. ९७)

...रीति से २८ वें मन्वन्तर के २४ वें त्रेता में रामावतार सिद्ध

...० ४२ वें वर्ष में श्रीरामचन्द्र भगवान् का राज्याभिषेक हुआ और ११ ...ार वर्षों तक उन्होंने राज्य किया—

'द्वाचत्वारिंशकेवर्षे रामो राज्यमकारयत्॥
सीतायास्तु त्रयस्त्रिंशद्वर्षाणि तु तदाभवन्।"
(स्कन्द० ३. ३०. ८७, ८७½)

"दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥"
(श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणे १. १. ९७)

"दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
रामो राज्यं पालयित्वा जगाम त्रिदिवालयम् ॥"
(स्कन्दपुराण :. ३०. ९० पूर्व)

• १२५ वर्ष तक प्रकट-लीलाकर १२६ वें वर्ष में श्रीकृष्णचन्द्र परमानन्दकन्द ने लीला-संवरण किया—

"यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम।
शरच्छतं व्यतीताय पञ्चविंशाधिकं प्रभो ॥"
(श्रीमद्भागवते ११. ६. २५)

• (कृष्णावतार में कृष्णलीला पर्यन्त द्वापर की स्थिति के तुल्य ही रामावतार में रामलीला पर्यन्त त्रेता की स्थिति मानकर) चौबीसवें त्रेता के अन्त में श्रीरामावतार मानने पर (११, ००० त्रेता के+८, ६४, ००० द्वापर के +४, ३२,००० कलियुग के) चौबीसवें त्रेता, द्वापर और कलियुग के कुल वर्ष — १३०७०००

• पच्चीसवें, छब्बीसवें, सत्ताईसवें चतुर्युगी की वर्ष गणना (४३, २०००० × ३) — १[illegible]

• अट्ठाईसवें सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और सं० २०४२ तक कलियुग की आयु (१७, २८,००० +१२, ९६, ०००+८, ६४, ०००+५,०८७) — [illegible]

• उक्त रीति से श्रीरामावतार के एक करोड़, एक्यासी लाख, साठ हजार, सत्तासी वर्ष वि० सं० २०४२ तक व्यतीत हुए। — १, ८१, [illegible]

• उक्त रीति से २८ वें द्वापर के अन्त में श्रीकृष्णावतार सिद्ध हो[illegible] है। महाभारत युद्ध के पश्चात् युधिष्ठिर जी के राज्यारम्भ से युधिष्ठि[illegible]

संवत्सर प्रारम्भ होता है। महाभारत युद्ध के ३६ वें वर्ष में श्रीकृष्ण का लीला संवरण और पाण्डवों का स्वर्गारोहण सिद्ध होता है। महाभारत युद्ध के समय १२६—३६=९० वर्ष के श्रीकृष्ण सिद्ध होते हैं। ऐसी स्थिति में युधिष्ठिर संवत्सर से ९० वर्ष पूर्व श्रीकृष्ण का अवतार सिद्ध होता है। इस रीति से वि० सं० २०४२ तक ५०८७+९०=५१७७ वर्ष श्रीकृष्णावतार मान्य हैं।

श्रीमद्भागवत के अनुसार श्रीकृष्ण ने जिस दिन धराधाम का त्याग किया उस दिन कलि का प्रवेश हुआ—

"यस्मिन् कृष्णो दिवं यावस्तस्मिन्नेव तदाहनि।
प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः॥"
(भागवत १२. २. ३३)

★

(२) सीता-प्रवास

१ प्रवास-वचन

"दशाहाधिकमासांश्च चतुर्द्दश हि मैथिली॥
उवास रामरहिता रावणस्य निवेशने।"
(स्कन्द० ब्रह्मखण्डे ३० पूर्व० ८६, ८६½)

... वचन के अनुसार १४ महीने (१ वर्ष २ महीने) और १० दिन ... भगवान् श्रीरामभद्र से वियुक्त रहीं।

...तो माघसिताष्टम्यां मुहूर्ते वृन्दसञ्ज्ञके।
...राघवाभ्यां विना सीतां जहार दशकन्धरः॥"
(स्कन्द० ३ ब्रह्मखण्डे ३० पूर्व० २३)

...ता-शुद्धि (अग्नि-परीक्षा)

सीताशुद्धिस्तृतीयायां देवेभ्यो वरलम्भनम्।
दशरथस्यागमनं तत्र चैवानुमोदनम्॥
(स्कन्द० ३ ब्रह्मखण्डे ३० पूर्व० ८१)

उक्त वचनों के अनुसार माघकृष्ण अष्टमी से माघोत्तर वैशाख शुक्ल द्वितीया तक १४ महीने १० दिन सिद्ध होते हैं—

• शुक्लादि मासानुसार माघ कृष्ण अष्टमी से माघ कृष्ण सप्तमी पर्यन्त	१२ महीने	
• माघकृष्ण अष्टमी से माघ कृष्ण ३० (अमावास्या) तक		८ दिन
• फाल्गुन और चैत्र	२ महीने	
• वैशाख शुक्ल द्वितीया तक		२ दिन
सीता-प्रवास के	१४ महीने १० दिन	

★

(३) पञ्चवटी-निवास

१–विवाह के समय श्रीराम १५ वर्ष के थे और सीता छः वर्ष की थीं।

२–विवाहोपरान्त श्रीराम भगवती सीता के साथ १२ वर्षों तक श्री-अयोध्या में रहे।

३–१५+१२=२७ वें वर्ष में श्रीराम को १४ वर्षों के लिये वनवास मिला।

४–'अर्द्धत्रयोदशे वर्षे पञ्चवट्यामुवास ह।' (स्कन्द० ३. ३०. २१) पूर्वोक्त रीति से सीताहरण से विभीषणाभिषेक पर्यन्त (अग्नि-प... दिन पूर्व) १४ महीने १० दिन व्यतीत हुए। ऐसी स्थिति में ... वर्षे' का प्रसंगानुसार अर्थ 'साढ़े बारहवें (१२½ वें) वर्ष में' ... है। ऐसा मानने पर अवशिष्ट १८ महीनों में से माघ कृष्ण ... माघोत्तर वैशाख शुक्ल पञ्चमी (१४ वें वर्ष की वक्ष्यमाण री... अवधि) तक के १४ महीने १३ दिन कम कर देने पर ३ मही... पञ्चवटी निवास के सिद्ध होते हैं।

(५) "पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां राघवस्य च।
भारद्वाजाश्रमे रामः सगणः समुपाविशत्॥

(स्कन्द ३. ३०. ८४, ८४½)

वैशाख शुक्ल पञ्चमीमें श्रीरामभद्र के वनवास के १४ वर्ष पूर्ण हुए। वे उसी दिन पुष्पक-यान से श्रीभरद्वाज जी के आश्रम में परिकर सहित पधारे।

☆

(४) लङ्का-प्रवेश

(शुक्लादि मासानुसार आगे की गणना है)

• माघ कृष्ण ८	श्रीसीताहरण
• माघ कृष्ण ९	श्रीसीता ने लङ्का में निवास किया

× × × ×

• मार्गशीर्ष शुक्ल ११	श्रीहनुमान् ने समुद्रपार कर लङ्का प्रवेश किया
• मार्गशीर्ष शुक्ल १२ रात्रि	श्रीहनुमान् ने सीताजी से संभाषण किया
• मार्गशीर्ष शुक्ल १३ रात्रि	श्रीहनुमान्‌जी मेघनाद प्रयुक्त ब्रह्मास्त्र से बद्ध और इससे पूर्व अक्षयकुमारादिका वध
• मार्गशीर्ष शुक्ल १४	श्रीहनुमान् द्वारा लङ्का दाह
• मार्गशीर्ष पूर्णिमा	श्रीहनुमान् महेन्द्र पर्वत पर लौट आये
• मार्गशीर्ष कृष्ण प्रतिपद से पञ्चमी	महेन्द्र पर्वत और मधुवन के मार्ग में
• मार्गशीर्ष कृष्ण षष्ठी	श्रीहनुमान् ने मधुवन को ध्वस्त किया
मार्गशीर्ष कृष्ण सप्तमी	श्रीहनुमान् द्वारा रामभद्र को सीता प्रदत्त मणि भेंट
०८ उत्तर फा०	श्रीराम द्वारा दक्षिण की ओर चलने का निश्चय
से अमा०	समुद्रतट पर सैन्य सन्निवेश
से ३	सैन्य सहित श्रीराम का समुद्रतट पर निवास
चतुर्थी	विभीषण ने श्रीरामभद्र की शरणागति ग्रहण की
शुक्ल पञ्चमी	समुद्र पार करने के लिये श्रीराम ने मन्त्रणा की
शुक्ल षष्ठी से नवमी	श्रीराम ने समुद्रतट पर प्रायोपवेशन किया
ष शुक्ल १० से १३ तक	सेतुबन्ध का कार्य सम्पन्न हुआ

• पौष शुक्ल १४	श्रीराम ने सेना को समुद्र पार जाने के लिये प्रेरित किया
• पौष पूर्णिमा से पौष कृष्ण द्वितीया पर्यन्त	श्रीरामभद्र के सैनिकों ने समुद्रपार किया
• पौष कृ० ३ से १०	लङ्का-प्रवेश
• पौष कृष्ण एकादशी	शुक, सारण गुप्तचर का पता लगना
• पौष कृष्ण द्वादशी	सैन्य-संख्यान
• पौष कृ. त्रयोदशीसे अमा.	रावण-सैन्य-संख्यान
• माघ शुक्ल प्रतिपद	श्रीराम ने अङ्गद को दूत बनाकर भेजा

इस प्रकार शुक्लादि माघकृष्ण ८ से माघशुक्ल १ तक ११ महीने ६ दिन सीताहरण के हुए।

★

(५) युद्धागमनिवेश

• माघ शुक्ल द्वितीया से अष्टमी	राक्षसों और वानरों में संकुल-युद्ध
• माघ शुक्ल नवमी	नागपाश में श्रीराम आबद्ध मेघनाद द्वारा रात्रि युद्ध में
• माघ शुक्ल दशमी, एकादशी	गरुड़ द्वारा पाशविमोक्ष, युद्धावहार
• माघ शुक्ल द्वादशी	श्रीहनुमान् द्वारा धूम्राक्षवध
• माघ शुक्ल त्रयोदशी	श्रीहनुमान् द्वारा अकम्पनबध
• माघ शुक्ल चतुर्दशी से माघ कृ० १	प्रहस्तवध नील द्वारा
• माघ कृष्ण द्वितीया से चतुर्थी	राम द्वारा रावण को युद्ध से [illegible]
• माघ कृष्ण पञ्चमी से अष्टमी	अवहार (रावण द्वारा कुम्भक[illegible]
• माघ कृष्ण नवमी से द्वादशी	कुम्भकर्ण द्वारा युद्ध, राम द्वा[illegible] कुम्भकर्ण वध
• माघ अमा०	शोकाकुल रावण द्वारा युद्धाव[illegible]
• फाल्गुन शुक्ल १ से ४	नरकान्तकादि ५ राक्षसों का संह[illegible]
• फाल्गुन शुक्ल ५ से ७	अतिकाय वध
• फाल्गुन शुक्ल ८ से १२	निकुम्भ, कुम्भवध
• फाल्गुन शुक्ल १३ से फा० कृ० १	मकराक्षवध
• फाल्गुन कृष्ण २	मेघनाद-पराजय

- फाल्गुन कृष्ण ३ से ७ — ओषधि लाने आदि की व्यग्रता में अवहार
- फाल्गुन कृष्ण ८ — माया सीता का रावण द्वारा वध, शोक सन्तप्त राम द्वारा अवहार
- फाल्गुन कृष्ण ९ से १३ — लक्ष्मण-मेघनाद युद्ध, मेघनाद वध
- फाल्गुन कृष्ण १४ — शोकाकुल रावण द्वारा अवहार
- फाल्गुन अमा० से चैत्र शु० ८ रावण द्वारा भयङ्कर युद्ध
- फाल्गुन शुक्ल ९ — लक्ष्मणजी के ऊपर शक्ति प्रयोग
- फाल्गुन शुक्ल १० — संजीवनी लानेके उपलक्ष्यमें अवहार, रात्रियुद्ध
- फाल्गुन शुक्ल ११ — इन्द्र द्वारा श्रीराम को रथ प्रदान
- फाल्गुन शुक्ल १२ से चैत्र-कृष्ण १४ (अठारह दिनों तक) राम-रावण द्वैरथ युद्ध, रावण वध
- चैत्र कृष्ण अमावास्या — रावण की अन्त्येष्टि
- वैशाख शुक्ल १ — श्रीराम द्वारा उपवास
- वैशाख शुक्ल २ — विभीषणाभिषेक
- वैशाख शुक्ल ३ — सीता शुद्धि (अग्नि-परीक्षा)

इस प्रकार, शुक्लादिमासानुसार माघ शुक्ल २ से वैशाख शुक्ल २ तक ३ महीना १ दिन सीताहरण के ; माघ कृष्ण ८ से माघोत्तर माघशुक्ल १ तक सीताहरण के ; ११ महीना ९ दिन माघ कृष्ण ८ से माघोत्तर वैशाख शुक्ल २ तक सीताहरण के ; १४ महीने १० दिन

> "माघशुक्लद्वितीयादि चैत्रकृष्णचतुर्द्दशीम् ।
> सप्ताशीति दिनान्येवं मध्ये पञ्चदशाहकम् ॥
> युद्धावहारः सङ्ग्रामो द्वासप्ततिदिनान्यभूत् ।"
>
> (स्कन्द० ३. ३०. ७९, ७९½)

शुक्ल द्वितीया से चैत्रकृष्ण चतुर्दशी तक १४+१५+३०+१५ ८८ दिन होते हैं ।

मूल में माघ कृष्ण नवमी से चार दिनों तक अर्थात् द्वादशी तक भकर्ण के युद्ध का वर्णन है । द्वादशी के दिन उसके वधके बाद अमावास्या दिन शोकाकुल रावण द्वारा अवहार का उल्लेख है । इससे सिद्ध होता है क महाभारत युद्ध और मौसल युद्ध के समान राम-रावण युद्ध काल में भी

कृष्णपक्ष तेरह दिनों का था। त्रयोदशी ही अमावास्या बन गयी थी। लेकिन ऐसा मानने पर माघ शुक्ल २ से चैत्र कृष्ण १४ तक ८६ दिन ही होते हैं, न कि ८७ दिन। चैत्र शुक्ल पञ्चमी तक तथा चैत्र शुक्ल द्वादशी से चैत्र कृष्ण चतुर्दशी पर्यन्त दिन संख्या का उल्लेख है; अतः इन दिनों तिथि वृद्धि सिद्ध नहीं हो सकती। हाँ चैत्र शुक्ल षष्ठी से चैत्र शुक्ल एकादशी तक केवल तिथि का वर्णन है, इस कारण एक तिथि की वृद्धि मानी जा सकती है। ऐसी स्थिति में ८७ दिनों में १५ अवहार और ७२ युद्ध सिद्ध हैं।

★

(६) श्रीरामराज्याभिषेक

- वैशाख शुक्ल ४ — पुष्पकारूढ़ श्रीराम ने श्रीअयोध्या पुरी के लिये प्रस्थान किया
- वैशाख शुक्ल ५ — वनवास के १४ वें वर्ष को पूर्णकर श्रीराम ने भारद्वाज आश्रम में परिकर सहित प्रवेश किया
- वैशाख शुक्ल ६ — पुष्पकयान से श्रीरामभद्र नन्दिग्राम पधारे
- वैशाख शुक्ल ७ — श्रीअयोध्यापुरी में श्रीरामराज्याभिषेक

★

विशेष—अन्य पुराणों और रामायणों से मास, तिथि, दिन की गणना में जहाँ विगान परिलक्षित होता हो, वहाँ 'कल्पभेद हरि... सुहाये' की रीति से परिहार कर लेना चाहिये।[३२]

★

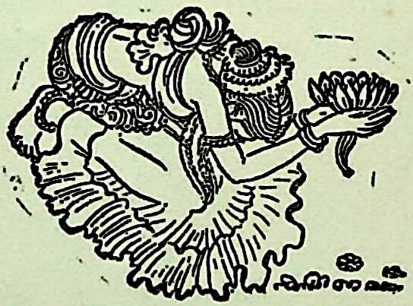
३२—"पुनः पुनः कल्पभेदाज्जाताः श्रीराघवस्य च।
अवताराः कोटिशोऽत्र तेषु भेदः क्वचित् क्वचित् ॥"
(आनन्दरामायण पूर्वकाण्ड ७. २९)

"कलपभेद हरि चरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए ॥
करिअ न संसय अस उर आनी। सुनिअ कथा सादर रति मानी ॥"
(रामचरित मानस १. ३३. ७, ८)

"यच्छक्तयो वदतां वादिना वै
विवाद संवाद भुवो भवन्ति ।
कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्ममोहं
तस्मै नमोऽनन्तगुणाय भूम्ने ॥"

धर्म की......................जय हो । अधर्म का......................नाश हो ।
प्राणियों में........सद्भावना हो । विश्व का........ ....कल्याण हो ।
गो माता की..............जय हो । गो हत्या......................बन्द हो ।

हर हर महादेव



॥ श्रीहरिः ॥

गीताजयन्ती और भीष्मोत्क्रान्ति

❀ शुद्धि पत्र ❀

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०	नीचे से ३	पाञ्चालवीर,	पाञ्चालवीर
१३	नीचे से ६	पञ्चत्वमगमत्	पञ्चत्वमगमत्
१३	नीचे से १	अक्षोहिणी	अक्षौहिणी
१५	१	विगात्ह्य	विगाह्य
१८	४	आश्व०	आश्व०
१८	१७	पूर्णें	पूर्णे
२८	३	रेबत्यां	रेवत्यां
२८	४	सनयोर्निर्याणम्	सेनयोर्निर्याणम्
२८	४	पञ्चनिम्या	पञ्चम्या
२९	नीचे से ३	गौजार्थक	गौणार्थक
४६	९	शेषाया	शेषायां
[illegible]	नीचे से ७	६. ३०	६४. ३०
[illegible]	१५	बचन	वचन
[illegible]	२	युद्ध	युद्ध'
[illegible]	६	आदि पर्व	(आदि पर्व
[illegible]	नीचे से ६	तयारी	तैयारी
[illegible]	१६	चन्द्रसूर्याबुभौ	चन्द्रसूर्याविभौ
[illegible]	नीचे से २	जलाज्ज	जलाब्ज-
[illegible]१	५	ज्ञातीना	ज्ञातीनां
[illegible]७	नीचे से १०	धमायामेव	अमायामेव
[illegible]८	२०, २१	मार्गशीर्ष	कार्तिक
७९	६	भीष्म	भीष्मः

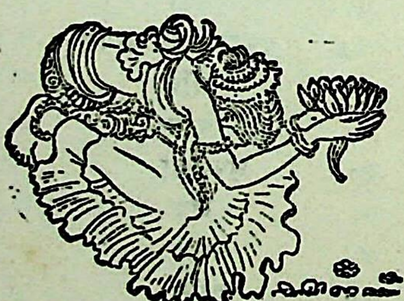
पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८२	१४	वुध दैवत्यत्वांद्	बुध दैवत्यत्वाद्
८२	नीचे से १०	त्वेकविशे	त्वेकविंशे
८३	३	रिव्युपक्रमोपसंहारयोः	रित्युपक्रमोपसंहारयोः
८३	४	निर्णीतार्थंकत्दात्	निर्णीतार्थकत्वात्
८३	६	श्रुसेरिति	श्रुतेरिति
८३	६	मतानां	मृतानां
८३	अन्तिम	इस्यपि	इत्यपि
८४	३	शुक्र	शक्र
८४	७	इस प्रकार	×
८४	नीचे से २	द्वनं	दूनं
८५	नीचे से १२	माव्रं	मात्रं
८५	नीचे से १०	दांदशाहेन	द्वादशाहेन
८५	नीचे से २	मारना	मारने का
८६	१०, ११	व	व
८६	नीचे से ८	भार्बतिताः	मार्वतिताः
८७	६	मासमात्र	मासमात्रं
८७	९	शुद्धति	शुद्धचति
८८	३	गया	गया।
८८	११	मारद्वाजेन	भारद्वाजेन
८८	१७	हने	[illegible] २१)
८८	१८	वेगितव्यः	[illegible]
९१	नीचे से ५	वतं	[illegible]
९४	नीचे से १२	युद्धारम्भ	[illegible]
९५	४	५६—५०=५	५६-[illegible] ५५—[illegible]
९५	१०	किन्तु	[illegible]
९७	८	आठवाँ	आठव[illegible]
९८	४	"स्फीत	स्फ[illegible]
९८	४	वरः ॥	वरः [illegible]
९८	१५	कर्मणा	कर्मणो[illegible]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९९	५	उपलव्य	उपप्लव्य
१००	६	अभा	अमा
१००	११	अमावास्याया	अमावास्याया-
१०२	२	भातृ	भ्रातृ
१०२	१०	भातृवध	भ्रातृवध
१०२	नीचे से ६	मृगशिसे	मृगशिरो
१०४	नीचे से ६	चषोऽशीम्	च षोडशीम्
१०४	नीचे से ६	जामवास्यां	जानेहममावास्यां
१०५	अन्तिम	रहित	सेना रहित
१०६	१८	आसीत्'	'आसीत्'
१०६	नीचे से ५	चतुर्दशी	'चतुर्दशी
१०६	नीचे से ५	पुनः	पुनः'
१०६	नीचे से ५	सप्तमात्	'सप्तमान्
१०८	नीचे से १२	सुप्रापसेन्धनः	सुप्रापयव सेन्धनः
१०८	नीचे से ८	१४४	१४२
१०९	८	तस्प	तस्य
११०	२	नक्षर	नक्षत्र
१११	४	)	) ।
१११	७	पुष्य	'पुष्य'
[illegible]	६	हैं	है
[illegible]	[illegible]	मान्य	माना
[illegible]	[illegible] से ४	गीताजयन्ती	गीताजयन्ती-
[illegible]	[illegible] से ८	मुहूर्ताः	'मुहूर्ताः
[illegible]	[illegible]	सस्था	संस्था
[illegible]	[illegible]	तयार	तैयार
[illegible]	४	जगमाश्रमच्युतः	जगामाश्रममच्युतः
[illegible]	अन्तिम	प्रयाध्व	प्रयाध्वं
[illegible]	अन्तिम	पुष्योऽप्येति	पुष्योऽद्येति
[illegible]	नीचे से ६	मुहूर्ते	मुहूर्ते'
[illegible]	नीचे से २	अथ	अर्थ
[illegible]२९	१७	युधिष्ठिर	"युधिष्ठिर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३५	१	तक	तक'
१३५	नीचे से ४	स्वय	स्वयं
१३६	४	भद्रराजश्च	मद्रराजश्च
१३७	नीचे से ७	पव	पर्व
१३९	१	भारतवंशियों	भरत वंशियों
१४१	१५	॥"	॥" (भीष्म० १. ५)
१४२	नीचे से २	महाभारत	(२। महाभारत
१४२	नीचे से २	आर	और
१४३	नीचे से ८	भव	वम
१४९	नीचे से ४	अवकाश	अवकाश,
१५२	नीचे से ६	सुरौडे	सुरौद्रे
१६७	नीचे से २	वेदब्रत	वेदव्रत
१७०	१०	धम	धर्म
१७२	६	सजय	संजय
१७२	नीचे से १२	राज्याभिषेंक	राज्याभिषेक
१७२	नीचे से १९	बैशम्पायन	वैशम्पायन
१७४	२	हैं	है
१७४	अन्तिम	भीं	भी
१७७	६	पूर्वाषाढ़ा	प्रत्ये[illegible]
१७८	नीचे से १०	ऋशुक:	[illegible]
१८०	नीचे से १०	सवं	[illegible]
१८१	१	भावा:	[illegible]
१८१	६	बचन	[illegible]
१८३	अन्तिम	सख्या	[illegible]
१८४	७	हर्षं	[illegible]
१८५	१२	२७ आदिपर्वं	[illegible]
१८७	नीचे से ३	मघा	मा[illegible]
१८७	नीचे से २	पूर्वाफाल्गुनी	पूर्वाफाल्गुनी फा[illegible]
१९०	१६	वर	[illegible]
१९०	२३	उपयुक्त	उपयु[illegible]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१९२	१२	शहता	राहता
१९२	१८	राष्टस्य	राष्ट्रस्य
१९८	११	१०	१८
२०५	११	सखया	संख्या
२०५	१४	बुं	बुं
२०६	६	राद्धं	राद्धं
,,	१६	ज	जे
२०७	९	वति	र्वति
२०७	१०	वद्धनो	वर्द्धनो
,,	११	वीरौ	वीरौ
२०७	१५	हस	हंस
,	१७	हस	हंस
२०७	१९	वासिजं	वासिनं
२०८	१२	ब्रज	व्रज
२०८	१८	रधूत्तमः	रघूत्तमः
२०९	७	मढ़ा	मूढा
२०९	१७	दण्डकारण्य मागमत्	दण्डकारण्यमागमत्
,,	१८	अत्रि	अभि
	,,	रण्य मा	रण्यमा
	२०.	शूपणखां	शूर्पणखां
	२	जय	नय
	४	सिता	सित
	१०	दर्शन	दर्शनं
	१०	तज्जल	तज्जल
	,,	रायताम्	राय ताम्
	,,	त्रय	त्रयो
	२४	बीत्	वीत्
	नीचे से २	एकादश्या	एकादश्यां
	९	अष्टमी	अष्टमीं
	१०	तद्रा	तदा

२१२	११	करो	ऽकरो
,,	२१	वैग्रचा	वैयग्र्या
,,	२८	पश्चमी	पश्चमीं
,,	३०	चैत्रं	चैत्र
२१३	३	पाय यत्	पाययत्
,,	१३	वंशा	वैशा
,,	१९	परमा	परया
२१४	७	घटो	घट
,,	२५	वेष्ण	वैष्ण
२१५	१२	सप्त	सत्त
,,	२०	शति मे	शतिमे
२१७	२१	महूर्ते	मुहूर्ते
२१८	३	।०	१०



पूज्यपाद
स्वामी श्री करपात्री जी महाराज
के अन्य ग्रन्थ

१.	वेदार्थ पारिजात (२ खण्ड)	मूल्य १८० रु.
२.	शुक्ल यजुर्वेद संहिता करपात्र भाष्य—प्रथम खण्ड	६५ रु.
३.	भक्तिसुधा	४५ रु.
४.	भागवत सुधा	३० रु.
५.	श्रीराधा-सुधा	३० रु.
६.	गीताजयन्ती और भीष्मोत्क्रान्ति	२२
७.	विभीषण शरणागति	३